विषय	पृष्ठ
जुलावकी दवा लेनेके बाद रोगी क्या करे ? ...	३२०
जुलावके दस्तोंमें क्या निकलता है ?	३२१
अच्छा जुलाव होनेकी पहचान	३२१
उत्तम दस्त न होनेके उपद्रव	३२२
उत्तम जुलाव न होनेपर उपचार	३२२
अत्यन्त दस्त होनेके उपद्रव	३२२
अत्यन्त दस्त होनेके उपद्रवोंका उपचार ...	३२२
जुलाववालेको अपथ्य ...	३२४
अगर पहले दिन दस्त कम हो तब क्या करना चाहिये ?	३२४
जुलावके दिन पथ्य ...	३२४
जुलाव पथ्यापथ्य और उपद्रव हो तब ? ...	३२५
जुलाव-सम्बन्धी जरूरी बातें	३२५
वमन और विरेचनके लिए उत्तम ऋतुएँ ...	३२६
अलग-अलग ऋतुओंके अलग-अलग जुलाव	३२६
वर्षा-ऋतुमें जुलाव ...	३२६
शरद्-ऋतुमें जुलाव ...	३२७
हेमन्त-ऋतुमें जुलाव ...	३२७
शिशिर और वसन्तमें जुलाव	३२७
ग्रीष्ममें जुलाव ...	३२७
हर मौसमका जुलाव ...	३२८
अभया मोदक ...	३२८
काले दानेका जुलाव ...	३२९
निशोथ और त्रिफलेका जुलाव ...	३२९
हकीमी मुञ्जिस ...	३३०
हकीमी जुलाव ...	३३१
जुलावपर हकीमी हिदायतें	३३२
शरीरके तेरह वेग ...	३३४
पेशावके रोकनेसे रोगोत्पत्ति ...	३३४
पाखानेके रोकनेसे रोग	३३४
शुक्र ,, ,,	३३५
अधोवायु ,, ,,	३३५
वमन ,, ,,	३३६
छींक ,, ,,	३३६
डकार ,, ,,	३३६
जँभाई ,, ,,	३३७
भूख ,, ,,	३३८
प्यास ,, ,,	३३८
आँसुओं ,, ,,	३३९
नींद ,, ,,	३३९
साँस ,, ,,	३३९
चरक भगवान्‌के उपदेश	३३९–३४०

॥ श्री ॥

आयुर्वेद ।

आयुर्वेदकी उत्पत्ति कैसे हुई, कब हुई, और आयुर्वेदके पढ़नेमे क्या लाभ है ? इन प्रश्नोंके उत्तर देनेके पूर्व्व, हमे यह बतलाना आवश्यक है कि, "आयुर्वेद" किसे कहते हैं, क्योंकि आयुर्वेदके पढ़नेवाला जब तक "आयुर्वेद"का अर्थ न समझेगा, तब तक उसका मन "आयुर्वेद"की ओर हरगिज न झुकेगा, उस ओर उसकी रुचि कदापि न होगी।

ऋषियोंने लिखा है,—"शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्माके संयोग या मेलको "आयु" अर्थात उम्र कहते हैं, और जिस शास्त्र से आयुका ज्ञान और उसकी प्राप्ति होती है, उसे "आयुर्वेद" कहते हैं।" चरक मुनिने लिखा है:—

हिताहितसुखंदुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानञ्च तञ्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥

जिससे आयुके हिताहितका ज्ञान और उसका परिणाम मालूम हो, उसे "आयुर्वेद" कहते है। और भी लिखा है:—

आयुर्हिताहितं व्याधि निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वाद्भिः स चायुर्वेद उच्यते॥

जिसमे आयुका हित, अहित, रोगका निदान और शमन हो— उसको विद्वान् "आयुर्वेद" कहते है।

इस जगत्मे ऐसा कोई विरलाही प्राणी होगा, जो दीर्घायु न चाहता होगा। जीवनका ऐसा मोह है, कि घोर कष्टोमे फँसा हुआ प्राणी, यद्यपि असह्य शारीरिक और मानसिक क्लेशोके मारे जबानसे तो मृत्युको आवाहन करता रहता है, किन्तु जब मृत्यु सामने दिखलाई देती है, तब और भी कुछ दिन जीते रहनेकी आकांक्षा प्रकट करता है। इससे सिद्ध होता है कि, प्रत्येक प्राणी जो इस जगत्मे आया है, जल्दी ही यहाँसे विदा होना नहीं चाहता। जब यही बात है, तब मनुष्य-मात्रको थोड़ी या बहुत वह विद्या अवश्य सीखनी चाहिये, जिससे रोगोके निदानकारण और उनकी शान्तिके उपाय मालूम हो। रोग होनेका क्या कारण है, कौन रोग है, इस रोगका नाश कैसे होगा, किन बातोसे आयुकी वृद्धि और किनसे क्षय होता है, मनुष्य किस तरह अकाल मृत्युसे बच सकता है और किस तरह परमायुकी प्राप्ति हो सकती है—ऐसी-ऐसी बाते "आयुर्वेद" मे विस्तारसे लिखी है, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको, जो अपना या पराया भला चाहता है, संसारमे कोई बड़ा काम करनेका अभिलाषी है, आयुर्वेद-विद्या अवश्य दिल लगाकर पढ़नी, समझनी और सीखनी चाहिये।

आयुर्वेदकी उत्पत्ति ।

आज इस भूतलपर जितने देश है, सभीका आयुर्वेद अलग-अलग है, परन्तु सब देशोंके आयुर्वेदोकी उत्पत्ति हमारे आयुर्वेदसे ही हुई है । हमारा आयुर्वेद सबसे पहला और आदि है, इसको सप्रमाण हम आगे लिखेगे । पहले हम यह बतलाते है कि, हमारे आयुर्वेदका जन्म कैसे और कब हुआ, हमारे यहाँ कौन बड़े-बड़े आयुर्वेदके जानने और लिखनेवाले विद्वान् हुए, उन्होने कौन-कौनसे ग्रन्थ लिखे, उनमेसे कौन-कौनसे ग्रन्थ उच्च श्रेणीके और कौन-कौनसे निम्न श्रेणीके है ।

आयुर्वेदकी उत्पत्तिका यथार्थ समय निश्चित करना, हमारे लिये तो सर्वथा असम्भव ही है । अनेक विद्वानोने इस विषयमे दिमाग लड़ाया और अब भी लड़ा रहे है, परन्तु सच्ची कामयाबी आज तक किसीको न हुई, आजतक कोई भी मंजिल मकसूद तक न पहुँचा, सभी इधर-उधर लटकते रह गये । कोई कुछ कहता है और कोई कुछ, सबका मत भी एक नहीं ।

यद्यपि थोड़ी बहुत अङ्गरेजी हमने भी पढ़ी है, आजकलके विद्वानों की रायोपर विचार भी किया है, तो भी उनकी दलीले हमारे कमजोर दिमागमे नही घुसतीं, हमारे ख़यालात उसी पुराने ढर्रेके है, जिनकी कि आजकलके बाबू या मिस्टर दिल्लगी उड़ाया करते है । यद्यपि हम आयुर्वेदके जन्मकी सन् और तारीख़ नही दे सकते, पर यह दावेके साथ कह सकते है, कि हमारा आयुर्वेद संसारमे सबसे पुराना और पहला है । सुनते है, वेदोंमे इसका जिक्र है, इसलिये यह वेदोंके जमाने का है । वेद यदि अनन्तकाल या लाखों-करोड़ों वर्षोंसे है, तो "आयु-

वेंद" भी लाखो-करोड़ों वर्षोंसे है, यदि आजकलके विद्वानोंके मतानु-सार वेद चार छै हजार वर्षोंसे है, तो यह भी चार छै हजार वर्षोंसे है। यदि हम, थोडी देरके लिये, वेदोको चार छै हजार वर्षोंका भी मानले, तो भी हमारे इस कथनमे, आयुर्वेद सबसे पुराना और पहला है, कोई दोप नही आता, इसकी प्राचीनतामे बट्टा नही लगता। माफ कीजिये, हमे क्या कहना था और क्या कहने लग गये। आयुर्वेद की उत्पत्तिकी बात लिखते-लिखते, जोशमे आकर, उसकी प्राचीनताका राग अलापने लग गये। अच्छा, पहले उत्पत्तिकी बात ही सुनिये।

किसी जमानेमे 'आयुर्वेद' का सार-सर्वस्व लेकर ब्रह्मदेवने अपने नामसे एक ग्रन्थ रचा और उसका नाम रक्खा "ब्रह्मसंहिता"। उस ग्रन्थमे एक लाख श्लोक थे, पर आजकल वह कहीं नहीं मिलता।

अपनी पुस्तक रचनेके बाद ब्रह्मदेवने, ससारके उपकारके लिये, दक्ष प्रजापतिको आयुर्वेद पढ़ाया। दक्ष प्रजापतिने दोनो अश्विनीकुमारो को आयुर्वेदकी शिक्षा दी। उन दोनो भाइयोंने इस विद्यामे बड़ी भारी उन्नति की और खूब नाम कमाया। उनकी अद्भुत चिकित्सा-प्रणाली पर देवराज इन्द्र दिलोजानसे मोहित हो गये। उन्होंने स्वय यह विद्या अश्विनीकुमारोसे सीखी। सुरपुरीमे ये दोनो भाई ही देवताओका इलाज करते थे।

महर्षि आत्रेयने राजा इन्द्रसे आयुर्वेद सीखा। उन्होने अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि और हारीतको आयुर्वेदकी शिक्षा दी। इन्होने आयुर्वेदमे पारदर्शिता प्राप्त करके, अपने-अपने नामसे अलग-अलग ग्रन्थ लिखे।

अग्निवेश हारीत आदि ऋपियोके ग्रन्थोका सारमर्म लेकर और अपनी ओरसे कुछ घटा बढ़ाकर चरक आचार्य्यने अपने नामसे एक ग्रन्थ रचा। इसी ग्रन्थका नाम आजकल "चरक" के नामसे संसारमें प्रसिद्ध है।

"चरक" की संसारमे बड़ी प्रतिष्ठा है। कहते है, "चरक" पढ़े बिना जो चिकित्सा करता है, वह वैद्य नही यमदूत है। पाश्चात्य विद्वानोंने भी लिखा है, यदि संसार मे "चरक" की रीति से चिकित्सा की जाय, तो संसार आजकल की तरह रोग-पीड़ित न हो। हमारे यहाँ वाले भी चिकित्सा के लिये "चरक" की बड़ी तारीफ करते है। कहा हैः—

निदाने माधवः श्रेष्ठः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तः चरकस्तु चिकित्सिते ॥

रोगो का निदान-कारण जानने के लिये "माधव निदान" सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है, सूत्रो के लिये "वाग्भट्ट" सर्वोत्तम है, शारीरिक ज्ञान के लिये "सुश्रुत" और चिकित्सा के लिये "चरक" सबसे उत्तम है।

चरक मे गद्य (Prose) और पद्य (Verse) दोनो है। यह बड़ा कठिन ग्रन्थ है, इसी से साधारण वैद्य इसे नहीं पढ़ते, पर ऊपर कह आये है, कि "चरक" बिना अच्छी चिकित्सा नही आती, इसलिये वैद्यकका व्यवसाय करनेवाले को "चरक" अवश्य पढ़ना चाहिये। यह ग्रन्थ सूत्रस्थान, विमानस्थान प्रभृति आठ भागोंमे विभक्त है। सूत्रस्थान मे हजारो काम की बाते, संक्षेपमे, बड़ी ही खूबीसे लिखी गई है। इस भाग के पढ़ने से वैद्य को काम की हजारो बातें मालूम हो जाती है। विमानस्थानमे रसायन अर्थात् फिजियोलॉजी और केमिष्ट्री का संक्षिप्त वर्णन है। इसमे न्यायशास्त्रका अधिक अंश है, इससे मामूली अक्ल वालोको यह भाग बुरा मालूम होता है। शरीरस्थानमे शरीरके अङ्गो के वर्णन के सिवाय वेदान्त, सांख्य और वैराग्य का जिक्र बड़ी ही खूबीसे किया गया है। आठवॉ सिद्धि स्थान है। इसमे कुछ सवाल-जवाब बड़े ही कामके है। सारांश यह, कि इस ग्रन्थका प्रत्येक भाग बड़ा ही उपयोगी है।

चरक के बाद "सुश्रुत" का नम्बर है। यह महात्मा विश्वामित्र के पुत्र थे। इन्होंने अपने पिता की आज्ञा से, प्राणियों के उपकारार्थ,

एक सौ ऋषिपुत्रों के साथ, काशी जाकर, काशिराज दिवोदास से आयुर्वेद सीखा। कहते है, महाराज दिवोदास धन्वन्तरि के अवतार थे। उन्होने इन्द्रके कहने से इस लोक मे जन्म लिया था। काशिराज सभी ऋषिपुत्रोको आयुर्वेद सिखाते थे, मगर उनके शागिर्दोंमे सुश्रुत सबसे तेज थे। आप गुरुके उपदेशो को खूब ध्यान लगाकर सुनते थे। कहते है, इसीसे आपका नाम "सुश्रुत" पड गया।

सुश्रुतने पढ़-लिखकर अपने नाम का जो ग्रन्थ लिखा, उसीको आज कल "सुश्रुत कहते है। इस ग्रन्थ मे जर्राही या सर्जरी खूब अच्छी तरह लिखी है। सुश्रुतसे अच्छी अस्त्र-चिकित्सा हमारे और किसी ग्रन्थ मे नहीं है। इसमे रोगो की संख्या और चिकित्सा भी चरकसे अधिक है। यह ग्रन्थ पांच भाग और एकसौ बीस अध्यायोमे विभक्त है। इन पॉचोंके सिवा एक "उत्तरतन्त्र" और है। उसमे ६६ अध्याय है और उसमे चिकित्सा खूब ही अच्छे ढग से लिखी है। चरकसे यह ग्रन्थ कम नहीं है, अतः वैद्यो को इसे भी अच्छी तरह पढ़ना चाहिये क्योंकि केवल एक शास्त्र के पढ़ने से कोई वैद्य नहीं बन जाता। यो तो जो एकमे है वही सबमे है, पर बारीक नजरसे देखा जाय, तो जो एकमे है वह दूसरे मे नहीं, इसीसे जितने अधिक ग्रन्थ देखे जायं उतना ही अच्छा हो।

चरक और सुश्रुत के बाद "वाग्भट्ट" का नम्बर है। यह ग्रन्थ भी अव्वल दर्जेका समझा जाता है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट—इन तीनो को ही "बृद्धत्रयी" कहते है। जो इन तीनो को पढ़ लेते है, वह अच्छे वैद्य समझे जाते है।

वाग्भट्ट महोदय महाभारतके जमानेमे थे। कहते हैं, आप महाराज युधिष्ठिरके प्रधान वैद्य थे। किसी-किसीने लिखा है कि, आप ईसा से दो सौ वर्ष पहले हुए थे। खैर, कुछ भी हो, इसमे जरा भी संशय नहीं कि, आप अपने समय के नामी वैद्य हुए। आपने चरक और सुश्रुतका

सहारा लेकर जो ग्रन्थ लिखा है, उसका नाम "अष्टाङ्ग हृदय" है; पर वह "वाग्भट्ट" के नामसे अधिक प्रसिद्ध है।

वाग्भट्टके वाद "वङ्गसेन" का नम्बर है। कोई कहता है, आप विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमे हुए और कोई कहता है कि, चार-पॉच सौ वर्ष पहले आप बङ्गालमे मौजूद थे। आपने भी—चरक, सुश्रुत और वाग्भट्टके आधारपर—अपने नामसे एक ग्रन्थ लिखा है जो "वङ्गसेन" के नामसे मशहूर है। आपकी चिकित्सा-पद्धति वहुत ही उत्तम है। आपने जो लिखा है, वह बहुत ही सरल रीतिसे लिखा है, और ऐसे अच्छे ढॅगसे लिखा है कि, जो विषय दूसरे ग्रन्थोंमे आसानीसे समझमे न आता हो, वह इसमे बड़ी ही आसानीसे समझमे आ जाता है। इसके सिवा, इसमे एक और खूबी है कि जो विषय और ग्रन्थोंमे नहीं है, वह भी इसमे मिलते है। यह ग्रन्थ भी वैद्योंके पढ़ने-योग्य है।

वङ्गसेनके बाद माधवाचार्य-लिखित "माधव-निदान" का नम्बर है। कहते हैं,—आप ईसाकी बारहवीं सदीमे, विजयनगरके राजा के प्रधान मन्त्री थे। सुप्रसिद्ध सायण आचार्य्य आपके भाई थे। आपने अलग-अलग विषयोंपर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, पर चिकित्सा-शास्त्रके सम्बन्धमे आपका लिखा "माधव निदान" ही सर्वोत्तम है। यद्यपि इसमें आजकलके अनेक रोगोंके निदान नहीं है तथापि इस कामके लिये इससे अच्छा ग्रन्थ और नहीं है, इसीसे प्रत्येक वैद्य इसे अवश्य पढ़ता है।

माधवनिदानके बाद "भावप्रकाश" है। इसके लेखक मदरास-प्रान्त के रहनेवाले भावमिश्र महोदय है। आपने भी अपने नामसे एक ग्रन्थ लिखा है। उसका नाम ही "भावप्रकाश" है। यद्यपि आपने अपना ग्रन्थ चरक, सुश्रुत आदि के आधार पर लिखा है, तथापि आपने अपनी ओरसे भी खूब काम किया है। पोर्च्यूगीज़ या पुर्त्तगाल-निवासी आपके

समयमे भारतमे आगये थे, इससे आपने फरङ्गिस्थानसे आनेवाले फिरंग प्रभृति रोगोंका भी जिक्र किया है। यह ग्रन्थ भी वैद्योंके पढ़ने-योग्य है।

भावप्रकाश के बाद "शार्ङ्गधर" का नम्बर है। शार्ङ्गधर नाम के किसी आचार्य्यने अपने नाम से यह ग्रन्थ लिखा है। आपने और सब विषय बिल्कुल संक्षेप मे लिखकर, रोगो के नाश करनेवाले नुसखे खूब ही अच्छे लिखे है। मालूम होता है, आपने अपने आजमाये हुए नुसखे ही इस ग्रन्थमे लिखे है, क्योंकि समयपर इस ग्रन्थके नुसखे अक्सर, अकसीर का काम दिखाते हैं।

इन ग्रन्थरत्नोके सिवा और भी चक्रदत्त, वैद्य-विनोद, वैद्यमनोत्सव भैषज्यरत्नावली प्रभृति अनेक वैद्यक-सम्बन्धी ग्रन्थ है, पर भिषक-श्रेष्ठ पण्डितवर लोलिम्बराज महोदयका लिखा "वैद्यजीवन" नामक ग्रन्थ हमें बहुत पसन्द है। अपनी प्रियतमाके प्रश्नोके उत्तरके मिससे, अनेक रोगोंके अचूक नुसखे कह डाले है। आपने भी अपने परीक्षित नुसखे ही कहे है, ऐसा मालूम होता है। आपके छोटेसे काव्यके पढ़नेमे बड़ा मजा आता है।

हमने ऊपर जिन-जिन ग्रन्थोके नाम लिखे है, उनको गुरुसे अच्छी तरह पढ़ लेनेपर, मनुष्य "पूर्णवैद्य" हो सकता है। परन्तु जिस तरह आजकलके वकील विकालत पास कर लेनेपर भी, सदा "ला रिपोर्टों" को देखते रहते है, उसी तरह वैद्योंको भी अनेक वैद्यो के अनेक ग्रन्थ, जहाँ तक मिल सके, मँगा-मँगा कर पढ़ने और मनन करने चाहिये।

हमारा आयुर्वेद संसारमे सबसे प्राचीन और पहला है, यह बात हम ऊपर लिख आये है, किन्तु ऊपर हमने अपने कथनके सिवा और कोई प्रमाण नही दिया, इसीलिये यहॉ हम कुछ पाश्चात्य विद्वानोके वचन उद्धृत करके, अपने कथनकी पुष्टि करनेमे कोई ऐब नहीं समझते।

प्रोफेसर रायली साहब लिखते है,—"हिन्दुओंका आयुर्वेद पुराना है। अरब और यूनानवालोसे बहुत पहलेका है।"

प्रोफेसर विल्सन महोदय लिखते है,—"भारतमे बहुत प्राचीन काल से चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन शास्त्रके पारदर्शी विद्वान् मौजूद है।"

पण्डितवर राइट आनरेबिल एलफिन्सटन महोदय लिखते है,— "भारतवर्षसे ही यूरोपवालोने चिकित्सा-विद्या सीखी थी। हिन्दुओंका रसायन शास्त्रका ज्ञान विस्मयजनक है एवं आशा और अनुमानसे अधिक है।"

"अयुल-उल" नामक एक अरबी-ग्रन्थमे लिखा है,—"आठवीं सदीमे, हिन्दुस्तानके पण्डित बगदादकी राज-सभामे आयुर्वेद और ज्योतिषकी शिक्षा देते थे। सरक, ससंस और वेदान,—ये तीन चिकित्सा ग्रन्थ हिन्दुस्तानसे अरबमे लाये गये थे।"

अरबसे इन ग्रन्थोंका अनुवाद यूरोपमे गया। सत्रहवी शताब्दी तक, अरबकी चिकित्सा-प्रणाली यूरोपीय चिकित्साकी मूल थी।

प्राचीन भारतवासी मुर्दोंको चीर-फाड़ कर ज्ञान लाभ करते थे और अस्त्र-चिकित्सा भी करते थे, जिसके लिये वे १२७ प्रकारके अस्त्र व्यवहार करते थे ।

डाक्टर रायली ने लिखा है,—"वास्तवमे यह बड़ी ही विस्मयकर वात है कि, उस समयके चिकित्सक मुर्देकी पथरीको काटकर वाहर निकाल लेते थे, यन्त्रो द्वारा पेटसे वच्चेको निकाल सकते थे। भारत-वासियों ने ही सवसे पहले रसायन विद्याकी आलोचना आरम्भ की थी। धातु-द्वारा वनी हुई औषधियोके सेवनकी व्यवस्था भी चरक-सुश्रुतमें पाई जाती है ।"

ईसामसीहसे चार शताब्दी पहिले, यूरोपके दिग्विजयी सिकन्दरकी सेनाकी चिकित्साके लिये हिन्दू वैद्य नियुक्त हुए थे। असाध्य रोगोके नष्ट करनेके लिये, वह वहुतसे भारतीय वैद्योके, वड़े मान-सम्मानसे अपने साथ ले गया था।

ईरानके खलीफा हारूँरशीद अपनी चिकित्साके लिये हिन्दू वैद्योको रखते थे।

प्रसिद्ध हकीम जालीनूस अपनी पुस्तकमें लिखता है—"आयुर्वेद-विद्या "पहले हिन्दुस्तानसे मिश्रमे और मिश्रसे यूनान और अरवमे गई। मेरे उस्ताद हकीम अफलातून ने हिन्दुस्तान जाकर 'कालज्ञानके' ३६ लक्षण और वहुतसे ग्रन्थ पढ़े थे। उनका सारभाग वह एक तख्ती पर लिख कर गलेमे लटकाये रहते थे। उस तख्तीकी विद्याको वह किसी शागिर्दको न सिखाते थे। मरते समय उन्होने अपनी वीवीसे कहा कि, मेरे मरने पर इस तख्तीको मेरी कब्रमे गाड़ देना। उनकी वीवी ने उनके मरने पर वह तख्ती उनके साथ कब्रमे गड़वा दी। मुझे इस वातसे वड़ा अचम्भा हुआ। एक रोज कब्र खोद कर मैंने वह तख्ती निकाल ली। पीछेसे मैंने उस विद्यामें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। मेरी देखा-देखी अरस्तू और उनके शिष्योंने भी हिन्दुस्तान जाकर चिकित्सा-शास्त्र पढ़ा।"

एक चिकित्सा-शास्त्र ही नहीं और भी अनेक विद्याये भारत से ही सब देशोमे पहुँची है। गणित-शास्त्र, दशमलव, रेखागणित, त्रिकोणमिति और वीज-गणितका भी सबसे पहिले भारतमे ही आविष्कार हुआ था।

पण्डितवर कोलब्रुक और वेण्टनी साहब के मत से भारत मे ही ज्योतिष-विद्या की चर्चा सबसे प्रथम हुई। ईसाकी पॉचवी शताब्दी मे आर्यभटने चन्द्र और सूर्यग्रहणका वास्तविक कारण और पृथ्वी का मेरुदण्डपर आवर्त्तन आविष्कार किया था। उन्होने पृथ्वीकी परिधिका जो निर्णय किया था, उसमें और पाश्चात्य पण्डितो के निर्णय मे बहुत ही कम प्रभेद है। पृथ्वी का गोल होना भी प्राचीन भारतने स्थिर कर लिया था।

जर्मन पण्डित सोपनहर साहबने लिखा है,—"ईसामसीहके धर्मका मूल भारतवर्ष ही है। इसीसे ज्ञात होता है, कि सम्भवतः भारतसे ही ईसाई धर्म गृहीत हुआ है।"

फरासीसी-दार्शनिक कुज़्जने लिखा है, "भारतके दर्शनमे ऐसा गम्भीर सत्य भरा हुआ है कि, पाश्चात्य पण्डित गम्भीर गवेषणा कर चुकनेपर जिस स्थानपर पहुँचे है, वहॉपर प्रत्येक दर्शनके सत्यको देखकर स्तम्भित हुए है। उससे आगे बढ़ने की शक्ति उनमे नहीं है। हम लोग भारतके दर्शनके आगे सिर झुकाकर बाधित है। हम लोग इस बातको स्वीकार करनेको बाध्य है, कि सर्वश्रेष्ठ दर्शन—मानव जातिके शैशव क्षेत्र—पूर्व्वी प्रदेशमें ही सबसे पहिले उत्पन्न हुआ है।"

पण्डितवर मेक्समूलर महोदयने लिखा है,—"भारतका वेदान्त सर्व्वोत्कृष्ट धर्म और सर्व्वोत्कृष्ट दर्शन है।"

संगीतने भी सबसे पहले भारतमे ही जन्म-ग्रहण किया था। भारतके सप्त स्वर फारस होकर अरब मे पहुंचे और वहॉसे ग्यारवी शताब्दीके आरम्भमें यूरोप पहुँचे।

बस, अब और अधिक लिखने की जरूरत नही। ऐसे-ऐसे हजारों प्रमाण हैं, जिनसे साबित होता है कि, पृथ्वीतलपर जितने धर्म है,

जितनी विद्याये है, उन सबका उद्गम-स्थान भारतवर्ष ही है, इसमें जरा भी शक और शुबह नहीं।

पाठक! जरा विचारिये तो सही, एक दिन वह था कि सिकन्दरे आजम, अपनी सेना की चिकित्सा के लिये, भारतीय वैद्यो को बड़े सम्मान और आदर के साथ ले गया था, एक दिन वह था कि ईरान के खलीफा हारूँरशीद अपनी चिकित्साके लिये भारतीय वैद्योको रखते थे, एकदिन वह था कि अरस्तू और अफलातून जैसे हकीम भारत से आयुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त करके जगत्के श्रेष्ठ चिकित्सकोमे परिगणित हुए थे, और एक दिन आजका है, कि भारतीय चिकित्सा निकम्मी समझी जाती है। कहिये, आयुर्वेदके उस गौरव, आयुर्वेद की उस उन्नति और आजकी अवनतिमे जमीन-आस्मानका अन्तर है न? कहाँ वे दिन और कहाँ आज के दिन! सोचने से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। हम तो मनुष्य है, रक्त और मांस से बने है, हमारे आँसू न रुके, इसमें आश्चर्यही क्या? इस काठकी लेखनीके भी आँसू नहीं रुकते!

हाय! एक दिन भारतीय चिकित्सा-शास्त्र ने दुनिनाँमे सर्वोच्च आसन ग्रहण किया था और आज उसे सबसे नीचा आसन भी नहीं मिलता। जो यूरोपियन हमे आज अर्द्ध-सभ्य, जङ्गली और मूर्ख बताते है, हमारी चिकित्सा-विद्याकी हँसी उड़ाते हुए उसे निकम्मी बताते है, उनके पूर्व पुरुष जिस जमाने मे सचमुच के वनमानुप थे, अपने रहने के लिये घर बनाना भी न जानते थे, जमीन मे जानवरो की तरह भिटे खोदकर रहते थे, उनसे हजारो-लाखो वर्ष पहिले, वल्कि उनके भी गुरु सभ्यताभिमानी ग्रीस और रोमके सभ्यता सीखने और होस सँभालने से भी बहुत पहले, भारत मे ऐसे-ऐसे वैद्यरत्न हो गये है, जिन्होने मनुष्यो के कटे सिर जोड़ दिये है, अन्धोंको सूझता कर दिया है और बूढ़ो को नौजवान पट्ठा बना दिया है। क्या अश्विनीकुमारो द्वारा ब्रह्मा के कटे सिर के जोड़े जाने की बात निरी

कपोल-कल्पना ही है ? क्या इन्द्रका भुजस्तम्भ रोग और चन्द्रमाका क्षय रोग आराम होनेकी बात निरी गप्प ही है ? नहीं, हरगिज नहीं; अगर और देशोकी पुरानी-पुरानी किताबोकी बाते बिल्कुल मिथ्या हैं, तो हमारे पुराणोकी बातें भी मिथ्या हो सकती है। अगर उनमे लिखी बाते सत्य है, तो हमारे यहाँ की बाते भी निस्सन्देह सच है। भेद इतना ही है, कि आज भारतका सितारा बुलन्दीपर नहीं है, आज इसके दिन अच्छे नहीं है, आज इसकी दशा गिरी हुई है, इसीसे सारी बाते झूठी है। पर सत्य कभी छिपाये नहीं छिपता, इसीसे सत्यवादी पक्षपात-शून्य यूरोपीय विद्वानोने भी आयुर्वेदके गौरवकी बात मुक्तकंठसे स्वीकार की है।

जबतक भारतमे विदेशियोका पदार्पण नही हुआ, तब तक भारतीय चिकित्सा-विद्या दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करती रही। उनके आगमनसे ही इसकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। जबसे भारतके अन्तिम हिन्दू-सम्राट् दिल्लीश्वर महाराज पृथ्वीराजका पतन हुआ, और मुसल्मान-शासन इस अभागे देशमे जारी हुआ, तभीसे धीरे-धीरे आयुर्वेदकी अवनति आरम्भ हुई, भारतका अमूल्य रत्न, पृथ्वीका गौरव-स्वरूप, हमारा आयुर्वेद-शास्त्र अवनत अवस्थाको प्राप्त होने लगा।

हिन्दू राजाओंके जमानेमे आयुर्वेद संसारकी सभी चिकित्सा-विद्याओंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और भारत-सन्तानोकी स्वास्थ्यरक्षाका एक-मात्र अवलम्ब था। भारतीय चिकित्सा भारतीय सन्तानकी मातावत् हितकारिणी थी। हमारे पूर्वज भारतीय चिकित्साके प्रभावसे ही शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लाभ करके, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष,—इन चारो पदार्थोंकी प्राप्ति करते थे, और आज-कलकी अपेक्षा दीर्घजीवी, बली एवं नीरोग होते थे। प्रथम तो आयुर्वेदकी रीतिपर चलनेसे कोई रोगी होता ही न था, यदि होता भी था, तो वह सहज ही मे आरोग्य लाभ करता था और फिर उसे जन्म-भर

उस रोगके दर्शन न होते थे। आजकलकी तरह उस जमानेमे रोगियों और डाक्टरोकी भरमार न थी।

उस जमानेमे आजकलकी तरह यहाँ वालोंको किसी भी रोगमे विदेशी चिकित्साका आश्रय न लेना पड़ता था, क्योंकि आयुर्वेद-विद्या पूर्ण थी। गॉव-गॉवमे आयुर्वेदीय पाठशालाये थीं, इसलिये सद्वैद्योका अभाव न था। यहॉकी जड़ी बूटियोसे अल्प प्रयास और कम खर्चमे ही रोगी रोगमुक्त हो जाते थे। यहीसे हजारो औषधियॉ अरब, ईरान और रूम होकर यूनान और इटलीमे पहुँचती थीं और वहॉ से स्पेन, फ्रान्स, इङ्गलैड और जर्मनीमे फैल जाती थीं। वहॉसे उनके एवजमे प्रभूत धन भारतमे आता था। उसी जमानेमें यह भारत-वसुन्धरा पृथ्वीका स्वर्ग थी।

मुसल्मानी जमानेमे मुसल्मान हकीमोकी कद्र हुई और भारतीय वैद्योकी बे-कदरी हुई। उनका मान बढ़ा, इनका मान घटा। जगह-जगह उन्हींकी पूछ होने लगी। अजखर, अफ्तयून, गावजुबॉ, गुलेबनफशा आदिने सोंठ, मिर्च, पीपर आदिके स्थानपर अपना अधिकार जमा लिया। जमानेने एकदम पल्टा खाया, और क्या-से-क्या हो गया! राजा-प्रजा सभीकी नजरोमे आयुर्वेदीय चिकित्सा हेच जॅचने लगी। वैद्योकी रोजी मारी गई, हकीमोके पौबारे होने लगे। औषधालय उठ गये, उनकी जगह दवाखाने और शफाखाने खुल गये। पंसारियों की दवाये मिट्टीकी हॉडियो और टाटकी थैलियोमे पड़ी-पड़ी सड़ने, गलने और पुरानी होने लगी। काम न पड़नेसे पंसारी बेचारे उनके नाम तक भूलने लगे। पंसारियोंका रोजगार अत्तारोने छीन लिया। जहॉ देखो वही तुख्मखतमी, गुलेनीलोफर, गुलेबनफशाकी चर्चा होने लगी। इतनेपर भी खैर यह हुई कि, आयुर्वेदपरसे लोगो का विश्वास एक दम ही उठ न गया। उस ज़मानेमे भी सम्राट् कुल-तिलक अकबर जैसे पक्षपातहीन प्रजावत्सल बादशाह आयुर्वेदकी क़दर

करते थे और अपने दरबार मे विद्वान् वैद्यो को रखते थे। इसी से आयुर्वेद-विद्या की मृत्यु नही हुई, वह जीवित बनी रही। हाँ, उसका वह पूर्व्व गौरव, उसकी वह महत्ता न रही।

मुसल्मानो के अत्याचारी शासनका अन्त होने पर—न्यायप्रिय, प्रजावत्सला ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस देशकी मालिक हुई। ब्रिटिश-शासनमे अङ्गरेजो ने हमारे शास्त्रोका अङ्गरेजी भाषामे उल्था करवाया। इङ्गलैण्ड-निवासियो ने अविश्रान्त परिश्रम और उद्योगसे अच्छे अच्छे रत्न चुन लिये और अपनी चतुराईसे उनका रूपान्तर करके, उन्हे पहलेसे उत्तम बना दिया। यहाँसे ही हजारों दवायें विलायत लेजा-लेजाकर उनके सत्त, पौडर, गोली, टिंचर, तेल प्रभृति बना-बनाकर, उनको मनोमुग्ध-कारिणी शीशियो और डिब्बियोमे बन्द करके, उनके ऊपर रङ्गीन लेबल और विधानपत्र लगा-लगाकर यहाँ भेजने लगे। इसमे शक नही, कि उन्होंने यह काम बड़े कठिन परिश्रम और अध्यवसायसे किया, इसलिए वे किसी प्रकारसे दोप-भागी नहीं। यह तो मनुष्यका धर्म ही है। दोप-भागी हम और हमारे पिछली सदीमे हानेवाले पूर्व्व-पुरुष है, जो आलसी की तरह हाथ पर हाथ धरे बैठे देखा किये। अब जबकि रोग एक दम असाध्य हो गया, तब आँखे खुली है और अब आयुर्वेदकी उन्नति-उन्नति कह कर लोग चिल्लाने लगे है। मगर अब चूँकि रोगने घर कर लिया है, इसलिए वह सहजमे जा नही सकता।

अब क्या दशा है? सुनिये,—जगह-जगह खैराती अस्पताल खुल गये है। मुफ्तमे इलाज होता है, साधारण रोग सहजमे आराम हो जाते हैं। दवाओ के कूटने-पीसने और काढ़े वगैरः के औटाने छानने की दिक्कतें मिट गयी है, इसीसे अब सब लोग उधर ही ढल पड़े है। अस्त्र-चिकित्सामे डाक्टरोके हाथ की सफाई देखकर तो यहाँके लोगोने डाक्टरोको धन्वन्तरिका बाबा ही समझ लिया है। सबको यह विश्वास होगया है, कि यूरोपीय चिकित्साके मुक़ाबलेमे आयुर्वेदीय चिकित्सा कोई चीज़ नहीं।

जिन्होने अङ्गरेजी पढ़ी है, जिन्होने विद्वता-सूचक डिग्रियॉ प्राप्त की हैं, जो वकील, बैरिस्टर और जज प्रभृति हो गये हैं, वे भारतवासी हिन्दू-सन्तान होने पर भी, आयुर्वेद चिकित्साको हिकारतकी नजरसे देखते हैं और यूरोपीय चिकित्साका आदर करते है। जरा-जरासे रोगों मे, जिन्हे पहले यहॉ की स्त्रियॉ भी आराम कर लेती थी, डाक्टरोको ही बुलाते और उनकी मुट्ठियॉ गर्म करते हैं। यह सब उन्हे स्वीकार है पर वैद्य महाशय की शकल देखना मंजूर नहीं। इन बडे-बडो की देखा-देखी साधारण लोगोका झुकाव भी उधर ही होगया है। उन्हे भी आयुर्वेदीय चिकित्सा अच्छी नहीं लगती। अब शहरोंके रहनेवाले पन्द्रह आने लोग डाक्टरी इलाज कराते है। जो पहले विलायती दवाओंसे कोसो दूर भागते थे, जो प्राणों के कण्ठ मे आ जाने पर भी मद्य-मिश्रित दवा खाना पसंद न करते थे, वे भी आजकल शराब मिली हुई दवाये गटागट पीते और चर्बी-मिश्रित मरहमोको शरीर पर लगाते नहीं हिचकते। अब सोडावाटर और लैमनेड बिना तो उनकी रोटी नहीं पचती। जरा खॉसी बढ़ी कि. 'काडलिवर आयल' पीना शुरू किया।

नतीजा यह हुआ कि वैद्योका रोजगार बिल्कुल मारा गया। जिनके घरोंमे पीढ़ियोंसे चिकित्सा-व्यवसाय होता था, वे भी अब पेट भरनेके लिए खेती, दुकानदारी और नौकरी करके अपना और अपने परिवारका पेट पालने लगे। जुलाहोने जिस तरह देशी कपड़ेकी पूछ न होने से कपड़ा बिनना छोड़ कर दूसरा धन्धा कर लिया, छीपियों ने छीट रंगना छोड़ दिया, उसी तरह पूछ न होनेसे, ग्राहकोंके न होनेसे, पेटभराई न होनेसे, वैद्योने निरुत्साहित होकर अपना पुश्तैनी धन्धा त्याग दिया। जिस धन्धेमे लाभ नहीं होता, जिस रोजगारसे कुटुम-परिवारका पालन नहीं होता, उसे कोई भी नहीं करता।

जिस ज़मानेमे भारतमे आयुर्वेदकी तूती बोलती थी, यहॉ लाखों पंसारियोकी दूकाने अव्वल दर्जे की थीं, उनके यहाँ हर तरह

की उत्तमोत्तम औषधियाँ हर समय तैयार मिलती थीं। वे लोग रोज़-रोज काम पड़नेसे दवाओंके नाम, रूप और गुण जाननेमें आजकलके अधिकांश वैद्योंसे अच्छे होते थे। वैद्य लोग जिनके यहाँ अच्छी और ताजी चीज मिलती थी, उन्हींके यहाँ अपने नुसख़े भेजते थे। जो पंसारी पुरानी और सड़ी-घुनी दवाएँ रखते थे, उनसे वे कतई सम्पर्क न रखते थ, इसीसे पन्सारियोंका धन्धा मारा जाता था। इस भयके मारे वे सदा आयुर्वेदके नियमानुसार नयी-पुरानी जैसी-जैसी दवायें रखनी चाहिएँ, वैसी-ही-वैसी रखते थे। अब पंसारी वैसा काम नहीं करते। काम न पड़नेसे दवाओंके नाम और रूप गुण आदि भूलते जाते है। नयी-पुरानीका तो उन्हे ख़याल ही नहीं। पाँच वरस हो जायँ, चाहे एक युग हो जाय, जब तक हाँड़ी या थैलीमे दवा रहती है वेचते रहते हैं। अनेक वार एकके वदलेमे दूसरी दवा दे देते है। प्रथम तो वेचारोंको रोजमर्रा काममे आनेवाली सोंठ, मिर्च, हल्दी, असगन्ध आदि सौ-पचास दवाओंके सिवा नाम ही याद नहीं। यदि किसीको याद भी होते है, तो वह इच्छित औषधिके अभावमें, ग्राहकके मारे जानेके भयसे, दूसरी ही कोई चीज सिर चेप देता है, क्योंकि वैद्य महोदयको तो स्वयं दवाकी पहचान नहीं। पहलेके वैद्य चिकित्साके काममे आने वाली प्रत्येक जड़ी-बूटीको भली भाँति पहचानते थे, स्वयं जङ्गलोंमे जाकर ले आते थे, इसलिये पंसारी भी उनसे डरते थे। परन्तु आज-कलके अधिकाश वैद्य पंसारियोंसे भी गये-बीते होते है। ये लोग पुस्तकोंसे नुसख़े लिखकर ले जाते है और पंसारीसे कहते है, भाई ठीक-ठीक दवा देना। पंसारी दो चार वारमे वैद्यजीके औषधि-ज्ञानकी थाह ले लेता है और फिर मनमानी करने लगता है। कहिये, ऐसी दवाये क्या रोगोंको आराम कर सकती हैं? ऐसी-ऐसी बातोंसे ही आयुर्वेद वदनाम हो गया है। जब असल

हथियारकी यह दशा है, तब चिकित्सामे सफलता कैसे हो ? सभी जानते है, कि जिसके पास अच्छे-अच्छे हथियार होते है, वही शत्रुको युद्धमे परास्त कर सकता है ।

आजकलकी वैद्यक-शिक्षा सिवा चंद आयुर्वेद-विद्यालयोके, बिल्कुल निकम्मी होती है । "अमृत-सागर" या "वैद्य-जीवन" को गुरु से पढ़कर या स्वयं देखकर अनेक वैद्य बन जाते है । भला ऐसे वैद्य इस कठिन काममे कैसे सफलता प्राप्त कर सकते है ? चिकित्सा करना बड़ी होशियारी और जिम्मेवारीका काम है । वैद्यकी शरणमे आये हुए रोगीका जीवन-मरण वैद्यकी चिकित्सा-चातुरीपर ही निर्भर है । इसलिये पहले जमानेके विद्वान् चिकित्सातत्त्व-मर्म्मज्ञ वैद्य उत्तमोत्तम शिष्योंको इस विद्याकी शिक्षा देते थे । जिन मनुष्योंके स्वभावमे सहृदयता, दयालुता, परोपकारिता न देखते थे, उन्हे अपने पास तक न फटकने देते थे । धर्मभीरु विद्वानोको अपना शिष्य बनाकर, उनसे अनेक प्रकारकी प्रतिज्ञाये कराकर और स्वयं निष्कपट भावसे विद्या पढ़ानेकी प्रतिज्ञा करके, शिष्योंको आयुर्वेद की शिक्षा देते थे । उन्हे शास्त्रोंको पढ़ाते, व्याख्यान देते, एक-एक विषयको खोल-खोलकर समझाते, उनकी शंकाओका समाधान करते और औषधियोंकी पहचान करानेके लिये उन्हे अपने साथ जङ्गल-पहाड़ोमे ले जाते थे । अस्त्र-चिकित्सा सिखाते समय खर-बूजे तरबूज आदि फलोपर चीर-फाड़ करना सिखाते थे । इस तरह परिश्रम करनेसे जब शिष्य आयुर्वेदमे पारदर्शी हो जाता था, वनौषधियोंके नाम, रूप और गुणके पहचाननेमे परिपक्व हो जाता था, शल्य शालाक्य और काय-चिकित्साके सर्वाङ्ग सीख लेता था, दवाओका बनाना अच्छी तरह जान जाता था, चिकित्सा-कर्ममे अनु-भवी हो जाता था, हस्तक्रियामे निपुण हो जाता था, तब गुरु महाशय उसकी परीक्षा लेकर, उसे चिकित्सा-कर्ममे हाथ डालनेकी आज्ञा

देते थे। शिष्य भी जब तक पूर्ण पण्डित और अनुभवी न हो जाता था, गुरुका पीछा न छोड़ता था। दाससे भी अधिक गुरु महाशयकी सेवा-टहल और ख़ुशामद करता था। जब चिकित्सा-कर्ममें पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त कर लेता था, तब गुरुसे आशीर्वाद लेकर वैद्यका व्यवसाय करता था। कहिये, आजकल वैसे वैद्य-गुरु और शिष्य कहाँ है? आजकल पहलेकी तरह कौन आयुर्वेद सीखता है और कौन सिखाता है? यदि पहलेकी पढ़ाईका नमूना कहीं मौजूद है, तो बङ्ग देशमें कुछ अवश्य है। वहाँके लोगोंकी आयुर्वेदपर कुछ श्रद्धा-भक्ति भी है, पर एक बङ्गालसे सारे भारतका पूरा नहीं पड़ सकता। बंग देशमें भी अब वह पुरानी बात नहीं है, दिन-पर-दिन कविराज घटते जाते हैं और मेडीकल हाल और फारमेसियाँ खुलती चली जाती हैं।

यद्यपि अब भी भारतमें भिषक्श्रेष्ठ प्राणदाता सद्वैद्योंका नितांत अभाव नहीं है, तथापि ऐसे पूर्ण वैद्य उँगलियोंपर गिने जाने योग्य ही हैं। ऐसे उत्तम वैद्य, इतने लम्बे-चौड़े भारतमें, ऊँट की दाढ़में जीरेके समान हैं। आजकल अधिकता ढोंगी वैद्यों की है। ऐसे ही वैद्योंने आयुर्वेदको बदनाम कर रक्खा है। आजकल वैद्य-गुण-युक्त वैद्य कम हैं, किन्तु चरकमें लिखे हुए छद्म-चर या ढोंगी वैद्य बहुत हैं। ऐसे ढोंगी वैद्य दो चार तरहके तेल वगैरः बनाना सीखकर, अपने तई वैद्य कहते हैं। ये लोग गलियोंमें घूमा करते हैं या बाज़ारोंमें जहाँ-जहाँ मनुष्योंका आवागमन अधिक होता है वैठे रहते हैं; कुछ ज़िलोंकी या तहसीलकी कचहरियों या छोटे-छोटे कस्बोंकी धर्मशालाओंमें अड्डा जमा लेते हैं। जहाँ किसीको बीमार देखते है, ऐसी बातें बनाने लगते हैं, कि कच्ची समझके लोग इनके फन्देमें फँस ही जाते हैं। इनमेंसे अनेक तो अमीरों तक पहुँच जाते हैं। बडे लोगों तक पहुँचनेके लिये ये लोग बड़ी-बड़ी चालाकियोंसे काम लेते हैं। उनके नौकरोंसे मिल जाते हैं, उन्हींके द्वारा अपनी सिफारिश पहुँचवाते हैं।

अमीरोको बड़े कीमती-कीमती नुसखे बतलाते हैं और रुपया वसूल करके स्वयं दवा तैयार करनेका ढोग रचते है। जब उनसे रोगी आराम नही होता, रोगीका रोग बढ़ने लगता है, रोगी मरण दशाको प्राप्त हो जाता है,वहाँसे अपना उल्लू सीधा करके चुपचाप नौ दो ग्यारह हो जाते है। ऐसे ढोगियोका यदि हम सविस्तर हाल लिखें, तो एक अलग पोथा हो जाय, इसलिए हम इतना इशारा ही काफी समझते हैं।

एक प्रकारके ढोगी वैद्य और होते है, जो इन मामूलियोसे कुछ अच्छे होते है, पर चिकित्साके नितान्त अयोग्य होते है। ये अमृतसागर, वैद्य-जीवन, वैद्यविनोद, योग-चिन्तामणि प्रभृति दो चार छोटे-छोटे ग्रन्थोको इधर-उधरसे देख लेते हैं। वैद्योंकी तरह दो चार खरल, सौ-पचास शीशियाँ और डब्बे-डब्बी तथा अमृतवान आदि रखते है। मौके-मौकेके दो चार श्लोक भी कण्ठ कर रखते है। प्रसङ्ग हो या न हो, हर समय उन्हे कहा करते है। रोग-परीक्षा इन्हे नही आती, मगर डण्डा-सी नाड़ी जरूर पकड़ लेते हैं। नाड़ी-द्वारा रोगका हाल न समझनेपर भी, प्रतिष्ठा-भङ्ग होनेके खयालसे, रोगीसे कुछ पूछते नही। अगर रोगी कहता है, कि वैद्यजी! मेरे रोगकी हालत तो सुन लीजिये। रोगीके मुँहसे यह सुनते ही आप बिगड़कर फरमाने लगते है, पूछने-बतानेकी कोई जरूरत नही। हमारे बाबा ऐसे थे, कि रोगीकी नाड़ी-मात्र देखकर रोगीका कितने ही दिनो पहलेका खाया-पीया और बरसो पहले मरण-जीवनकी बात कह देते थे। ऐसे वैद्य ख़ूब पुजते है, रोगी और उसके सम्बन्धी इन्हे साक्षात धन्वन्तरि समझने लगते है। ऐसे वैद्य महोदय रोगियोको सीधा यम-सदन पहुँचाते है। अगर रोगकी अवस्था ख़राब देखते है, तो ऐसी-ऐसी दवाये तजवीज करते है, जिन्हे रोगी मुहैया न कर सके या वह आसानीसे न मिल सकती हों। जब रोग आराम नही होता, तब कहने लगते है, कि हम क्या करें, जब

हथियार ही नहीं, तब शत्रुका नाश कैसे हो? यदि दैवात्, किसी तरह रोगमे कमी देखते है, तो अपनी तारीफोंके पुल बॉधने लगते है और जमीन-आस्मानको एक कर देते हैं।

अब जब कि हमारे देशके वैद्योकी यह हालत है, तब हमारे आयुर्वेदकी बदनामी क्यो न हो? देशी-विदेशी उसकी हॅसी क्यो न करे? हाय! सदा अवस्था किसीकी यकसॉ नहीं रहती। जिस तरह दिनभरमे सूर्य्यकी कई अवस्थायें हो जाती है, वैसे ही सबकी अवस्थायें बदलती रहती है। जिसका उत्थान होता है, उसका पतन भी निश्चय ही होता है। एक दिन जो भारत चिकित्सा, ज्योतिष, गणित, दर्शन प्रभृति विद्याओंमे सब देशोंका सिरमौर था, जहॉ धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, चरक, सुश्रुत जैसे भिषक्श्रेष्ठ पैदा हुए थे और जो सारे जगत्का गुरु था—आज उसी भारत और उसकी आयुर्वेद-विद्याकी यह दुर्गति! भगवान् ही जाने, इसके वे दिन कब फिरेंगे?

आयुर्वेदकी उन्नति कैसे हो ?
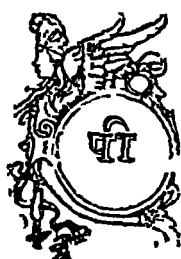
पीछे हम आयुर्वेदकी अतीत और वर्त्तमान दशाका दिग्दर्शन कर आये है। उससे पाठकोने समझ लिया होगा कि, जो भारतीय-चिकित्सा एक दिन आस्मानसे बाते करती थी, आज वही कालके प्रभावसे, भारत-वासियोके अपने दोषसे रसातलको पहुँच गई है। आयुर्वेद-विद्या हमारी बपौती है, वही हमारे काम आयेगी। कहा है कि, "खोटा पैसा और खोटा बेटा बुरे वक्तमे काम आता है।" मतलब यह है कि, अपनी चीज़ ही समयपर काम आती है, इसलिये आगा-पीछा सोचकर, हमे अपनी चिकित्सा-विद्याकी उन्नति करनी चाहिये। अगर हम भारतवासी ही इसके उद्धारके लिये प्रयत्नशील न होगे, तन-मन और धनसे इसकी उन्नतिके लिये मुस्तैद न होगे, तो और किसे गरज पड़ी है जो इसकी उन्नतिकी फिक्र करेगा ? अगर हम इसी तरह आलस्यमे पड़े रहेगे, इसकी ओर नजर उठाकर भी न देखेगे, तो इसकी अवस्था और भी खराब हो जायगी। अभी तो ऐसा कुछ नही बिगड़ा है। रोग असाध्य नही, किन्तु कष्ट-साध्य है, भरपूर चेष्टा करनेसे हालत के सुधर जानेकी सम्भावना है इसलिये हमे कटिबद्ध होकर, इसकी उन्नतिके उपाय खोज निकालने और करने चाहिये।

हमारी छोटी-सी अक्लमे, इसकी उन्नतिके, निम्नलिखित चंद उपाय अच्छे जॅचते है:—

(१) विलायती दवाओसे परहेज किया जाय और स्वदेशी दवाओसे प्रेम ।

(२) जगह-जगह आयुर्वेद-विद्यालय खोले जायँ ।

(३) चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थोका हिन्दीमे—सरल हिन्दीमे—अनुवाद कराकर प्रकाशन कराया जाय ।

(४) संस्कृत और हिन्दी दोनो भाषाओमे वैद्यक-परीक्षायें ली जायँ ।

(५) जिन वैद्योंने, किसी स्कूलसे या प्राइवेट तौरसे संस्कृत या हिन्दीमे वैद्यक-परीक्षा पास की हो, उन्हीसे इलाज कराया जाय । मूढ़ वैद्योको पास भी न आने दिया जाय ।

(६) वैद्यका धन्धा करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य जब तक पूर्ण वैद्य न हो ले, तब तक चिकित्सा-कर्ममे हाथ न डाले, बल्कि ऐसा करनेको घोर पाप समझे ।

(७) अगर भारतवासी सचमुच ही आयुर्वेद-विद्याकी उन्नति चाहते हैं, भारतसे मूढ़ वैद्योंका अस्तित्व ही मिटा देना चाहते हैं, तो उन्हे, चढ़ी उम्रमें भी, आयुर्वेद-ग्रन्थ स्वयं पढ़ने और अपनी सन्तानोको, और विद्याओंके साथ, अवश्य पढवाने चाहिये । इससे बड़ा लाभ होगा । वे स्वयं दीर्घजीवी होंगे एवं रोगोंके हमलो और डाक्टरोकी जेबें भरनेसे बचेंगे । सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि, सभीके थोड़ी-बहुत वैद्य-विद्या पढने और जाननेसे मूर्ख वैद्योका नाम ही भारतसे उठ जायगा । पहले जमानेमे, प्रायः सभी धनी लोग इस विद्याको पढ़ते थे । जबसे यह चाल उठ गई, भारतमे मूढ़ वैद्य बरसाती मेडको की तरह पैदा होने लग गये । धन्यवाद है ! भगवान् कृष्णचन्द्रको कि, इस "चिकित्सा-चन्द्रोदय" के निकलनेसे, अब, पचास फीसदी अन्य व्यवसाय करनेवाले धनी और गरीब लोग भी फिर घर बैठे आयुर्वेद पढ़ने लगे ।

आयुर्वेदका पढ़ना सभीके लिये हितकर है।

मनुष्यमात्रको थोड़ा या बहुत चिकित्सा-विद्याका अभ्यास अवश्य ही करना चाहिये। क्योंकि चिकित्सा-शास्त्रके पढनेसे दीर्घायु प्राप्त करनेके उपाय, असमयकी मृत्युसे बचनेके उपाय, सदा निरोग या तन्दुरुस्त रहनेके नियम, रोग हो जानेपर रोगोंके नाश करनेके उपाय प्रभृति हजारों जानने योग्य विषय मनुष्यको मालूम होते है। जो आयुर्वेद-विद्यासे बिल्कुल कोरे रहते है, यहाँ तक कि दिनचर्य्या और रात्रिचर्य्या भी नहीं जानते, वे निश्चय ही अपनी अज्ञानताके कारण सदा रोगोंके फन्देमे फँसे रहते और थोड़ी उम्रमे ही मर जाते है; लेकिन जो लोग थोड़ी-बहुत आयुर्वेद-विद्या सीख लेते है, आयुर्वेदके नियमोंका पालन करते है, वे रोगोंसे सदा बचे रहते और लम्बी उम्र तक जीते तथा अपना और पराया दोनोका भला करते है। जहाँ वैद्य नहीं होता, वहाँ रोग होनेपर अपनी और अपने पड़ौसीकी जीवन-रक्षा करते है।

शास्त्रमें मनुष्यकी एकसौ एक मृत्युएँ लिखी है। उनमेसे एक मृत्यु तो सभीका संहार करती है। उससे कोई भी किसीको बचा नहीं सकता और न स्वयं ही बच सकता है, लेकिन-और मृत्युएँ जो आगन्तुक कारणोंसे होती है, उनसे वैद्य मनुष्यको बचा सकता है। जब आयुर्वेदके जाननेवाला औरोंकी रक्षा कर सकता है, तब स्वयं भी

सावधान रहनेसे बच सकता है और यदि कारण उपस्थित हो ही जाय, तो अपनी रक्षा भी कर सकता है। इसके सिवा आयुर्वेदके जाननेवाला, किसी अवस्थामे भी, जीविका बिना भूखा नहीं मर सकता। आफत-मुसीबत, देश-परदेश, ग्राम और नगरमे, हर कहीं, हर हालतमे, वह अपनी और अपने साथियोंकी जीविकाका उपाय कर सकता है। इस विद्याका पढना किसी दशामे भी व्यर्थ नहीं होता। देखिये शास्त्रमे लिखा है:—

आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वाणा विहिताश्चये।
पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता नीरोगाश्च भवन्तिते॥
क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री, क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति, चिकित्सा नास्ति निष्फला॥

जो आयुर्वेद और धर्मशास्त्रकी युक्तियोंके अनुसार चलते है, उनको रोग नहीं होते और उनके पुण्य और आयुकी वृद्धि होती है। चिकित्सा करनेसे कहीं धनकी प्राप्ति होती है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म होता है, कहीं यश मिलता है और कहीं क्रिया करनेसे अभ्यास बढ़ता है, किन्तु वैद्यक-विद्या कभी निष्फल नहीं होती। और भी कहा है:—

न देशो मनुजैर्हीनो, न मनुष्यो निरामयाः।
ततः सर्वत्र वैद्यानां, सुसिद्धा एव वृत्तयः॥

ऐसा कोई देश नहीं जहाँ मनुष्य न हो और ऐसा कोई मनुष्य नही जिसे रोग न होता हो, इसलिये वैद्योंकी आजीविका सर्वत्र सिद्ध है।

जबकि और विद्याये निष्फल हो जाती हैं, उनके पढनेसे अनेक बार कोई लाभ नहीं होता, दस-दस और बारह-बारह वर्ष पढने, ढेर धन स्वाहा करने और जने-जनेकी खुशामद करनेपर भी पेट नहीं भरता, तब लोग इसी विद्याको क्यो न पढ़ें, जो हर हालतमे सुखदायक और फलप्रद है। वैद्योंकी सभी जगह जरूरत रहती है। घरके ही काम करने लायक हों, तो अपनी कड़ी कमाईका धन गैरोंको क्यों दिया जाय?

कौन ? वर्ण आयुर्वेद पढ़ सकते हैं !

अब इस बातपर विचार करना है कि, कौन-कौन वर्ण या जाति के लोग आयुर्वेद पढ़नेके अधिकारी है और कौन-कौन वर्ण या जातिके नही। समयको देखते तो, हमारी समझमे, हर कोई आयुर्वेद पढ़ सकता है। अगर यह बात न भी मानी जाय, तो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य,—इन तीन वर्णोंके लिये तो शास्त्रमे आयुर्वेद पढनेकी खुली आज्ञा है। देखिये, "सुश्रुत" में लिखा है:—

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामन्यतममन्वय वयः
शीलशौर्य शौचाचार विनय शक्तिबल मेधा
धृति स्मृति मति प्रतिपातियुक्तं तनु जिह-
वौष्ट दन्ताग्र मृजु वक्राक्षिनासं प्रसन्नाचित्त
वाक् चेष्ट क्लेशसह च भिषक् शिष्यमुपनयेत्॥

शिक्षा देनेवाला वैद्य—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और इन तीन वर्णोंसे पैदा हुई अनुलोमज जातियोंको आयुर्वेद सिखा सकता है, किन्तु जिसे पढ़ानेके लिये चुने, उसमे इतनी बाते अवश्य देख ले—उसका वंश उत्तम है कि नही, वह पुरुषार्थी, पवित्र, सदाचारी, विनयी, सामर्थ्यवान् और बलवान् है कि नही, उसमे बुद्धि, धीरज, स्मरण-शक्ति, विचार-शक्ति और विद्वत्ता है कि नही, उसकी जीभ, उसके होठ, और उसके दाँतोंके अगले हिस्से पतले है कि नही, उसका चित्त, उसकी वाणी और उसकी चेष्टाएँ अच्छी है कि नही, अर्थात् अगर देखे कि पढ़नेवालेने अच्छे कुलमे जन्म लिया है, उसकी उम्र कठिन आयुर्वेद के पढ़ने समझने-योग्य है, वह पुरुषार्थी, पवित्र, सदाचारी, सामर्थ्यवान्,

बलवान्, बुद्धिमान्, धैर्यवान्, पढ़ी हुई बातको याद रख सकनेवाला, प्रत्येक बातपर विचार और विवेकसे तर्क-वितर्क करनेवाला है, उसकी जीभ, उसके होठ और दाँतोंके अग्रभाग पतले है, उसका चित्त स्थिर है, उसकी वाणी सुन्दर है, उसकी चेष्टाएँ उत्तम है और वह पढ़नेके कष्टको सह सकेगा। यदि इतने लक्षण हो तो उसे बेखटके आयुर्वेद पढ़ावे।

और भी देखिये, शूद्रके लिये भी आयुर्वेद पढ़ानेकी आज्ञा है:—

शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्न मन्त्रवर्ज्यमनुपनीतमध्यापयेदित्यके।

लिखा है कि, अच्छे कुलमे पैदा हुए गुणवान शूद्रको भी, बिना उपनयन-संस्कार कराये, वेदका मंत्र-भाग छोड़कर, आयुर्वेद पढ़ाया जा सकता है।

कहिये, अब तो चारो वर्णोंको आयुर्वेद पढ़ानेका अधिकार है, इस बातमे कोई सशय नही रहा। प्रत्येक मनुष्यको आयुर्वेद पढ़ना जरूरी है, इसीसे ऋषियोने किसी भी वर्णको इस विद्याके पढ़नेसे महरूम नही रक्खा।

आयुर्वेद पढ़ने और पढ़ानेवालोंके ध्यान देने योग्य बातें ।

चिकित्सा-शास्त्र सब शास्त्रोंसे कठिन है, इसलिये इसके पढ़नेमें बड़ी सख्त मिहनत और चतुराईकी जरूरत है। आयुर्वेद पढ़नेकी इच्छा रखनेवालेको पहले हिन्दी और संस्कृतका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये, अथवा जो लोग हिन्दीमें आयुर्वेद पढ़ें, उन्हें हिन्दीमें और जो लोग संस्कृतमें पढ़ें उन्हें दोनोंमें पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिये। दोनोंमेंसे एक या दोनों भाषाओंमें पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त किये बिना, आयुर्वेद सीखा जा नहीं सकता। आयुर्वेदका पढ़ना बालकोंका खेल नहीं है, इसलिये इसके पढ़नेमें परिश्रमसे जी न चुराना चाहिये। जो लोग परिश्रमसे जी चुराते हैं, सुख या आरामकी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें कोई भी विद्या पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं हो सकती, जिसमें आयुर्वेदका आना तो नितान्त असम्भव ही है। जिससे आयुर्वेद सीखा जाय, उसके सामने हँसने, बकवाद करने और अन्यान्य प्रकारके ऐब या चपलता प्रभृतिसे सदा दूर रहना चाहिये। गुरुसे सदा निष्कपट व्यवहार रखना चाहिये, भूलकर भी धोखेबाजी करना या छल-छिद्रोंसे काम लेना उचित नहीं। गुरुमें सच्ची भक्ति और श्रद्धा रखनी चाहिये एवं तन-मन-धनसे गुरुकी सेवा करनी चाहिये। सदा ऐसे कर्म करने चाहिये, जिनसे शिष्यके गुरुका प्रेम दिन-ब-दिन बढ़े क्योंकि यह विद्या गुरुकी नहीं आनी। गुरुको भी अपने भक्त, विनयी और निष्कपट भावसे दिल खोलकर, अपनी सामर्थ्य-

भर, चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाना चाहिये। देखिये प्राचीन कालके वैद्य-गुरु किस तरहकी प्रतिज्ञा करके अपने शिष्योंको पढ़ाते थे। गुरु महोदय कहते थेः—

अहं वा त्वयि सम्यः वर्त्तमाने यद्यऽन्यथा-
दर्शी स्यामेनोभाग्भवेयमफला विद्यश्च ॥

"तेरे अच्छा बर्ताव करनेपर भी, यदि मैं तुझे अच्छी तरह न पढाऊँ, तो मैं पापका भागी होऊँ और मेरी विद्या निष्फल हो।" आजकल ऐसे गुरु दुर्लभ हैं।

आयुर्वेद पढ़नेवालेको आयुर्वेदका प्रत्येक अङ्ग भली भाँति पढ़ना चाहिये। प्रत्येक अङ्ग ही नहीं, छोटी-से-छोटी परिभाषाको भी बिना अच्छी तरह समझे और याद किये न छोड़ना चाहिये। तोताकी तरह रटना अच्छा नहीं, प्रत्येक बात गुरुसे पूछकर अच्छी तरह समझनी चाहिये, बिना समझे ढेरका ढेर पढ़नेसे कोई लाभ नहीं। "सुश्रुत" में कहा हैः—

यथाखरश्चन्दनभारवाही भारस्यवेत्ता न तु चन्दनस्य।
एव ही शास्त्राणि बहूनधीत्य चार्थेषु मूढाः खरवद वहन्ति ॥

चन्दनका बोझा उठानेवाला गधा केवल भारकी बात जानता है, किन्तु चन्दन और उसके गुणोंको नहीं जानता, इसी तरह जो बहुतसे शास्त्रोंको पढ़ लेते हैं, किन्तु उनके अर्थोंको नहीं समझते, वे गधेकी तरह भार उठानेवाले होते हैं।

आजकल के वैद्योंकी तरह एकाध शास्त्र पढ़कर ही विद्यार्थीको सन्तोष न कर लेना चाहिये। वैद्यक-विद्या पढ़नेवाला जितने ही शास्त्र अधिक पढ़ेगा, उसे चिकित्सा-कर्ममें उतनी ही अधिक सफलता होगी। कोई भी मनुष्य केवल एक या दो ग्रन्थ पढ़ लेनेसे चिकित्सा करनेके योग्य नहीं हो जाता, क्योंकि एक ही शास्त्रमें सारी बातें नहीं लिखी होतीं। यों तो सभी शास्त्रोंमें एक ही तरहकी बातें हैं, फिर

भी जो एक मे नही है वह दूसरेमे है और जो दूसरेमें नही है वह तीसरेमे है। इसलिये प्रत्येक शास्त्रका पढ़ना आवश्यक है। देखिये, इस विषयमे "सुश्रुत" महाशय कैसी अच्छी सलाह देते है। वे कहते है:—

एकशास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्र निश्चयम् ।
तस्मादबहुश्रुतः शास्त्र दिजानीयाच्चिकित्सकः ॥
शास्त्र गुरुमुखोदगीर्णमादायोपास्य चाऽसकृत् ।
यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥

जो मनुष्य एक शास्त्रको पढ़ लेता है, वह शास्त्रके निश्चयको नही जान सकता, किन्तु जो बहुतसे शास्त्रोंको पढ़ता और सुनता है, वही चिकित्साके मर्मको समझता है। जा मनुष्य गुरुके मुखसे पढ़े हुए शास्त्रपर बारम्बार विचार करता है और विचारकर काम करता है वही वैद्य है, उसके सिवा और सब चोर है।

विद्यार्थीको रोग-परीक्षा और ओषधि-विज्ञान दोनों विषय खूब अच्छी तरह सीखने चाहिये। जिस वैद्यको रोगोके निदान-कारण, पूर्वरूप, उपशय और सम्प्राप्ति—इन पाँचों का भली भाँति ज्ञान नही होता, वह वैद्य दवा करना जानने पर भी दो कौड़ीका होता है। जिन वैद्यों को रोग की पहचान नही, जिन हकीमोंको मर्जकी तशखीस नही, वह हरगिज कामयाब नही होते, उन्हे चिकित्सा मे सफलता नही होती। यह दृढ़ निश्चय है कि, रोग-परीक्षामे निपुण हुए बिना, वैद्यको सफलता हो ही नही सकती। मान लो, कहीं धूलमे लट्ठ लग हो गया, किसी तरह सफलता हो ही गयी, तो भी अधिकांश स्थलोमे असफलता ही होगी। रोगको न समझनेवाले वैद्यके हाथमे जाकर हजारो रोगियोंके रोग असाध्य हो जाते है, हजारो रोगियोंके प्राण असमयमे ही नाश होते है। इसीसे कहा है कि, आयुर्वेदमें "रोग-परीक्षा विद्या" मुख्य है, उसका जानना परमावश्यक है। शास्त्रोंमे कहा है:—

यस्तु रोगमविज्ञाय, कर्माण्यारभते भिषक्।
अप्यौषध विधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया॥
भेषज केवल कर्त्तुं यो जानाति न चामयम्।
वैद्यकर्म स चेत कुर्याद्वधमर्हति राजतः॥

जो वैद्य औषधियोंके प्रयोगकी विधि यानी दवा देनेकी रीति तो जानता है, किन्तु रोगोंको नही पहचानता, लेकिन बिना रोगके पहचाने ही चिकित्सा करना आरम्भ कर देता है, उसे कभी सफलता हो जाती है और कभी नही होती।

जो मनुष्य केवल औषधि देना जानता है, किन्तु रोगोको नही पहचानता, अगर ऐसा मनुष्य चिकित्सा-कर्म करे, तो राजाको उसे प्राणदण्डकी सजा देनी चाहिए।

देखिये, हिन्दू राजाओंके राज्यमे मूढ़ वैद्योके लिए कैसी-कैसी कठोर सजाये मुकर्रर थी, इसीसे उस ज़मानेमे मूढ़ वैद्य न होते थे। बहुत ही ठीक बात है। वैद्यको रोग-परीक्षामे अवश्य निपुण होना चाहिए। क्योकि जिस तरह तीर या गोली चलानेवालेका काम पहले शिस्त लगाना और पीछे गोली मारना है, उसी तरह वैद्यका काम सबसे पहले रोगका निर्णय करना और पीछे दवा देना है। यदि निशानेबाज़ बिना निशाना ठीक किये ही गोली छोड़ेगा, तो कदाचित ही गोली निशानेपर लगेगी, किन्तु वह निशाना ठीक करके गोली चलावेगा, तो गोली ठीक निशानेपर लगेगी, कभी बार खाली न जायगा। इसी तरह वैद्य यदि रोगीके रोगको अच्छी तरह समझकर दवा देगा, तो निश्चय ही उसे सफलता होगी। 'रोग-परीक्षा' वैद्यके कामोंमें मुख्य है। इसीसे शास्त्रमें पहले ही रोग-परीक्षा करना मुख्य लिखा है। कहा है:—

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥
यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्य कोविदः।
देश-कालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम्॥

वैद्यको उचित है कि पहले रोगकी परीक्षा करे, पीछे औषधिकी परीक्षा करे, जब रोग और औषधि दोनोंकी परीक्षा कर चुके तब ज्ञान-पूर्वक चिकित्सा करे ।

जो वैद्य रोगोंके भेदोंको जानता है, जो वैद्य सब तरहकी दवाओंको जानता है, जो देश-काल और मात्राके प्रमाणको जानता है, उसकी सिद्धि अवश्य होती है ।

रोगको पहचानना—मर्जकी तशखीस करना बड़ा कठिन काम है । बाज-बाज मौकोंपर अच्छे-अच्छे अनुभवी वैद्य इस काममें चकर खा जाते हैं । इसलिए शास्त्रकारोंने रोग पहचाननेके बहुतसे तरीके लिखे हैं:—

(१) आप्तोपदेश यानी शास्त्रोपदेशसे ।

(२) प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा ।

(३) अनुमान-द्वारा ।

किसीने लिखा है कि देखने, छूने और हाल पूछनेसे ही प्रायः सब रोगोंका ज्ञान हो जाता है, किन्तु सुश्रुतने इसके लिए छै उपाय लिखे हैं । उन्होंने कहा है:—

(१) कानसे, (२) चमड़ेसे, (३) आँखोंसे, (४) जीभसे, (५) नाकसे —इन पाँचों इन्द्रियोंसे तथा (६) रोगीसे हाल पूछनेसे, रोगोंका ज्ञान हो जाता है। सुश्रुताचार्यके बादके विद्वानोंने रोग जाननेका उपाय "नाड़ी परीक्षा" और निकाला है। इन सब परीक्षाओंकी बात हम आगे चलकर अच्छी तरह समझावेंगे। यहाँ तो इतना केवल विद्यार्थी के ध्यान देनेके लिए लिखा है। पहला काम विद्यार्थीका रोगोंके नाम, और उनके रूप प्रभृतिका ज्ञान प्राप्त करना और उनको हर समय कण्ठाग्र रखना है। अगर वैद्योंको रोगके लक्षण ही याद न होंगे, तो प्रत्यक्ष और अनुमान से कोई लाभ न होगा।

रोग-परीक्षाके अन्तर्गत और भी कितनी ही परीक्षायें होती हैं, उन सब परीक्षाओंके भी हो जानेपर, 'रोग-परीक्षा'का काम पूरा होता

है। यहाँ हम चन्द परीक्षाओंकी बात विद्यार्थीका औत्सुक्य मिटानेके लिये लिखते हैं। इनको खूब खोल-खोलकर आगे समझावेंगे। यहाँ यही समझाना चाहते हैं कि, चरकके लिखे तीनों उपायों अथवा सुश्रुत के लिखे छै उपायोंसे वैद्यको कौन-कौन परीक्षायें करनी होती हैं। "सुश्रुत" में लिखा है:—

आतुरमुपक्रममाणेन भिषजायुरेवादौ परीक्ष्येत् ।
सत्यप्यायुषि व्याध्यृत्वग्नियो देहबल सत्व
सात्म्य प्रकृति भेषज देशान् परीक्ष्येत् ॥

रोगीकी चिकित्सा करनेवालेको पहले (१) आयु, (२) रोग, (३) ऋतु, (४) अग्नि, (५) अवस्था, (६) देह, (७) बल, (८) सत्व, (९) सात्म्य, (१०) प्रकृति, (११) औषधि और (१२) देश प्रभृतिकी परीक्षा करके चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिये।

पहले आयुकी परीक्षा बड़े मतलबसे लिखी है। इसका मतलब यह है कि, पहले आयुको देखना चाहिये। अगर रोगीकी उम्र मालूम हो, तो इलाज करना चाहिये। अगर रोगीकी उम्र ही बाकी न हो, तो वैद्यको भूलकर भी इलाज न करना चाहिये, क्योंकि जिसकी उम्र ही पूरी हो चुकी है, उसकी उम्र वैद्य नहीं बढ़ा सकता। वैद्य तो, उम्रके होनेपर, रोगीको रोगमुक्त कर सकता है। कहा है:—

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ।
तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत् ॥
व्याधेस्तत्व परिज्ञान, वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

वैद्यको पहले यत्नपूर्व्वक रोगीकी आयु-परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि आयुके दीर्घ होनेसे ही यानी लम्बी उम्र होनेसे ही चिकित्सा सफल होती है। रोगके तत्वको जानना और रोगीकी तकलीफको दूर करना—यही वैद्यका काम है। वैद्य आयुका स्वामी नहीं है, यानी जिसकी आयु नहीं रही है, उसे आयु दे दे, वैद्यमे यह सामर्थ्य नहीं है।

जिस तरह रोग-परीक्षामे पण्डित होना आवश्यक है, उसी तरह औषधियोंके मामलेमे भी पूर्ण जानकारी रखना उचित है। जो वैद्य केवल रोगोंकी पहचान तो जानता है, मगर औषधियोंके मामलेमें कुछ नहीं समझता, उसे चिकित्सामे कभी सफलता नहीं होती। केवल रोग पहचान लेनेसे ही, बिना दवाके, रोगीका रोग निवारण हो नहीं सकता, इसलिये यदि कोई रोगी ऐसे वैद्यके हाथमे पड़ जाता है, तो वृथा प्राण गँवाता है। कहा है:—

यस्तु केवल रोगज्ञो भेषजेष्वविचक्षणः।
तं वैद्य प्राप्य रोगी स्याद् यथा नौर्नाविकविना॥

जो वैद्य केवल रोगोंको पहचानता है, किन्तु औषधि करना नहीं जानता, अगर ऐसा वैद्य रोगीकी चिकित्सा करता है, तो रोगी इस तरह विपदमे फँसता है, जिस तरह नाव बिना मल्लाहोंके विपदमे फँसती है।

औषधियोंके नाम और उनकी पहचान जान लेनेसे ही काम नहीं चल सकता। औषधियोंके गुण, बल, वीर्य, विपाक आदि सभी विषयोमे जानकारी रखनेकी जरूरत है। जो औषधियोंके विषयमे इतना भी नहीं जानता, वह वृथा चिकित्सक होनेका ढोंग करता है और प्राणियोंकी प्राणहानि करता है। "चरक" मे लिखा है:—

औषधीर्नाम रूपाभ्या जानन्ते ह्य जपावने।
अविपाश्चैव गोपाश्चये चान्ये वनवासिनः॥
न नाम ज्ञानमात्रेण रूपज्ञानेन वा पुनः।
औषधीना परां प्राप्ति कश्चिद्वेदितुमर्हति॥
योग विन्नाम रूपज्ञस्तासां तत्त्वविदुच्यते।
किं पुनर्यो विज्ञानीयादौषधीः सर्वथाभिषक्॥
योगमासन्त यो विद्या देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं विद्य स विज्ञेयो भिषक्तमः॥

गाय, भेड़ और बकरी चरानेवाले और जङ्गलमे रहनेवाले जङ्गलमे पैदा होनेवाली दवाओंके नाम और रूप जानते हैं, परन्तु मनुष्य औषधियोंके नाम और रूप जाननेसे ही औषधियोंके काममे लानेकी तरकीब

नहीं जान सकता। जो औषधियोंके नाम और रूप एवं उनके काममें लानेकी विधि जानता है, उसे "औषधि-तत्त्वज्ञ' कहते हैं और जो जङ्गलकी जड़ी-बूटियोंके नाम आदि पूरी तरहसे जानकर, उनको देश-काल और व्यक्ति-भेदसे काममें लाता है, उसे श्रेष्ठ वैद्य कहते हैं।

मतलब यह है कि वैद्य-विद्या सीखनेवालेको दवाओंके नाम, रूप, गुण, बल, वीर्य्य, विपाक और प्रभाव आदि अच्छी तरहसे सीखने चाहिये। यह विद्या "निघण्टु" रटने और जङ्गलमें जाकर जङ्गली लोगोंकी सहायतासे जड़ी-बूटियोंके देखनेसे अच्छी तरह आ सकती है। जो वैद्य "निघण्टु" नहीं जानता, उसकी कदम-कदमपर हँसी होती है। कहा है—

निघण्टु विना वैद्यो, विद्वान् व्याकरणं विना
अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हासस्य भाजनम्।

बिना निघण्टु पढ़ा वैद्य, बिना व्याकरण पढ़ा विद्वान् और बिना अभ्यासका तीरन्दाज—तीनों अपनी हँसी कराते हैं।

जो कुछ ऊपर लिखा है, उसके सिवा औषधियोंके प्रयोगकी विधि भी सद्वैद्यसे अच्छी तरह सीखनी चाहिये। यदि केवल दवाओंके नाम, रूप, गुण आदि मालूम हों, किन्तु उनके प्रयोग करनेकी रीति न मालूम हो, तो भी अर्थका अनर्थ होनेकी सम्भावना रहती है। यदि तीक्ष्ण विष भी कायदेसे काममें लाया जाय, तो उत्तम औषधिका काम देता है। यदि उत्तम औषधि भी, बेकायदे, ऊटपटाँग रीतिसे, काममें लाई जाय, तो तीक्ष्ण विषका काम करती है। घृत और मधु दोनों ही परमोत्तम पदार्थ हैं, किन्तु कोई अनजान इन दोनोंको समान भागमें मिलाकर काममें लावे, तो यह विषके समान हो जायँगे। इसलिये किसी विद्वान् और अनुभवी वैद्यके पास रहकर, दवा बनाने और चिकित्सा करनेका अभ्यास करना चाहिये। जो मनुष्य पूर्ण रूपसे शास्त्रोंको पढ़-समझ लेता है, और अनेक प्रकारकी अच्छी-अच्छी औषधियाँ तैयार रखता है, तो भी अगर उसने किसीके पास रहकर अपनी आँखोंसे चिकित्सा नहीं

देखी, स्वय अभ्यास नहीं किया, वह बहुधा घबराया करता है। इस-लिये चिकित्सा-कर्म अवश्य देखना चाहिये। कहा है:—

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक् ।
स मुह्यति आतुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवमे ॥
यस्तूभयज्ञो मतिमान्समर्थोऽर्थसाधने ।
आहवे कर्म निर्वोढू द्विचक्रः स्यन्दनो यथा ॥
पीण चाराघथाऽचक्षुर ज्ञानाद् भीत भीतवत् ।
नौर्मारुतवशोवाज्ञो भिषक चराति कर्मसु ॥
तस्माच्छास्त्रेऽर्थ विज्ञाने प्रवृत्तौ कर्म दर्शने ।
भिपक चतुष्टये युक्तः प्राणाभिपर उच्यते ॥

जो वैद्य केवल चिकित्सा-शास्त्रको जानता है,लेकिन चिकित्सा करनेमे कुशल नहीं है, वह रोगीके पास जाकर इस तरह घबराता है, जिस तरह कायर पुरुष लड़ाईमे जाकर घबराता है।

शास्त्र और क्रिया दोनोंको पूरी तरहसे जाननेवाला वैद्य उसी तरह अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकता है; जिस तरह दो पहियोंका रथ युद्धमें अपना काम कर सकता है।

जिस तरह अन्धा, डरके मारे, आगेको हाथ चला-चलाकर चलता है,तूफानके जोरसे नाव जिस तरह उलट-पुलट होती या डगमगाती हुई चलती है, उसी तरह मूर्ख वैद्य घबराकर काम करता है।

जो शास्त्र और शास्त्रके अर्थको जानता है, जिसने औषधि करनेमे अनुभव प्राप्त कर लिया है, जिसने वैद्योंकी चिकित्सा-परिपाटी अच्छी तरह देख ली है, उस वैद्यको "प्राणदाता" कहते है।

बहुत लिखनेसे क्या, हमने अनेक बाते विद्यार्थीके जाननेके योग्य ऊपर लिखी हैं। इतनेसे ही विद्यार्थी बहुत कुछ समझ सकता है। सारांश यह कि, विद्यार्थीको चिकित्सा-शास्त्रके सब अङ्ग अच्छी तरहसे पढ़ने-समझने चाहियें। साथ ही किसी अनुभवी और विद्वान् वैद्यके पास रहकर चिकित्सा-कर्मका अभ्यास करना चाहिये, तभी वह पूर्ण वैद्य होकर मनुष्योंके इलाजमें हाथ डाल सकता है।

चिकित्सा-कर्म आरम्भ करने वालोंके लिये उपयोगी शिक्षा।

वैद्य जब तक आयुर्वेदके सब अङ्गोंको अच्छी तरह न पढ़ ले; गुरुके पास रहकर, गुरुके साथ-साथ जाकर चिकित्साका अभ्यास न कर ले, तब तक स्वयं किसीका इलाज न करे।

(२) वैद्यको चाहिये कि किसीको अनजानी, बिना आजमाई, दवा न दे, क्योंकि अनजानी दवा अनेक बार विष, शस्त्र, अग्नि और इन्द्रके वज्रके समान अनर्थ करती है। यदि किसी वैद्यको किसी दवाके नाम, रूप और गुण तो मालूम हों, किन्तु उसके देनेकी विधि न मालूम हो, तो रोगीको भूलकर भी न दे, क्योंकि अनजानपनसे, बेकायदे, दी हुई दवा बहुधा अनर्थ करती है, रोगीका रोग बढ़ता है अथवा उसके प्राण नाश होते हैं, और वैद्यका इहलोक और परलोक दोनोंमें बुरा होता है। इस लोकमें बदनामी होती और उस लोकमें दण्ड मिलता है।

(३) अगर तुमने वैद्यकशास्त्र नहीं पढ़ा है, अगर तुमने गुरुके पास रहकर चिकित्साका अभ्यास नहीं किया है, तो अपने पेट पालनेके लिये जबर्दस्ती वैद्य मत बनो। "चरक" में कहा है:—

वरमाशी विषविष क्वथितं ताम्रमेव वा।
पीतमत्याग्नि सन्तप्ता भक्षिता वाष्पयो गुडाः॥
न तु श्रुतवता वेशं बिभ्रता शरणागतात्।
गृहीतमन्न पान वा वित्तं वा रोगपीड़ितात्॥

साँपका जहर पीना अच्छा, गर्मागर्म औटाये ताम्बेका पीना अच्छा, आगमे लाल किये हुए लोहेके गोलेका निगलना अच्छा, किन्तु पढ़े-लिखे वैद्यका-सा रूप बनाकर, शरणमे आये हुए रोगीसे अन्नपान या धन लेना हरगिज अच्छा नहीं ।

(४) अगर आपमे वैद्यके सब गुण है, और वैद्यकी सम्पद आपके पास है, तो आप बेखटके मनुष्योकी प्राणरक्षा कीजिये, क्योंकि वैद्य मनुष्योंका प्राणरक्षक कहलाता है ।

अगर आप औषधिका उत्तम रूपसे प्रयोग करेंगे, तो आपको चिकित्सामे सफलता होगी, सफलता होनेसे आपकी नामवरी फैलेगी, नामवरी होनेसे लक्ष्मी आपके चरणोमे लोटेगी ।

(५) अगर आप उत्तम वैद्य होना चाहते है, तो युक्तिसे काम लें, क्योंकि चिकित्साकी सफलता युक्तिके अधीन है । युक्तिके जाननेवाले वैद्यकी सदा जय होती है । युक्ति जाननेवाला वैद्य औषधि जानने-वाले वैद्योसे ऊँचा रहता है । मतलब यह कि, दवाओके गुण और रोगोकी पहचान जाननेसे वैद्य उत्तम नहीं हो सकता, किन्तु कुछ ऊपरी युक्तियोंका जानना भी आवश्यक है । जैसे कोई पाचक औषधि किसी रोगीको ढेर सारी एक ही बार खिला देनेवाले वैद्यसे, कई बारमे उस औषधिको खिलानेवाला वैद्य उत्तम है । जो वैद्य मूर्खतासे, बिना सोचे-समझे, रोगीको कोई अमृत-समान दवा एक बार ही खिला देगा, उसके रोगीको निस्सन्देह आराम न होगा, उपकारके बदले अपकार होगा । किन्तु जो वैद्य समझ-बूझकर, रोगीका बलाबल विचारकर, दवाको कई बारमे रोगीको देगा, तो दवा अपना चमत्कार दिखावेगी । मान लो, किसी रोगीको जोरसे दस्त लग रहे हैं, यदि उस रोगीको एक बार ही एक छटाँक औषधि दे दी जाय, तो वह सारी दवा मलके साथ मिलकर, दस्तोके साथ निकल जायगी और कोई लाभ न करेगी । यदि उसी दवाके चार या छै भाग करके, दो दो

घण्टेपर दिये जायँ, तो वह पेटमे पचकर दस्तोको बन्द कर देगी। इसीको "युक्ति" कहते है । यह किसीके सिखानेसे नही आती—अपने आप ही आती है ।

(६) वैद्यको चाहिये कि, पहले रोगीको दवाकी हलकी मात्रा दे । बाज-बाज औकात अच्छी दवा भी रोगीके मुआफिक न होनेसे फायदेके बजाय उल्टा नुकसान करती है । जब देखे कि दवाने कोई हानि नही की, तब वैद्य दवाकी दूनी या ड्योढी मात्रा कर दे । इस तरह पहले थोड़ी मात्रामे दवा देने और पीछे हानि-लाभ देखकर मात्रा बढ़ा देनेसे कोई उपद्रव भी न होगा और रोगी आराम भी हो जायगा। अम्लपित्त-रोगमे 'क्षार' बहुधा लाभदायक होता है, किन्तु अगर वही क्षार अधिक मात्रा मे दे दिया जाता है, तो दस्त होने लगते है, खट्टी-खट्टी डकारे आने लगती है अथवा उदरस्तम्भ हो जाता है। अगर क्षारकी मात्रा अधिक न दी जाय, थोड़ी-थोडी कई बारमे दी जाय, तो कोई भी उपद्रव न हो और रोग आराम हो जाय । जो वैद्य बुद्धिमान् और युक्तिके जाननेवाले होते है, वे रोग और रोगी दोनोका विचार करके, मात्रा और कालके विभागसे, इलाज करते और सिद्धिलाभ करते है । "चरक" में लिखा है:—

मात्राकालाश्रया युक्ति', सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठितः ।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो, द्रव्यज्ञानवता सदा ॥

युक्ति, मात्रा और कालके आश्रय है, और सिद्धि युक्तिके आश्रय है, इसलिये युक्तिवान् वैद्य, दवाओके ज्ञान रखनेवाले वैद्यसे श्रेष्ठ होता है।

(७) वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी, ये चार चिकित्साके पाद हैं, अर्थात् इन चारोके ठीक होनेसे रोग शान्त होता है । इन चारोमेसे प्रत्येकमे चार-चार गुण होते है:—

शास्त्रमे पारदर्शिता, बहुदर्शिता, चतुराई और पवित्रता—ये वैद्यके चार गुण है ।

बहुधा, योग्यता, अनेक प्रकार के योग-वियोग-पूर्व्वक कल्पना और कीड़े प्रभृतिसे रहित होना—ये औषधिके चार गुण है ।

रोगीकी सेवा करना जानना, चतुराई, स्वामिभक्ति और पवित्रता—ये सेवकके चार गुण है ।

सब बातोका याद रखना, वैद्यकी आज्ञाका अक्षर-अक्षर पालन करना, निर्भय होना और अपने रोगका यथार्थ हाल कहना—ये रोगीके चार गुण है ।

इसका मतलब यह हे कि, यदि वैद्य, औषधि, सेवक और रोगीमे ऊपर कहे हुए गुण हो, तो बहुधा आरोग्यकी ही सम्भावना रहती है । इसलिये यदि वैद्य चारो गुणवाला हो, तो उसे औरोके गुण देखकर इलाज करना चाहिये, अर्थात् यदि रोगीकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाला मूर्ख हो, रोगी वैद्यकी आज्ञा माननेवाला न हो, अपने रोगका ठीक-ठीक हाल कहनेवाला न हो, वैद्यका कहा हुआ उसे याद न रहता हो—ऐसे-ऐसे दोष हो, तो वैद्य हरगिज इलाज न करे अन्यथा अपयशका पात्र होगा ।

भिषक् प्रभृति पादचतुष्टय,—ये सोलह गुण-सम्पन्न होनेसे रोग और आरोग्यके कारण है, परन्तु इन पादचतुष्टयोमे वैद्य प्रधान है, क्योकि उपदेश करना, आगा-पीछा सोचना, दवा देनेकी तरकीब बताना प्रभृति सब काम वैद्यके है । जिस तरह रसोइया, रसोई करनेके बर्तन, अग्नि और ईंधन—इन चारोसे रसोई तैयार होती है, पर इनमे "रसोइया" ही प्रधान है । यदि रसोइया उत्तम न हो, तो रसोई-कार्यके कारण-स्वरूप—बर्तन, ईंधन और अग्नि ये कितने ही अच्छे क्यो न हो, रसोई हरगिज उत्तम न होगी । इसी तरह औषधि, परिचारक (सेवक) और रोगीके अपने-अपने चारों गुण-युक्त होनेपर भी, यदि वैद्य अच्छा न हो, तो हरगिज आरोग्य-लाभ न होगा । इसीलिये वैद्यको प्रधान कहा है । और भी सुनिये,—कुम्हार, चाक, मिट्टी और सूत इन चारोसे घड़ा बनता है । लेकिन चाक, मिट्टी और

सूत हो, किन्तु कुम्हार न हो, तो घड़ा नहीं बन सकता, उसी तरह वैद्यके बिना रोगी, परिचारक और औषधिसे चिकित्सा नही हो सकती। मतलब यह निकला कि, सबमे वैद्य ही प्रधान है। उसीका उत्तम होना जरूरी है। चिकित्साकी सफलता-असफलताका दारमदार वैद्यपर ही निर्भर है। इसलिये वैद्यकी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है।

(८) यदि आप चिकित्सा-कर्ममे सफलता प्राप्त करना चाहे, तो आप शास्त्र और बुद्धि दोनोसे काम लीजिये। शास्त्र दर्पण है, और अपनी बुद्धि प्रतिविम्ब—अक्स—है। जिस तरह दर्पण और प्रतिबिम्बसे स्वरूपका ज्ञान होता है, उसी प्रकार शास्त्र और बुद्धि दोनोसे जो चिकित्सा की जाती है, वही चिकित्सा उत्तम होती है। जो वैद्य केवल शास्त्रपर चलते है, अपनी बुद्धिसे काम नही लेते, उन्हे सफलता नही होती।

(९) वैद्यको उचित है कि, रोगियोसे मैत्री करे और करुणासे काम ले, उत्साहके साथ साध्य रोगीकी चिकित्सा करे, स्वस्थ शरीर-वाले या मरनेवाले रोगीको दवा न दे।

(१०) वैद्यको रोग-परीक्षा करते समय साध्य और असाध्यका खयाल कभी न भूलना चाहिये। जो वैद्य साध्य और असाध्य दो प्रकारके विभाग करके चिकित्सा करता है, वह निश्चय ही रोगको आराम करता है, किन्तु जो वैद्य साध्य और असाध्यका खयाल नहीं करता, असाध्य रोगीका भी इलाज करना आरम्भ कर देता है, उसकी दुनियोंमे बदनामी होती है। लोग कहते है,—जब वैद्यजीको साध्य असाध्यका ही ज्ञान नही, तब क्यो चिकित्सा करके अपनी धूल उड़वाते है? शास्त्रमे कहा है:—

ये न कुर्वन्त्यसाध्यतां चिकित्सा ते भिषग्वराः।
अतः वैद्यः श्रमः कार्यः साध्यासाध्य परीक्षणे॥
साध्यासाध्य विभागज्ञो, ज्ञानपूर्व चिकित्सकः।
काले चारभते कर्म यत्तत् साधयति ध्रुवम्॥
स्वार्थ विद्या यशो हानिमुपक्रोशमसग्रहम्।

प्राप्नुयान्नियतं वैद्यो योऽसाध्य समुपाचरेत ॥
सद्वैद्यास्ते न येऽसाध्यानारभन्ते चिकित्सितुम् ।

जो असाध्य रोगीकी चिकित्सा नहीं करते, वे श्रेष्ठ वैद्य हैं, इसलिये वैद्यको साध्य-असाध्यकी परीक्षा करनी चाहिये।

जो साध्य-असाध्यके विभागको जाननेवाला वैद्य, साध्य-असाध्यका विचार करके चिकित्सा करना आरम्भ करता है, वह निश्चय ही रोगीको आराम करता है।

जो वैद्य असाध्य रोगीका इलाज करता है, उसके स्वार्थ, विद्या और यश तीनोकी हानि होती है, जगह-जगह उसकी निन्दा होती है और वह नालायक समझा जाता है।

जो असाध्यकी चिकित्सामे हाथ नहीं डालते, वह "सद्वैद्य" यानी उत्तम वैद्य हैं।

सारांश यह कि, असाध्यकी चिकित्सासे कोई लाभ नहीं। जो असाध्य है, वह आराम होगा नही, विना आराम हुए कुछ धन भी नहीं मिलेगा, कोरी बदनामीका ठीकरा पल्ले पड़ेगा। इसलिये धन और यश चाहते हो, तो असाध्य रोगीको हाथमे न लो।

(११) रोगीकी आयुका देखना वैद्यका सबसे पहला काम है। इसलिये चिकित्सामें सबसे पहले आयु-परीक्षा किया करो। अगर रोगीकी आयु दीखे, तो इलाज हाथमे लो, अगर रोगी आयु-हीन दीखे तो इन्कार करदो, कह दो कि हमसे इलाज न होगा। अगर आप आयुष्मान रोगीका इलाज करेंगे, तो रोगीको अवश्य आराम हो जायगा, आपको धन और यश मिलेगा। अगर आप लालचवश आयुष्यहीनका भी इलाज हाथमे ले लेंगे, तो रोगी तो आयु न होनेसे अवश्य मर ही जायगा, आपके पल्ले केवल बदनामी आवेगी। क्योंकि जिसकी आयु क्षीण हो गई है, जिसकी उम्र पूरी हो गई है, उसकी उम्र कोई वैद्य बढ़ा नहीं सकता, वैद्यका काम तो रोगके तत्वको समझना और रोगीकी वेदनाका नाश करना है। देखिये शास्त्रमे कहा है:—

भिषगादौ परीक्षेत् रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ।
तत आयुषिविस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत ॥
व्याधेस्तत्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्व न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥

वैद्यको सबसे पहले यत्नपूर्वक रोगीकी आयु-परीक्षा करनी चाहिये, क्योकि आयुके दीर्घ होनेसे ही चिकित्सा सफल होती है ।

रोगके तत्त्वको जानना और रोगीकी पीड़ाको दूर करना—यही वैद्यका काम है, वैद्य आयुका स्वामी नहीं है ।

अगर कोई यह सवाल करे कि, जब आयु ही होगी, तब रोगी मरेगा ही क्यो, आप ही लोट-पीटकर खड़ा हो जायगा, इसलिये ऐसी दशामे चिकित्साकी जरूरत ही क्या है ? जिनकी ऐसी समझ है, वे गलती करते हैं। आयु होनेपर भी रोगी विना चिकित्साके मर जाता है, इस विषयमे अपनी ओरसे कुछ न कहकर, हम दो चार ऋषि-वाक्य उद्धृत करते है। आशा है, उनसे वैसे प्रश्न करनेवालोंको सन्तोष हो जायगा। कहा है:—

साध्या याप्यत्वमायान्ति, याप्याश्चसाध्यता तथा ।
घ्नाति प्राणानसाध्यास्तु, नराणाम क्रियावताम् ॥
आयुष्मान् पुरुषो जीवेत्सव्यथो भेषजै विना ।
भेषजेन पुनर्जीवेत स एव हि निरामयः ॥
सति आयुषि नोपायं विनोत्थातुक्षमो रुजीः ।
दर्शितश्चात्र दृष्टान्तः पङ्कमयो यथा गजः ॥
सति चायुषि नष्टः स्यादामयैश्चाचिकित्सितः ।
यथा सत्यपि तैलादो दीपो निर्वाति वात्यया ॥

चिकित्सा न करनेवाले मनुष्योके साध्य रोग याप्य और याप्य असाध्य हो जाते है; असाध्य रोग निश्चय ही मनुष्यके प्राणनाश कर डालते हैं।

आयु होनेपर यदि चिकित्सा न की जाय, तो मनुष्य जीवेगा, परन्तु दुःखोके साथ, और यदि चिकित्सा की जायगी, तो बिना दुःखोके जीवेगा।

आयुके होनेपर भी रोगी विना उपायोके नही उठ सकता, जिस तरह कीचमे फँसा हुआ हाथी विना खींचे नही निकल सकता ।

जिस तरह तेल बत्ती वगैरःके होनेपर भी, दीपक हवाके झोंकेसे बुझ जाता है, उसी तरह, आयु होनेपर भी, रोगी विना चिकित्साके मर जाता है ।

(१२) साध्यासाध्य परीक्षाके सिवा, वैद्यको "अरिष्ट-चिह्न" अवश्य देखने चाहिएँ । अरिष्ट-चिह्नोंसे वैद्यको मृत्युका पता बहुत ठीक लगता है । पहले वैद्य अरिष्ट-चिह्नोके जानकार और अभ्यासी होनेके कारण ही, बरसो पहले रोगीकी मृत्यु बता दिया करते थे । इसलिए वैद्यको अरिष्ट-चिह्नोंकी परीक्षा अवश्यमेव करनी चाहिये । जो वैद्य "अरिष्ट-चिह्नो" को देखकर इलाज करता है, वह देवताकी तरह पुजता है । जो विना अरिष्ट-चिह्नोंको देखे इलाज करते है, वे बदनाम होते है । अरिष्ट-चिह्नोके विषयमे हम आगे लिखेगे, तथापि इस जगह इतना बता देनेमे हर्ज नही कि, अरिष्ट किसे कहते है । जिन लक्षणोके होनेसे रोगीकी मृत्यु निश्चय ही हो, यदि ऐसे ही चिह्न नजर आवें, तो उन चिह्नोको "अरिष्ट" या "रिष्ट' कहते है । जिस तरह वृक्षमे फूल आनेसे फल लगनेकी, धूआँ होनेसे आग होनेकी और बादल होनेसे वर्षाकी सम्भावना होती है, उसी तरह अरिष्ट-चिह्न होनेसे मृत्यु होनेकी सम्भावना होती है। वङ्गसेन महोदय कहते हैं:—

न त्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते ।
मरणञ्चापि तत्रास्ति यत्रारिष्ट पुरः सरम् ॥

अरिष्ट होनेसे मृत्यु अवश्य होती है । वह मृत्यु नही, जिसमे पहले अरिष्टके लक्षण न हो और वह अरिष्ट नहीं, जिसके होनेसे मरण न हो । वाग्भट्टने कहा है.—

विना अरिष्टं नास्ति मरण, दृष्ट रिष्टम् च जीवितम् ।
अरिष्टे रिष्ट विज्ञान न च रिष्टेऽत्य नैपुणात् ॥

अरिष्ट बिना मरण नही होता और अरिष्ट होनेसे जिन्दगी नही

रहती। जो अरिष्ट-चिह्न जाननेमे निपुण नहीं है, उनको अरिष्ट-ज्ञान नहीं होता।

वङ्गसेनने कहा है:—

असिद्धिं प्राप्नुयाल्लोके, प्रतिकुर्वन गतायुषः।
तस्माद्यत्नेनारिष्टानि लक्षयेत् कुशलो भिषक्॥

जिसकी आयु पूरी हो गई है, उस मनुष्यकी चिकित्सा करनेसे वैद्यकी सिद्धि नहीं होती। इस वास्ते चतुर वैद्यको अच्छी तरहसे 'अरिष्ट' देखकर इलाज करना चाहिये। सुश्रुतने कहा है:—

एतान्यारिष्टरूपाणि, सम्यग् बुद्धेत भिषक्।
साध्यासाध्यपरीक्षाया स राज्ञः संमतो भवेत्॥

जो वैद्य इन अरिष्ट-लक्षणोंको अच्छी तरह जानता है और साध्या-साध्यकी परीक्षा करनेमे निपुण है, वह राजाओंके योग्य होता है।

अरिष्ट-चिह्नोंके पहचाननेका अभ्यास करनेसे रोगीकी आयुका हाल वैद्य फौरन जान जाता है। इसलिये वैद्य इनका अभ्यास करे और आयु-परीक्षाके लिये इनसे चिकित्सामे अवश्य काम ले।

(१३) अगर चिकित्सामे विशेष सफलताकी इच्छा रखते हो, तो रोगीके पास जाकर इतनी बातें अवश्य देखो:—

१—रोगीकी आयु अल्प है, मध्यम है या दीर्घ है। अरिष्ट-चिह्नोंसे ही आयुका पता लगता है।

२—अगर आयु शेष हो, तो देखो कि रोगीको कौन रोग है, रोग होनेके कारण क्या है? रोगके पूर्ण रूपसे प्रकट होनेके पहले क्या-क्या चिह्न प्रकट हुए थे?

३—रोगके मालूम हो जानेपर, रोगीकी साध्यता और असाध्यताका विचार करो। साथ-ही-साथ यह भी देखो कि, कोई अरिष्ट-चिह्न तो नहीं है। अगर रोग असाध्य हो, अरिष्ट-चिह्न स्पष्ट नज़र आवे, तो रोगीको त्याग दो। अगर रोग साध्य हो, अरिष्ट न हो, तो बुद्धिमानीसे इलाज

करनेका विचार करो, मगर इलाजका विचार करनेके पहले निम्नलिखित बातोंका विचार और भी करोः—

४—देखो कि ऋतु कौनसी है? इस ऋतुमे कौनसे दोषका कोप होता है? यह ऋतु रोगीके वातादि दोषोंको शान्त करनेवाली है या कुपित करनेवाली, ऋतु-तुल्यता है अथवा नही।

५—रोगीकी अग्नि कैसी है? अग्नि तीक्ष्ण है, मन्द है या सम है या विषम है।

६—रोगीकी अवस्था कितनी है, यानी उसकी उम्र क्या है? रोगी बालक है, जवान है या बूढा है? अवस्था जानकर इस बातका विचार करो कि, इस अवस्थामे कौनसा दोष बढ़ा हुआ रहता है। यह रोग जो रोगीको है, इस अवस्थामे जोर करता है या कमजोर रहता है, यानी सामान्य-साध्य रहता है या कष्टसाध्य। दवा देते समय रोगीकी अवस्थानुसार ही दवाकी मात्रा तजवीज करो। बालक और वृद्ध* रोगियोंकी चिकित्सामें सावधानीकी जरूरत है, क्योकि ये दोनो कोमल और बलहीन होते है।

७—रोगीका शरीर दुबला है या मोटा अथवा स्वाभाविक है।

८—रोगीमे कितना बल है? रोगी बलवान् है या बलहीन? रोगीके बलाबलका विचार करके ही दवा देनी चाहिये। यदि वैद्य दुर्बल रोगीको अति बलवान् औषधि दे दे, तो रोगीके मर जानेकी सम्भावना है। कमजोर रोगी अति बलिष्ट, अत्यन्त गर्म और अत्यन्त शीतल दवा अथवा अग्नि-कर्म, क्षार-कर्म और शस्त्र-कर्मको नहीं सह सकता। कमजोर रोगी बहुत तेज दवासे अक्सर मर जाता है। इसलिये दुर्बल रोगीको हल्की दवा देनी चाहिए। अगर तेज दवा देनेकी जरूरत हो, तो थोड़ी-थोड़ी मात्रामे कई बार देनी चाहिए, जिससे किसी प्रकारके उपद्रवकी

---

* ६० वर्षके बाद वृद्धावस्था आरम्भ होती है। इस अवस्थामें "वायु" बहुत बढ़ जाता है।

सम्भावना न रहे। विशेषकर स्त्रियोके मामलेमे इस बातका और भी ख़याल रखना चाहिये, क्योकि स्त्रियोका हृदय अस्थिर—चंचल—नर्म, खुला हुआ और अत्यन्त डरपोक होता है। जो वैद्य इन बातोंका विचार किये बिना दवा देते है, वे रोगीकी प्राणहानि करते है।

९—रोगीके सत्व यानी मनकी परीक्षा करनी चाहिये। देखना चाहिये, रोगी प्रवर-सत्व है, मध्य-सत्व है या हीन-सत्व। आत्माके साथ मनका संयोग होनेसे, मन शरीरका पालन-पोषण करता है। सत्व, बल-भेदके कारण, तीन प्रकारका होता है।

प्रवर-सत्ववाला प्राणी निज और आगन्तु कारणसे हुई घोर पीड़ासे भी नहीं घबराता। मध्य-सत्ववाला दूसरेकी देखा-देखी या दूसरेकी सहायतासे पीडाको सहन कर सकता है। हीन सत्ववाला न तो आप धीरज रखता है और न दूसरेकी सहायतासे धैर्य्य धारण करता है। ऐसे पुरुष, बड़े भारी डील-डौलके होनेपर भी, जरासी पीड़ा नहीं सह सकते। लड़ाईकी भयंकर बात सुननेसे या कहीं ख़ून गिरता देखकर ही बेहोश हो जाते हैं अथवा उनका चेहरा फक्क हो जाता है।

१०—सात्म्य-परीक्षा भी करनी चाहिये। देखना चाहिये कि, रोगीको कैसा आहार-विहार अनुकूल होता है, यानी कैसा खाना-पीना उसके मिजाजके मुआफिक होता है। सात्म्य-परीक्षा रोगीसे पूछनेसे होती है।

जिन प्राणियोंके घी, दूध, तेल, मांस और खट्टे-मीठे, नमकीन प्रभृति छहो प्रकारके रस सात्म्य यानी मुआफिक़ होते हैं, वे बलवान्, क्लेश सहनेवाले और दीर्घजीवी होते है। जो लोग हमेशा रूखा भोजन करते है, जिन्हे कोई एक ही रस मुआफिक होता है, वे कमजोर और कम-उम्र होते है। जिन्हे मिले हुए रस मुआफिक होते है, वे मध्यबली होते है।

सात्म्य-परीक्षासे वैद्यको दवा और पथ्य तजवीज करनेमे बड़ा सुभीता होता है। इससे प्रकृतिका भी निश्चय हो जाता है। जैसे, जिसे गर्म आहार-विहार मुआफिक होते है, उसका मिजाज ठण्डा और जिसे शीतल आहार-विहार मुआफिक़ होते है, उसका मिज़ाज गर्म होता है।

११—प्रकृति-परीक्षा भी करनी चाहिये । देखना चाहिये, रोगीकी प्रकृति कैसी है ? रोगीकी प्रकृति वातकी है या पित्तकी या कफकी, यानी रोगीका मिज़ाज गर्म है या ठण्डा । रोग रोगीकी प्रकृतिके अनुकूल है या प्रतिकूल ? प्रकृति-तुल्यता है या नहीं ? जैसे किसीकी पित्त प्रकृति हो और उसको कफका उपद्रव हो, तो प्रकृति-तुल्यता नहीं है । प्रकृति-तुल्यता*, देश-तुल्यता†, ऋतु-तुल्यता§ आदि खराब है । प्रकृति-तुल्यता आदिके न होनेसे रोग सुखसाध्य होता है ।

१२—औषधिकी परीक्षा भी करनी चाहिये, यानी यह देखना चाहिये कि औषधि रोगीकी प्रकृति और ऋतुके अनुकूल है या प्रतिकूल, देश-काल प्रभृतिके विचारसे विरुद्ध तो नहीं है ।

१३—देशकी परीक्षा करनी चाहिये । देखना चाहिये रोगी जाङ्गल¶ अनूप° और साधारण५ इन देशोंमेसे किसमें पैदा हुआ है,

*पित्त-प्रकृतिवालेको कफका उपद्रव हो, तो प्रकृति-तुल्यता न हुई । यह अच्छी बात है । अगर पित्त-प्रकृतिवालेको पित्तका ही रोग हो तो प्रकृति-तुल्यता हो गई, जो खराब है ।

†अनूपदेशमे स्वभावसे ही वात-कफके रोग होते हैं । अगर रोगीको उस देशमे पित्तका रोग हुआ, तो देश-तुल्यता न हुई, इसलिये रोग सुखसाध्य है । अगर अनूप-देशमें वात-कफका रोग हो, तो देश-तुल्यता हो गई । देश-तुल्यता कष्टसाध्य है ।

§ शरद ऋतुमे "पित्त" कुपित होता है, यानी शरद "पित्तका" मौसम है । अगर शरद ऋतुमें किसीको पित्तका रोग हो, तब तो ऋतु-तुल्यता हुई । अगर शरद ऋतुमे "कफका" रोग हो तो ऋतु तुल्यता न हुई । ऋतु-तुलयताका न होना, रोगी और वैद्य दोनोंके लिये अच्छा है ।

¶ जिस देशमें पानी और दरख्त कम हों और जहाँ पित्त और वातके रोग होते हों, उस देशको "जांगल देश" कहते हैं । ऐसा देश मारवाड़ है ।

° जिस देशमें पानी बहुत हो, वृक्ष बहुत हों, और जहाँ वात और कफके रोग होते हों, उस देशको "अनूपदेश" कहते हैं । जैसे बंगाल ।

५ जिस देशमें अनूप और जागल दोनोंके लक्षण हों, वह साधारण देश कहलाता है ।

किस देशमे बड़ा हुआ है और किस देशमे रोगी हुआ है ? उस देशकी आब-हवा कैसी है, वहाँ कैसे रोग होते है, रोगीको कैसा रोग हुआ है; देश-तुल्यता है या नही ? जैसे,—देश बादी हो, और रोग भी बादीका हो तो, देश-तुल्यता समझनी चाहिये। अगर ऐसा हो तो रोग कष्टसाध्य है।

१४—रोगीके लिये मात्रा नियत करनेमे वैद्यको पूरी चतुराईसे काम लेना चाहिये। औषधिकी मात्राका कोई बँधा हुआ कायदा नहीं है। काल, अग्नि, बल, उम्र, स्वभाव, देश और वातादि दोषोंका विचार करके, वैद्य रोगीकी मात्रा नियत करे। न कम मात्रा नियत करे न जियादा, रोगके बलाबलके अनुसार मात्रा नियत करनेसे लाभ होगा। कम मात्रासे रोग आराम न होगा, अधिकसे रोग बढ़ जायगा या रोगी मर जायगा। कहा है:—

नाल्पंहन्त्यौषध व्याधिं यथाल्पाम्बु महानलम् ।
दोषवच्चातिमात्रस्याच्छस्य मृत्यूदक यथा ॥
मात्रयाहीनया द्रव्यं विकारं न निवर्त्तयेत् ।
द्रव्याणामतिबाहुल्यादव्यापत्संजायते ध्रुवम् ॥

जिस प्रकार अत्यन्त प्रज्वलित अग्निपर थोड़ासा गर्म जल डालनेसे वह नहीं बुझती, उसी प्रकार बड़े रोगमे थोड़ी मात्राकी औषधिसे रोग आराम नही होता। जिस तरह खेतमे अधिक जल बरसनेसे अनाज नष्ट हो जाता है, उसी तरह छोटे रोगमे औषधिकी अधिक मात्रा देनेसे रोगी मर जाता है। कम मात्रासे रोग आराम नही होता और अधिक मात्रासे निश्चय ही विपद् आती है।

१५—यदि आपको रोगीके रोगमे निम्नलिखित बातें नजर आवे, तो आप शौकसे इलाज करे, भगवान् चाहेगे तो आपको अवश्य सफलता प्राप्त होगी। ऐसे रोगको सुखसाध्य कहते हैं, यानी जिस रोगमे निम्नलिखित लक्षण हो, वह बिना कठिनाईके सुखसे आराम हो जायगा:—

(क) रोगके हेतु यानी कारण* थोड़े हों।

(ख) उस रोगके पूर्वरूप§ मे जितने लक्षण होने चाहियें, उससे कम हुए हों।

(ग) उस रोगके लक्षण जितने शास्त्रमे लिखे है, उससे कम हों।

(घ) दूष्य‡, देश, प्रकृति और कालके साथ उस रोगकी तुल्यता न हो।

(ङ) ऐसा रोग न हो, जिसका इलाज न हो सके।

(च) रोगकी गति एक हो, चाहे अधोगामी हो, चाहे ऊर्द्धगामी+।

(छ) रोग नया हो यानी थोड़े दिनका हो।

(ज) रोगके साथ कोई उपद्रव× न हो।

(झ) रोग एक दोषज हो, यानी तीनो दोषोमेसे किसी एकके कारण हो, दो या तीनो दोषोके कुपित होनेसे न हो।

---

* जिन कारणोंसे रोग होता है, उन्हे रोगके कारण कहते हैं। जैसे, अति भोजनसे अजीर्ण रोग होता है। यहाँ "अति भोजन" अजीर्णका हेतु या कारण है।

§ रोगके पूरी तरह प्रकट होनेके पहले जो लक्षण दिखाई देते हैं, उन्हे "पूर्व-रूप" कहते हैं। जैसे, ज्वर होनेके पहले,—नेत्रोंका जलना, शरीरका टूटना, सिरमे दर्द होना प्रभृति।

‡ रस रक्त आदिको "दूष्य" कहते हैं। वात, पित्त, कफको "दोष" कहते हैं। पित्त भी गर्म है और रक्त भी गर्म है। अगर पित्तसे रक्त दूषित हुआ, तो "दूष्य-तुल्यता" हुई। परन्तु कफ शीतल है, अगर उससे रक्त दूषित हो, तो दूष्य-तुल्यता न हुई। दूष्य-तुल्यता कष्टसाध्य है।

+ रक्तपित्त रोगमें रक्त ऊपरके रास्ते नेत्र, कान, नाक और मुँहसे निकलता है तथा नीचेके रास्ते लिङ्ग, गुदा और योनिसे निकलता है। यदि एक रास्तेसे गिरता है, तो रोग सुखसे आराम हो जाता है; दोनों राहोंसे गिरता है, तो कष्टसे आराम होता है।

× रोगके साथ उपद्रव। जैसे, मुख्य रोग तो ज्वर हो, किन्तु उसके साथ कास, श्वास, हिचकी, वमन, अतिसार आदि हों तो इनको 'ज्वरके उपद्रव' कहेंगे। उपद्रवहीन रोग सहजमें आराम होता है।

(ञ) रोगीका शरीर ऐसा हो, जो हर प्रकारकी औषधिको सहन कर सके। चाहे दागिये, चाहे क्षार-कर्म कीजिये, चाहे चीर-फाड़ कीजिये, चाहे जुलाब दीजिये, चाहे कय कराइये।

(ट) कीमती या दुर्लभ जैसी भी दवा चाहो मिल सकती हो। दवा पहले कहे हुए चारो गुण-युक्त हो।

(ठ) रोगीकी सेवा करनेवाला रोगीका भक्त, चतुर, शुश्रूषाकर्मको जाननेवाला और पवित्र हो।

(ड) रोगीमे रोगीके सब गुण हो, यानी रोगी सब बातोको याद रखनेवाला, वैद्यकी आज्ञा पालन करनेवाला, निर्भयचित्त और अपने रोगका ज्योका त्यो ठीक हाल कहनेवाला हो।

(ढ) स्वयं आप वैद्य महाशयमे शास्त्रपारंगतता, बहुदर्शिता, चतुराई और पवित्रता,—ये चारो गुण हो यानी आप सच्चे वैद्य हो।

१६—गर्भवती, बालक और वृद्धका रोग यदि अत्यन्त उपद्रव-..हित हो, तो असाध्य होता है, इसलिये ऐसी अवस्थामे इनका इलाज न करना चाहिये।

१७—अगर किसी रोगीका रोग त्रिदोषसे हुआ हो, रोग चिकित्सा-के मार्गको अतिक्रम कर गया हो, साथ ही रोग अस्थिरताजनक, मोह-जनक और इन्द्रिय-विनाशक हो, तो आप रोगीको हाथमे न लीजिये और यदि ले लिया हो तो जवाब दे दीजिये। अगर किसी दुर्बल व्यक्ति-का रोग बढ़ गया हो और "अरिष्ट-चिह्न" नजर आते हो, तो आप रोगीको जवाब दे दीजिये।

१८—अगर किसी रोगीको जुलाब देना हो, तो बड़ी सावधानीसे और समझ-बूझकर दीजिये। जुलाब देना सहज काम नहीं है। जुलाब-का जियादा लग जाना या न लगना, दोनो खराब हैं।

अगर जुलाब न लगेगा, तो रोगीके मुखमे पानी भर-भर आवेगा, हृदयमे अशुद्धि होगी, कफ और पित्तकी-सी वमन होनेकी शंका होगी,

पेटमें अफारा होगा, खानेमे अरुचि होगी, उल्टी होगी, देहमें बल न रहेगा, शरीर भारीसा मालूम होगा, आँखोमे नींदसी आवेगी, शरीर गीला-गीलासा हो जायगा, जुकामके चिह्न नजर आवेगे और अधोवायु खुलकर न निकलेगी।

अगर जुलाब जोरसे लग जायगा, तो पहले तो मल, पित्त, कफ और अधोवायु निकलेगे, शेषमे केवल खून गिरने लगेगा। इसके बाद मांस और मेदसे घुला हुआ पानीसा निकलेगा या दस्त, कफ और पित्त जिसमे न होगा, ऐसा जल निकलेगा या काला-काला खून निकलेगा, रोगीको प्यास बहुत लगेगी और वायुका कोप हो जायगा। इसीलिये विद्वानोने कहा है:—

चिकित्साप्राभृतो विद्वान् शास्त्रवान् कर्मतत्परः
नरं विरेचयति य सयोगात् सुखमश्नुते ॥
यो वैद्यमानीत्वबुधो विरेचयति मानवम्
सोऽति योगादयोगाच्च मानवो दुःखमश्नुते ॥

चिकित्सा-कर्ममे कुशल, विद्वान, शास्त्रोके जाननेवाला और अपने कामका अभ्यास रखनेवाला वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह रोगी रोगसे छूटकर सुखी होता है। किन्तु वैद्यत्वका घमण्ड करनेवाला अज्ञानी वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह मनुष्य अतियोग—अधिक जुलाब लग जाने और अयोग—जुलाब न लगनेके कारण दुःखका भागी होता है।

१६—महर्षियोकी निम्नलिखित शिक्षाये प्रत्येक वैद्यको सदा याद रखनी चाहिये:—

"हे वैद्य! यदि तुझे कर्म-सिद्धि, अर्थ-सिद्धि, यशोलाभ और स्वर्ग-कामना है, तो सदा गुरुके उपदेशोंपर ध्यान दे, हमेशा सब जीवोकी मङ्गल कामना कर, सर्वान्तःकरणसे रोगियोंके आरोग्य करनेमे सावधानीसे लगा रह, अपनी जीविकाके लिये रोगियोसे अत्यन्त धन न ले, मनसे भी पर-स्त्री-गमनकी इच्छा न कर, पराये धनपर मन मत चला, सदा साफ सफेद कपड़े पहना कर और अपने चिकित्साके

यन्त्रों यानी औजारोको हमेशा साफ रक्खा कर, भूलकर भी मदिरा पान मत कर, पाप-कर्मसे दूर रह, निष्पाप लोगोकी संगति कर, धर्ममे मति रख, सबका भला चाह, सच्चे दिलसे पराया हित कर, जियादा बकवाद मत कर, सदा देश-कालका विचार रख, बातोंको याद रक्खा कर, तरह-तरहकी वैद्योपयोगी वस्तुओका संग्रह किया कर।

"जो व्यक्ति राजद्रोही हो, जो बड़े आदमियोसे विरोध रखते हो, जो दुष्ट और दुराचारी हो, जिन्हे अपनी बदनामीका भय न हो, जो स्वयं मरनेको तैयार हो,—ऐसे लोगोकी चिकित्सा न करनी चाहिये। जिन स्त्रियोंके सिरपर उनके पति या भाई आदि सम्बन्धी न हो, उनका इलाज भी न करना चाहिये। स्त्रियाँ यदि कोई चीज उपहार-स्वरूप दे तो विना उनके पति, भाई, देवर आदि सम्बन्धियोंकी आज्ञाके न लो।

"घरके मालिककी आज्ञा लेकर घरमें जाओ। घरमे खबर करा कर घुसो! जहाँ जाओ, दिव्य वस्त्र पहनकर जाओ, घरमे नीचा सिर करके घुसो। रोगीके पास जाकर रोगका तत्व समझनेकी चेष्टा करो और किसी तरहकी फाल्तू बात मत करो। रोगीके कामके सिवा और किसी विषयमे वाक्य, मन, बुद्धि और इन्द्रियोको न लगाओ।

"रोगीके घरकी बात और किसीसे कभी मत कहो। रोगीकी मृत्यु निश्चित हो, तुमको रोगीके मरनेका सोलह आना विश्वास हो जाय तो, यह बात किसीसे भी मत कहो। ऐसो बात सुननेसे रोगी और रोगीके सम्बन्धियोके चित्तपर गहरी चोट लगती है।

"तुम कैसे हो धुरन्धर विद्वान् क्यो न हो, पर अपनी तारीफ आप कभी मत करो, जो लोग अपनी बड़ाई आप करते है, उनसे प्राणी विरक्त हो जाते है।"

२०—रोगीकी रोग-परीक्षाके समय जल्दबाजी मत करो, चाहे आपकी हानि ही क्यो न होती हो, आपकी और ज़गहकी फीस ही क्यो न मारी जाती हो। थोड़े रोगी हाथमे लेना, और उन सबको रोगमुक्त

करना अच्छा, किन्तु ढेर रोगियोको हाथमे ले लेना और फिर उन्हे सँभाल न सकना अच्छा नही ।

आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा (चमड़े) से रोगीके रोगकी परीक्षा करो, पूछनेकी बाते पूछकर मालूम करो । जब सब तरहसे आपकी समझमे रोग आ जाय, रोग साध्य हो, रोगीकी आयु हो, अरिष्ट न हो—तब रोगीकी अवस्था, देश, काल और मात्राका विचार करके उत्तम औषधि दो और दवा-सेवन-विधि एवं पथ्यापथ्यकी बात रोगी और परिचारकको अच्छी तरह समझा दो । बहुतसे वैद्य मारे जल्दीके अथवा मिज़ाजके कारण आधी बात कहते और आधी नहीं कहते, फीस जेबमें डालकर चल देते है । हमने अनेक बार देखा है, रोगीके ऊपरवालोंके अच्छी तरह न समझनेसे अमृत-समान दवाएँ भी बेकार साबित हुई है अथवा उपद्रव बढ़ गये है ।

२१—नाड़ी-परीक्षाकी आजकल चाल हो गई है । अगर वैद्य नाड़ी न पकड़े, तो लोग उसे वैद्य नही समझते । इसलिये वैद्योको नाड़ी पकड़नी ही पडती है । किन्तु सारे रोगोका हाल केवल नब्जसे किसीको भी मालूम नहीं हो सकता, क्योकि कितने ही रोगोमे नाड़ीकी चाल एकसी होती है । वहाँ निश्चय रूपसे कैसे मालूम हो सकता है कि, अमुक ही रोग है । जैसे—धातुक्षीणवालेकी नाडी क्षीणगति और बिल्कुल मन्दी होती है, और मन्दाग्निवालेकी नाड़ी भी क्षीणगति और बिल्कुल मन्दी होती है, इसी तरह तृप्त मनुष्यकी नाड़ी स्थिर होती है और कफ तथा प्रदर-रोगमे भी नाड़ी स्थिर होती है । सारांश यह कि, नाड़ी-परीक्षा अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि नाडी-परीक्षासे वैद्यका बड़ा काम निकलता है, पर एकमात्र नाड़ी परीक्षापर निर्भर रहनेसे बहुधा धोखा हो जाता है ।

यद्यपि प्राचीन शास्त्र "चरक-सुश्रुत" प्रभृतिमे नाड़ी-परीक्षाका जरा भी जिक्र नही है, तो भी आज-कल इसका रिवाज हो गया है । नाड़ी-ज्ञान बिना वैद्यकी प्रतिष्ठा नही है, और नाड़ी-परीक्षासे लाभ भी

है, इसलिए वैद्यको इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। मगर नाड़ी-परीक्षा गुरुके सिखानेसे जैसी अच्छी आती है, वैसी अपने-आप पुस्तकोंकी सहायतासे नहीं आ सकती। हाँ, जो एकलव्यकी तरह चतुर पुरुष है, वे अपने-आप भी इस कठिन विद्याको सीख सकते है, पर सभी एकलव्य नही, इसीसे हमने गुरुकी बात लिखी है। आज-कल नाड़ी-परीक्षा शास्त्रानुसार हो गई है, यानी आजकलके शास्त्र इसे और परीक्षाओंके साथ शामिल करते है। यहाँ इस बातको फिर समझ लेना चाहिए कि, यदि वे लोग केवल नाड़ी-परीक्षासे काम चलता देखते तो नाडी-परीक्षाके साथ मूत्र-परीक्षा, मल-परीक्षा, जिह्वा-परीक्षा प्रभृति और सात परीक्षाओंकी जरूरत न समझते। कहा है:—

गदाक्रान्तस्य देहस्य, स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत् ।
नाड़ी मूत्र मल जिह्वा, शब्द स्पर्श दृगाकृतिम् ॥

रोगीके शरीरके आठ स्थानोकी परीक्षा करनी चाहिये:—नाड़ी, मूत्र, मल, जीभ, शब्द, स्पर्श, आँख और आठवीं आकृति।

यद्यपि आज-कल नाड़ी-परीक्षा प्रधान है, तथापि प्रमेह, सोजाक और पथरी—रोगमे विना "मूत्र-परीक्षा" के काम नही चलता। अतिसार, संग्रहणी और सन्निपात प्रभृति रोगोमे "मल-परीक्षा" करनी होती है। आमवात प्रभृति रोगोमे "जिह्वा" की और कण्ठके रोगोंमे "शब्द" की परीक्षा की जाती है। दाद खुजली प्रभृति चर्म-रोगोमे "स्पर्श-परीक्षा" होती है, यानी हाथसे छूकर रोगका तत्त्व मालूम करते है। पाण्डु-कामला यानी पीलिये वगैरःमे आँखे देखी जाती है। फोड़ा आदिमे फोड़ेकी आकृति देखते है। हमने ऊपर उदाहरण-स्वरूप जो रोग लिखे है, इनके सिवा अन्यान्य रोगोमे भी नेत्र, जीभ आदि देखे जाते है। ज्वरमे शरीरके हाथ लगानेसे ज्वरका ज्ञान होता है।

२२—चिकित्सा करनेवालेके लिए अनेक मौके ऐसे भी आ जाते है, जब किसी रोगका नाम उसे नहीं मालूम होता। यह बात दो तरहसे होती है—(१) वैद्यको समयपर उस रोगके लक्षण याद न आनेसे,

(२) कोई ऐसा रोग प्रकट हो जानेसे, जिसके लक्षण पूर्व्वाचार्योंने लिखे ही न हो । मोती-ज्वरा, पानी-ज्वरा, यकृत-रोग, फिरङ्ग प्रभृति ऐसे अनेक रोग है, जो पहले भारतमे न होते थे, किन्तु अब विदेशियोके आवागमनसे भारतमे आकर बस गये है । ऐसे रोगोंके निदान-लक्षण आदि पुराने ग्रन्थोंमे नही है । "भावप्रकाश" और "बङ्गसेनमे" फिरङ्ग और यकृतकी चिकित्सा लिखी है, किन्तु प्लेग, मोती-ज्वरा आदिका ज़िक्र इनमे भी नही है ।

यद्यपि हमारे पूर्व्वाचार्योंने अनेक रोगोके नाम और रूप आदि लिख दिये है, तो भी चिकित्साका दारमदार वातादि दोषोपर ही रक्खा है । हमारे यहाँ दोषोकी विषमताका नाम रोग है और समताका नाम आरोग्य है । जिस क्रिया द्वारा वैषम्य-प्राप्त धातुएँ समताको प्राप्त होती है, यानी घटे हुए और बढ़े हुए दोष समान हो जाते है, उसे ही "चिकित्सा" कहते है । वाह वाह ! कैसी अच्छी तरकीब रक्खी है ! क्या ऐसी अच्छी तरकीब और किसी देशके चिकित्सा-शास्त्रमें भी है ? कदापि नही ।

शास्त्रकारोने सभी रोगोके नाम नही लिखे है । इसलिए किसी रोगका नाम यदि न मालूम हो, तो वैद्यको घबराना और मुँह उतारना उचित नही । "चरक" मे लिखा है:—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन ।
नाहि सर्वविकारानां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥

अगर कोई वैद्य रोग जाननेमे कुशल न हो, तो हरगिज न शरमावे, क्योकि सभी रोगोकी स्थिति नामसे ही नियत नही है ।

अगर वैद्यको किसी रोगके नामका पता न लगे, तो घबरावे नही, परन्तु वातादिक दोषोकी परीक्षा अच्छी तरह करले, यानी इस बातकी खोज करे कि, कौनसा दोष कुपित है या कौनसा दोष घटा या बढ़ा है और कौनसा दोष समान है । जिन दोषोंकी घटती-बढ़ती देखे, उन्हे समान करे । दोषोंके समान होनेसे ही रोगी आराम हो जायगा ।

कहा है:—

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः ।
अनुक्तमपि दोषाणा, लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥

रोग दोषोके बिना नहीं होते, इसलिये यदि किसी रोगका नाम शास्त्रमे न लिखा हो, तो वैद्य दोपो (वात, पित्त, कफ) के चिह्न देख कर उन्हींके अनुसार रोगीकी चिकित्सा करे, अर्थात् घटे हुए दोषोको बढ़ाकर और बढ़े हुए दोपोको घटाकर समान करे, क्योकि दोपोकी विषमताका नाम ही रोग और समताका नाम ही आरोग्य है।

"चरक" मे और भी लिखा है:—

विकारो धातु वैषम्य, साम्यं प्रकृतिरुच्यते ।
सुखसंज्ञकमारोग्य, विकारो दु.खमेवच ॥
याभिः क्रियाभिर्जायन्ते, शरीरेधातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणा, कर्मतद्भिषजां मतम् ॥

वात, पित्त और कफकी विपमताका नाम रोग है और इनकी समताका नाम आरोग्य है। आरोग्यका नाम सुख और रोगका नाम दुःख है।

जिस क्रियाके द्वारा विपम धातुएँ सम हो जायँ, उसे ही रोगोंकी चिकित्सा कहते हैं और वही वैद्योंका कर्म है।

२३—हारीत मुनिने लिखा है कि, तपस्वी, ब्राह्मण, स्त्री, बालक, दीन-दुर्वल, बुद्धिमान, पण्डित, महात्मा, वेदपाठी, साधु, अनाथ और बन्धु-हीन रोगीकी चिकित्सा वैद्य, विना कुछ लिये, पुण्यार्थ करे और इनकी चिकित्सामे टालमटोल करके विलम्ब न करे।

राजा, साहूकार, ठाकुर, सेनापति—इनकी चिकित्सा करके वैद्यको धन लेना चाहिए और इनसे भय न करना चाहिये।

ब्राह्मण, पुरोहित, कवीश्वर, कत्थक और ज्योतिषी—इनकी चिकित्सा अवश्य करनी चाहिये, क्योकि ऐसे ही लोगोकी चिकित्सासे वैद्यको यश मिलता है।

कसाई, चोर, म्लेच्छ, अग्नि लगानेवाला, मछलियोंको मारनेवाला, अनेकोंका दुश्मन और चुगलखोर,—इनकी चिकित्सा न करनी चाहिये ।

अब हारीत मुनिका जमाना नहीं है, इसलिये अब जैसा समय है वैसा ही काम करना चाहिये । मतलब यह है कि, जिनके पास धन है, जो देने योग्य है, उनसे धन अवश्य लेना चाहिये और जिनके पास धन नहीं है, जो दीन और अनाथ हैं, उनकी चिकित्सा मुफ़्त करनी चाहिये । मुफ़्त इलाज करनेसे अवश्य कीर्त्ति फैलेगी ।

इस विषयमे बङ्गसेन महोदयने आजकलके समयके अनुकूल खूब अच्छा लिखा है । उन्होने लिखा है:—अत्यन्त क्रोधी, बिना विचारे हर प्रकारका साहस करनेवाला, भयभीत, किसीका उपकार न माननेवाला, हर समय शोकमे डूबा रहनेवाला, मरनेकी इच्छा करनेवाला, जगत्से वैर रखनेवाला, शिथिल इन्द्रियोंवाला, वैद्यमे विश्वास न रखनेवाला, अपने तईं वैद्यके समान समझनेवाला, वैद्यको ठगनेवाला —ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा वैद्यको न करनी चाहिये । ऐसे रोगियोका इलाज करनेसे वैद्यको सिवा हानिके कोई लाभ नहीं, मिलने-जुलनेको तो ख़ाक नही, यदि किसी तरह रोग बढ़ जाय तो वैद्य बेचारेकी बदनामी होती है । निर्धनोंकी चिकित्सा करनेमे वैद्यको लोभ त्यागकर पुण्य-संचय करना चाहिये और धनवानोंसे धन लेना चाहिये ।

२४—हमारे देशमे आजकल "लंघन"की बडी चाल हो गई है । ज्वर आया नहो कि, रोगीको वैद्यजीने लंघनका हुक्म दिया नही । इसका नतीजा बहुत ख़राब होता है । अनेक रोग उठ खड़े होते है । लंघन करानेसे वातादि दोषोंका क्षय होता है, भूख लगती है, ज्वर हलका होता है, मगर चाहे जिस ज्वरमे, चाहे जिस रोगीको लंघन कराने और बलका विचार किये बिना अन्धाधुन्ध लंघन करानेका परिणाम खराब होता है । लंघन इस तरह कराना चाहिये, जिससे बल न घटे क्योंकि बलके अधीन ही आरोग्यता है और आरोग्यताके लिये ही चिकित्सा की जाती है । वात-रोगी, प्यासे, भूखे, थके हुए तथा बालक,

बूढ़े, गर्भवती स्त्री आदिको लंघन कराना ही मुनासिब नहीं। वाग्भट् ने लिखा है,—जिसे खाना खा चुकते ही बुखार चढ़ आवे और जिसे आमज्वर हो, उसे वमन यानी कय करानी चाहिये। अत्यन्त लंघन करनेसे हड़फूटन, खाँसी, मनमे भ्रम प्रभृति तकलीफे उठ खड़ी होती है, भूख प्यासका नाश हो जाता और रोगी बलहीन हो जाता है। इस वास्ते लंघन विचार कर कराने चाहिएँ। लंघनके सम्बन्धमे विस्तारसे हम आगे लिखेंगे।

२५—वैद्य जिस रोगीका इलाज करे, उसकी औषधि ही का प्रबन्ध करके न रह जाय। साथ ही पथ्य-अपथ्यका भी खयाल रक्खे। हमने अनेक वैद्य ऐसे देखे है, जो रोगीको देखकर दवा लिख जाते या दे जाते है, परन्तु पथ्यका उन्हे खयाल नही रहता। रोगी या रोगीके घरवाले अगर पूछते है, तो आप लापरवाहीसे साबूदाना या मूँगका यूष या रूखी रोटी, परवलका साग आदि बताकर अपना पीछा छुड़ाते है। वैद्योको इस बातका हमेशा ख़याल रखना चाहिये कि, विना पथ्य सेवनके हज़ार उत्तम औषधियाँ देनेपर भी, रोगीको आराम नही हो सकता। कहा हैः—

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्त्तते।
नतु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि॥
पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणै।
अपथ्ये सति गदार्त्तस्य, किमौषधनिषेवणैः॥

विना दवाके केवल पथ्यसे भी रोगीका रोग आराम हो जाता है और पथ्यहीन रोगीका रोग हजारों दवाइयोंसे भी आराम नही होता।

यदि पथ्य सेवन किया जाय तो रोगीको दवा खानेकी जरूरत नहीं; उसका रोग बिना दवाके ही आराम हो जायगा, यदि रोगी अपथ्य सेवन करे, तो उसे दवा देना व्यर्थ है, क्योंकि अपथ्य सेवन करनेपर, हज़ारों दवाइयाँ देनेसे भी रोग आराम न होगा, इसलिये कहा है कि "एक पथ्य और हज़ार दवा।"

२६—कैसी भी बड़ी जगह हो, पर वैद्यको रोगीके घर बिना बुलावा आये हरगिज न जाना चाहिये । जो वैद्य बिना बुलाये रोगीके घर जाते है, उनका मान नही होता । कहा है:—

कुचैलः कर्कशः स्तब्धः ग्रामीणः स्वयमागतः ।
शस्यते यश्च वैद्यो न धन्वन्तरिसमा यदि ॥

जो वैद्य मैले कपड़े पहनता है, कड़वी वाणी बोलता है, अभिमानी है, कातर और व्यवहार-कुशल नही होता, गॉव का गॅवार होता है, बिना बुलाये अपने-आप रोगीके घर चला जाता है, यदि वह धन्वन्तरि के समान हो, तो भी उसकी इज्जत नही होती । इसके विपरीत जो साफ सफेद वस्त्र पहनता है, मीठी मीठी बाते करता है, घमण्ड नही करता और व्यवहार-कुशल होता है, तमीजदारीसे काम लेता है और बिना बुलाये रोगीके यहॉ नही जाता, उसका आदर-मान होता है ।

२७—अगर तुम किसी वैद्यको असाध्य रोगीकी चिकित्सा करते और सफलता प्राप्त करते भी देख लो, तो भी तुम स्वयं वैसा मत करो । असाध्य रोगीका इलाज हाथमे लेनेवाले वैद्य अच्छे वैद्य नही, चाहे उन्हे घुणाक्षर न्यायकी तरह सफलता ही क्यो न हो जाय । देखते है, अगर मूर्ख भी शीघ्र ही प्रमेहमे माषान्न और मदात्यय रोगमे जौ की शरावका सेवन करता है, तो उसका काम बन जाता है ।

२८—पहलेके वैद्य रोगीके जलका बहुत कुछ ख़याल रखते थे, मगर आजकलके वैद्य भी डाक्टरोकी देखा-देखी, बहुधा, सभी रोगोमे शीतल जल पीनेको दिला देते है, अथवा जिनका ख़याल गर्म जलपर जमा हुआ है, वह सभी रोगोमे औटाया हुआ जल दिला देते है । मगर यह बड़ी भारी गलती है । वैद्यको चाहिए कि, जिन रोगोमे गर्म जलकी आज्ञा है, उनमे गर्म जल दिलावे और जिनमे शीतल जलकी आज्ञा है, उनमें शीतल जल दिलवावे, अन्यथा भलाईके बदले बुराई होनेकी सम्भावना है । रक्तपित्त, मूर्च्छा और ख़ूनविकार एवं पित्तके

रोगोंमें गर्म जल हानिकारक है, इसी तरह जुकाम, ताज़ा ज्वर, हिचकी और खाँसी वगैरःमें शीतल जल हानिकारक है। सन्निपात-रोगमे प्याससे पीड़ित रोगीको विना पकाया शीतल जल देना और उसकी मृत्युको बुलाना दो बात नहीं है। कहा हैः—

मूर्च्छा पित्तोष्ण दाहेषु, विषरक्ते मदात्यये ।
श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने, तमके वमथौ तथा ॥
उर्द्धगे रक्तपित्ते च, शीताम्बु प्रशस्यते ।
पार्श्वशूले प्रतिश्याये, वातरोगे गलग्रहे ।
आध्माने स्तिमिते कोष्ठे, सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ।
अरुचि ग्रहणी गुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ ।
हिक्कायां स्नेहपाने च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥
सन्निपातेन तप्यन्तं, पार्श्वरुक्तालु शोषिणम् ।
यः पाययेज्जलं शीत, स मृत्युर्नर विग्रहः ॥

मूर्च्छा, पित्त, गरमी, दाह, विष, रक्तविकार, मदात्यय, श्रम, भ्रम, तमकश्वास, वमन और ऊपरके रक्तपित्त. इन रोगोंमे तथा जिसका अन्न जल गया हो, उसे शीतल जल अच्छा है ।

पसलीकी पीड़ा, जुकाम, वादीके रोग, गलग्रह, अफारा, दस्तकब्ज, जुलावके ऊपर, नये बुखारमे, अरुचि, संग्रहणी, गुल्मरोग, श्वास, खाँसी, विद्रधि और हिचकीमे तथा तेल आदि पीनेपर शीतल जल पीना मना है, अर्थात् इन रोगोंमे गरम किया हुआ जल पीना चाहिये ।

सन्निपात-रोगी यदि प्यासके मारे घबरा रहा हो—उसकी पसलियोमे दर्द हो, उसका तालुआ सूख रहा हो, अगर ऐसी दशामे वैद्य उस रोगीको ठंडा पानी पीनेको दिलावे तो उस वैद्यको रोगीकी मृत्यु समझना चाहिये ।

बहुतसे रोग ऐसे भी हैं, जिनमे वैद्यको रोगीके लिये थोड़ा-थोड़ा जल पीनेकी हिदायत करनी चाहिये । अरुचि, जुकाम, मन्दाग्नि, सूजन, क्षय, मुखप्रसेक (मुँहसे जल गिरना), उदर-रोग, कोढ़, नेत्ररोग, ज्वर, व्रण और मधुमेहमें अल्प जल पीना अच्छा है ।

२६—सन्निपातमे रोगी अक्सर बकझक करने लगता है, उस समय लोग कहा करते है कि, इसे बादी आ गई है। मूढ़ वैद्य उस बादी-के शान्त करनेके लिये रोगीको "घी" पिलाते है, क्योंकि घृतपान करनेसे वातकी शान्ति होना प्रसिद्ध है। मगर यह बड़ी भारी गलती है, सन्निपातमे "घी" पिलाना रोगीको मारना है। बङ्गसेनमे लिखा है:—

सान्निपातेन मनुजं विलपन्तन्तु यो घृतम्।
पाययेद भोजयेद वापि तौ च स्यातामुभौ वधम्॥

सन्निपात-रोगमे प्रलाप करते हुए रोगीको घी पिलाने या उसके भोजनमे घी देनेसे रोगी मर जाता है।

सन्निपात-रोगीको भूख लगनेपर मांस और भात देना तथा दाहके मारे रोगीके चिल्लानेपर उसके ऊपर ठण्डा पानी गिराना, महामूर्खोंका काम है। इन बातोंसे रोगी मर जाता है।

सन्निपातोमे "मधु" कदापि न देना चाहिये, क्योकि मधु खानेपर शीतल उपचार किया जाता है, और सन्निपातमें शीतल उपचारकी मनाही है।

सन्निपात-ज्वरमे अगर पसीना आवे, तो उसे शीघ्र बन्द करना चाहिये, क्योकि पसीनेसे शीत आने और शीघ्र ही रोगीके मरनेका भय रहता है।

सन्निपातके शान्त होनेपर, दूध प्रभृति पतले रसोके सेवन या दिन-मे सोनेसे आमाशयमे कफ सञ्चित होकर, वायुके मार्गोंको; रोककर, धमनियोंमे घुसकर "तन्द्रा" पैदा करता है। तन्द्रावालेकी आँखे आधी बन्द आधी खुलीसी रहती है और कुछ टेड़ी-मेढ़ीसी मालूम होती है, आँखोके तारे इधर-उधर घूमते है, पलक स्थिर हो जाते है, बाहरसे ही दाँत दीखते है। ऐसे-ऐसे और भी लक्षण होते है। यह तन्द्रा तीन दिन तक साध्य है, फिर असाध्य हो जाती है, इसलिये नास वगैरः देकर, यथा सामर्थ्य तन्द्राको शीघ्र दूर करना चाहिये, नही तो रोगी मर जायगा। ज्वरमे तन्द्रा सबसे अधिक बुरा उपद्रव है। कहा है:—

सान्निपात ज्वरोत्पन्नो युक्त्या तन्द्रां जयेद्भिषक्।
उपद्रवः कष्टतमो, ज्वराणां सविशेषतः॥

सन्निपात-ज्वरमे जो तन्द्रा पैदा हो, उसे वैद्यको बड़ी बुद्धिमानीसे नाश करना चाहिये, क्योंकि ज्वरमे यह उपद्रव सबसे अधिक कष्टकर है।

सन्निपात-ज्वरके अन्तमे रोगीके कानकी जड़मे एक प्रकारकी घोर सूजन पैदा हो जाती है, उस सूजनसे कोई ही भाग्यवान बचता है; नहीं तो जिनके होती है, वे ही मर जाते है। उसको भी अपनी भरसक जोक प्रभृति उपचारोसे शीघ्र नाश करना चाहिये।

सन्निपात-ज्वरके रोगियोके आराम करनेके वास्ते—बेहोशी, पसीना, तन्द्रा प्रभृति उपद्रवोंके नाश करनेके लिये,—उत्तमोत्तम नास, अञ्जन, शरीर या हाथ-पैरोमे मलनेकी उत्तमोत्तम दवाइयॉ वैद्य पहलेसे तैयार रक्खे। ऐसे रोगमे वक्तपर हाथ पैर फूल जाते है, अनेक चीजोके जल्दी न मिलने या तैयार करनेमे देरी होनेसे रोगीकी जान चली जाती है। यहॉ हमने सन्निपातज्वर-सम्बन्धी दो चार इशारे लिख दिये हैं। खोल-खोलकर प्रत्येक विषय, जहॉ सन्निपात-ज्वरका जिक्र होगा, वहॉ समझावेंगे।

जितने रोग हैं, उनमे ज्वरकी चिकित्सा कठिन है। गाय, भैंस, हाथी, घोड़े प्रभृति पशुओको तो ज्वर मार ही डालता है, केवल मनुष्य इसे सह लेते हैं, पर मनुष्योंमे भी यह स्वभावसे ही कष्ट-साध्य है। यह सब रोगोसे बलवान है, इसीसे इसे रोगोका राजा कहा है। ज्वरमे भी सन्निपातज्वर सबसे बुरा है। इसलिये वङ्गसेनने कहा है:—

समुद्रतरणं ह्येतद्वदन्ति भिषगीश्वराः।
मृत्युना सह योद्धव्यं सान्निपात चिकित्सुना॥
सान्निपातार्णवे मग्न योऽभ्युद्धराति मानवम्।
कस्तेन न कृतो धर्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति॥

जो वैद्य सन्निपातकी चिकित्सा करता है, वह साक्षात् मौतसे लड़ता है, उसको प्राचीन वैद्य समुद्रसे निकालनेवाला कहते है।

सन्निपात-रूपी समुद्रमे डूवे हुए रोगीको जो बचाता है, उसने कौनसा धर्म नही किया और वह किस पूजाके योग्य नही है ?

हारीत-संहितामे लिखा है,—"सन्निपात-ज्वरमे पहले वात-कफको नाश करनेवाली क्रिया करनी चाहिये, जब कफका क्षय हो जाता है तब वात और पित्त आप ही शान्त हो जाते है। सन्निपात-ज्वरमे यत्नसे तन्द्राको दूर करना चाहिये, क्योंकि यह बड़ा कठिन और शीघ्र प्राण-नाशक उपद्रव है। सन्निपात-ज्वरमे कफसे पूरित रोगीको जो वैद्य पथ्य देता है, वह वैद्य रोगीका शत्रु है। इस ज्वरमे पथ्य और दवा यो ही न दे देनी चाहिये।" मतलब यह है कि, वैद्य सन्निपात-ज्वरमे ऐसे उपाय करे, जिससे कफ दूर हो। जब कफ निकल जाय, शरीरके छेद शुद्ध हो जायँ, शरीर हलका हो जाय और प्यास जाती रहे, तब वैद्य पथ्यादिकका विचार करे, कफके बिना दूर हुए ही यदि पथ्य दे दिया जायगा, तो रोगी अवश्य मरेगा। सन्निपातके इलाजमे बड़े धैर्य्य, बडे साहस और बडी बुद्धिमानीकी जरूरत है।

३०—याद रक्खो, ज्वर ऋतुके अनुसार दोषोकी तुल्यता होनेसे साध्य होता है, प्रमेह दोषोकी दूष्यता समान होनेसे साध्य होता है और रक्तगुल्म पुराना होनेसे सुखसाध्य होता है।

३१—जिस रोगीके शरीरकी शोभा नष्ट हो गई हो, इन्द्रियाँ अपना-अपना काम न कर सकती हो—अन्नमे एकदम अरुचि हो, ज्वर तेज और उसका वेग गम्भीर हो,—ऐसे ज्वर-रोगीका इलाज मत करो।

बवासीर यानी अर्शके रोगीको भी समझ-बूझकर हाथमे लेना चाहिये। यदि बवासीर गुदाकी पहली बलि या पहले आँटेमे हो, एक दोषसे उत्पन्न हुई हो और बहुत दिनोकी न हो तब तो आप इलाज कीजिये, रोगी आराम हो जायगा। अगर बवासीर दो दोषोसे पैदा हुई हो, गुदाकी दूसरी बलिमे हो और जिसे एक वर्ष हो चुका हो, वह तकलीफसे आराम होती है। जो बवासीर जन्मसे हो, अथवा तीनों दोषोंसे पैदा हुई हो और भीतरकी बलिमे हो, उसको असाध्य समझो

और वैसी बवासीर आराम करनेका दावा मत करो, हाँ, असाध्य बवासीर भी, अगर रोगीकी उम्र बाकी हो, वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी अपने-अपने चारो गुणोसे युक्त हो तथा रोगीकी अग्नि दीप्त हो, तो शायद बड़ी-बड़ी चेष्टाओंसे आराम हो जाय।

अगर बवासीरवाले रोगीके हाथ, पॉव, मुख, नाभि, गुदा और फोतोंमे सूजन हो, हृदय और पसलियोमे दर्द हो, तो रोगको असाध्य समझो।

जिस बवासीर-रोगीको प्यास लगती हो, अरुचि हो, दर्दके मारे घबराता हो, ख़ून जियादा गिरता हो, साथ ही सूजन और अतिसार हो, ऐसा रोगी मर जाता है।

अनेक बवासीर-रोगी जिनकी बवासीरमे अत्यन्त तकलीफ नही होती, जिनके शरीरमे बल होता है, दवा सेवन करते रहते है और साथ ही अपथ्य भी सेवन करते रहते है, इसलिये उनको आराम नही होता, बल्कि रोग बढ़ जाता है। "हारीत-संहिता" मे लिखा है:—

यथाकाष्टचयं दूरात् प्राप्य घोरतरोऽग्निकः।
तथा अपथ्यस्य संयोगाद्भवेद्घोरतरोगदः॥

जैसे लकड़ियोंके ढेरमे दूरसे पड़ी हुई अग्नि घोर रूप धारण कर लेती है, उसी तरह अपथ्यके संयोगसे रोग भी घोर रूप धारण कर लेता है। इसलिये आप अपने रोगीसे चेता-चेताकर कह दो, कि भाई! दिसा-पेशाबकी हाजत मत रोकना, स्त्री-प्रसंग मत करना, हाथी वा घोड़ेकी सवारी मत करना, उकरू मत बैठना, दोष करनेवाले पदार्थ हरगिज न खाना-पीना। एक तरफ दवा होती रहे और दूसरी ओर रोगी उपरोक्त काम करता रहे, तो रोग कैसे आराम होगा? बवासीर-रोगीको "माठा" सेवन करनेकी सलाह जोरसे दीजिए। माठा सेवन करनेसे मस्से जाते रहते है और फिर पैदा नही होते। माठेसे बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है, शरीरके स्रोत शुद्ध हो जाते है, इसलिये रसका संचार अच्छी तरह होता है और कफ-वातके सैकड़ो विकार नाश हो जाते है।

चीतेकी जड़की छालको खूब महीन पीसकर, घड़ेमे लेप करके,

उसमे दही जमाकर और विलोकर माठा पीनेसे हमारे अनेक रोगी बवासीरसे छुटकारा पा गये है। यह नुसख़ा बहुत अच्छा है। साराश यह कि. बवासीरसे मेदेका बलवान रहना, अग्निवृद्धि होना, भूख लगना बहुत ज़रूरी हैं। इसके लिये तक्र यानी माठा * परमोत्तम है। आप अपने रोगको माठा पीनेकी सलाह अवश्य देते रहे।

पाण्डु या पीलिया अत्यन्त पुराना हो, तो असाध्य समझो। जिस पीलियेवालेके शरीरमे सूजन हो, जिसे जगत्‌के सभी पदार्थ पीले-ही-पीले दीखें, उसे भी असाध्य समझो। रुधिरके क्षय होनेसे जिसका शरीर सफेद या पीला हो गया हो, जिसके दाँत, नाखून और नेत्र पीले हो गये हों और जिसे सारे संसारके पदार्थ पीले दीखे, वह पीलिये-वाला रोगी अवश्य मर जाता है।

वात-व्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, बवासीर, भगन्दर, पथरी, मूढ़गर्भ और उदर-रोग—ये आठ "महाव्याधि" कहलाती है। ये आठों स्वभावसे ही कष्टसाध्य है। यदि इन महारोगोंके साथ बलक्षय, मासक्षय, श्वास, तृषा, शोष, छर्दि, ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार और हिचकी—ये उपद्रव भी हो, तब तो इनका आराम होना असम्भव ही है। इसलिये उत्तम वैद्य, जो अपनी सिद्धि चाहे, ऐसे रोगवालोको हाथमे न ले।

बालक, अति वृद्ध और विकलके सारे शरीरमे सूजन हो, तो वे निश्चय ही मर जायेंगे।

जिस रोगीका सारा चमड़ा पीला हो गया हो, जिसकी आँखें पीली पड़ गई हो, जिसका पेशाब भी पीला हो तथा जिसे सभी चीज़े पीली दीखे—ऐसा रोगी अवश्य मर जाता है।

जो रोगी बहुत दिनोंका बीमार हो और जिसका रोग बढ़ रहा हो,

* यद्यपि माठा बल पैदा करता और थकान दूर करता है, ग्रहणी-दोष, बवासीर और अतिसारमें हितकारी है तथापि और और रोगोंमे यह नुक़सान भी करता है। जिनको मूर्च्छा, भ्रम, प्यास-रोग और रक्तपित्त हो, उनको माठा कभी न देना चाहिये। इन रोगोंमें माठा लाभके बदले हानि करता और अनेक रोग पैदा करता है। ग्रीष्म ऋतु और शरद ऋतुमे माठा हानिकारक है।

जो खानेको न खाता हो, जो टूटे हुए अङ्गोको देखता रहता हो और औषधि न लेता हो—ऐसे रोगीका इलाज समझ-बूझकर करना चाहिये, क्योकि ऐसी जगह सफलताकी आशा बहुत ही कम होती है।

जिस रोगीकी जीभ, दोनो होठ और आँखे लाल हो गई हो अथवा उनसे खून गिरता हो,—ऐसा रक्तातिसार और रक्तपित्तवाला रोगी मर जाता है। जिसकी कयमे खून गिरे, विशेषकरके जिसकी आँखें लाल हो और जिसे सब तरफ लाल-ही-लाल रङ्ग दीखे—ऐसा रक्त-पित्त रोगी भी मर जाता है।

उपयोगी परिभाषायें ।

(१) आयुर्वेद—जिस ग्रन्थसे आयुका हिताहित और आयुका प्रमाण मालूम हो, उसे 'आयुर्वेद' कहते हैं।

(२) आयु—शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्माके संयोगको 'आयु' कहते है।

(३) द्रव्य—पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), पवन, आकाश, आत्मा, मन, काल और दिशाओंके समूह को 'द्रव्य' कहते हैं।

(४) चेतन—इन्द्रिय-विशिष्ट द्रव्यको 'चेतन' कहते हैं। जैसे, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि।

(५) अचेतन—इन्द्रिय-रहित द्रव्यको 'अचेतन' कहते है। जैसे; वृक्षादि।

(६) स्थावर—इन्द्रियहीन जीवोंको जो चेतना-रहित है 'स्थावर' कहते है।

(७) जङ्गम—इन्द्रियवाले चैतन्य जीवोंको 'जङ्गम' कहते है।

(८) अर्थ—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दको 'अर्थ' या 'विषय' कहते है।

(९) विषय—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द—इनको विषय कहते है। ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके विषय है।

(१०) द्रव्यगुण—गुरु, लघु आदिको गुण कहते है। "द्रव्यगुण" २० है।

(११) कर्म—प्रयत्न आदि चेष्टाको "कर्म" कहते हैं।

(१२) शारीरिक दोष—वात, पित्त और कफ—ये शारीरिक दोष हैं।

(१३) मानसिक दोष—रज और तम,—ये मनके दोष हैं।

(१४) शारीरिक वायु—तीन दोषोंमेंसे एक दोष है। यह रूखा, हलका, शीतल, सूक्ष्म, चञ्चल, पिच्छिलता-रहित और परुष है। इसके विपरीत गुणवाले द्रव्योंसे इसकी शान्ति होती है।

(१५) रस—रस छः है। मीठा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कड़वा और कसैला।

(१६) वातनाशक रस—जिस रससे बादी शान्त हो, उसे वातनाशक रस कहते है। मीठा, खट्टा और नमकीन,—ये तीन रस वातनाशक हैं।

(१७) पित्तनाशक रस—मीठा, कसैला और कड़वा—ये तीन रस पित्तको शान्त करते है।

(१८) कफनाशक रस—कड़वा, कसैला और चरपरा,—ये तीन रस कफको शान्त करते हैं।

(१९) पित्त—तीन दोषोंमेंसे एक दोष है। यह कम चिकनाई लिये, गर्म, तीक्ष्ण, पतला, खट्टा, दस्तावर और चरपरा है। रूखे, शीतल प्रभृति विपरीत गुणवाले द्रव्योंसे इसकी शान्ति होती है।

(२०) कफ—तीन दोषोंमेंसे एक दोष है। यह भारी, शीतल, मृदु, चिकना, मधुर, स्थिर और पिच्छिल है। हलके गर्म प्रभृति विपरीत गुणवाले द्रव्योंसे इसकी शान्ति होती है।

(२१) प्राणिज-द्रव्य—प्राणियोंसे पैदा होनेवाले द्रव्योंको 'प्राणिज-द्रव्य" कहते हैं। जैसे, दूध, शहद और गोरोचन आदि।

(२२) पार्थिव-द्रव्य—पृथ्वी-सम्बन्धी द्रव्योंको "पार्थिव-द्रव्य" कहते हैं। जैसे, शीशा, राँगा, ताँबा और हरताल आदि।

(२३) स्थावर-द्रव्य—चेतना-रहित जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले द्रव्योंको "स्थावर-द्रव्य" कहते है। जैसे, आम, जामुन, गूलर, जौ, गेंहूँ आदि।

(२४) मूल-प्रधान औषधि—उन औषधोंको कहते है, जिनकी केवल मूल या जड़ ही ली जाती हैं। ये गिन्तीमे २६ है। जैसे, बच, निशोथ आदि।

(२५) फल-प्रधान औषधि—उन औषधोंको कहते हैं, जिनके फल ही लिये जाते हैं। ये उन्नीस हैं। जैसे, मैनफल, वायबिडङ्ग आदि।

(२६) चार स्नेह—घी, तेल, चरवी और मज्जा,—ये चार स्नेह या चिकने पदार्थ है।

(२७) पञ्च लवण—संचर नोन, कालानोन, सेंधानोन, बिडनोन और समन्दर नोन,—ये पाँच तरहके नोन हैं। अजीर्ण, वायुगोला, शूल और उदर-रोगोंमे ये हितकारी है।

(२८) आठ मूत्र—भेड़का मूत्र, बकरीका मूत्र, गायका मूत्र, भैंसका मूत्र, हथिनीका मूत्र, ऊँटनीका मूत्र और गधीका मूत्र,—ये आठ तरहके मूत्र होते है। ये अफारा, बवासीर, उदर-रोग, वायुगोला और कुष्ठ आदि रोगोमे तथा लेप, पुल्टिस और तरडा देनेके काममे आते है। इनके पीनेसे कफका नाश, वायुका अनुलोमन (सीधापन) और पित्तका अधोगमन (नीचे जाना) होता है। इनमे बकरीका दूध पथ्य और त्रिदोष-नाशक है। गोमूत्र—कृमिरोग, कोढ़ और खुजलीको आराम करता है, पीनेसे त्रिदोष-जन्य-उदर-रोग नाश होते है। भैंसका मूत्र दस्तावर है, बवासीर, सूजन और उदर-रोगमे अच्छा है। ऊँटका मूत्र—श्वास, खाँसी और बवासीरको नाश करता है। गधीका मूत्र—मृगी और उन्मादमे अच्छा है। हाथीका मूत्र—कृमि और कोढ़को नाश करता है, मल-मूत्रके रुकनेको दूर करता है, विष-विकार, कफ और बवासीरमे अच्छा है।

(२९) आठ दूध—भेड़, बकरी, गाय, भैंस, ऊँटनी, घोड़ी, हथिनी और स्त्रीका दूध—ये आठ दूध होते है।

(३०) तेरह वेग—मूत्र, मल, शुक्र, अधोवायु, वमन, छींक, डकार,

जँभाई, भूख, प्यास, निद्रा, आँसू और श्वास,—ये तेरह वेग हैं। इनके रोकनेसे बड़े-बड़े भयानक रोग होते हैं।

(३१) चिकित्साके पाद—वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी—ये चार चिकित्साके पाद हैं।

(३२) रोग—वात, पित्त और कफकी विषमताको "रोग" कहते हैं।

(३३) स्वास्थ्य—वात, पित्त और कफकी समानताको "स्वास्थ्य" या आरोग्य कहते हैं।

(३४) सुख-दुःख—आरोग्यताको "सुख" और रोगको "दुःख" कहते हैं।

(३५) चिकित्सा—जिस क्रिया द्वारा विषम (बिगड़े हुए) दोष समान किये जाते हैं, उसे ही "चिकित्सा" कहते हैं।

(३६) वैद्यके चार गुण—शास्त्रपारंगतता, बहुदर्शिता, चतुरता और पवित्रता—ये चार वैद्यके गुण हैं।

(३७) औषधिके चार गुण—बहुता, योग्यता, योग-वियोग-पूर्वक कल्पना और कीड़े आदिसे रहित होना—औषधिके ये चार गुण हैं।

(३८) सेवकके चार गुण—शुश्रूषा-ज्ञान, चतुराई, स्वामिभक्ति और पवित्रता—सेवकके ये चार गुण हैं।

(३९) रोगीके चार गुण—स्मरण-शक्ति, वैद्यकी आज्ञापालन, निर्भयता और रोगका यथार्थ हाल कहना—रोगीके ये चार गुण हैं।

(४०) साध्य—जिस रोगको वैद्य आराम कर सके, उसे "साध्य" कहते हैं।

(४१) सुखसाध्य—जिस रोगको वैद्य सुखसे आराम कर सके, उसे "सुखसाध्य" कहते हैं, अथवा जो रोग एक दोषसे उत्पन्न होता है, जिसमें कोई उपद्रव नहीं होता और जो नया होता है, उसे "सुखसाध्य" कहते हैं। सुखसाध्य रोगके आराम करनेमें वैद्यको बहुत कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

(४२) कष्टसाध्य—जिस रोगको वैद्य बड़ी तकलीफोंसे आराम

कर सके, अथवा जो चीर-फाड़ प्रभृतिसे इलाज करने लायक़ हो, उसे "कष्टसाध्य" या "कृच्छ्रसाध्य" कहते है।

(४३) असाध्य—जो रोग आराम न हो सके, रोगीके प्राण नाश करके पीछा छोड़े, उसे "असाध्य" कहते है।

(४४) अचिकित्स्य—जिस रोगका इलाज न हो सके, उसे 'अचिकित्स्य' कहते है।

(४५) याप्य—जो रोग क्रिया यानी चिकित्साको धारण करले, किन्तु रोगमे की हुई क्रिया ज्यो ही निवृत्त हो, कि रोगी मर जाय, ऐसे रोगको "याप्य" कहते है, अथवा असाध्य रोग यदि नरम हो, आराम होनेका कुछ भरोसा हो, तो उसे भी "याप्य" कहते है।

(४६) द्विदोषज—जो रोग वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोमेसे किन्ही दो दोषोंके कोपसे हो, उसे "द्विदोषज" कहते हैं।

(४७) त्रिदोषज—जो रोग तीनो दोषोंसे हो, उसे "त्रिदोषज" कहते है।,

(४८) चार परीक्षा—आप्तोपदश, प्रत्यक्ष, अनुमान और युक्ति—ये परीक्षाके चार प्रकार है, यानी इन चारोसे परीक्षा होती है।

(४९) आप्तोपदेश—जो ज्ञान और तपोवलके प्रभावसे रजोगुण और तमोगुणसे रहित हो गये है, जो त्रिकालज्ञ है, जिनका निर्मल ज्ञान ,कभी नाश नही होता, उनको 'आप्त' कहते हैं और उनके उपदेशको "आप्तोपदेश" कहते है।

(५०) प्रत्यक्ष-ज्ञान—आत्मा, मन, इन्द्रिय और इन्द्रियोके विषय—इनके इकट्ठे होनेसे इन्द्रिय-ज्ञान होता है। इसीको "प्रत्यक्ष-ज्ञान" कहते है।

(५१) अनुमान—कार्य, कारण और कार्य-कारण—इन तीनोके लक्षणोसे किसी बातका अन्दाजा लगानेको "अनुमान" कहते है। जैसे, धूआँके देखनेसे आगका अनुमान होता है और गर्भके देखनेसे इस बातका अनुमान किया जाता है कि, पहले मैथुन किया गया है।

(५२) युक्ति—जो बुद्धि अनेक प्रकारके कारणोसे अनेक प्रकारके नतीजे

निकाल सके, उसे 'युक्ति' कहते हैं। जैसे, बीज बिना अंकुर कहाँसे होगा?

(५३) त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम,—ये "त्रिवर्ग" कहाते हैं।

(५४) आप्तागम—लोक-परम्परासे चले आनेवाले शास्त्र-वाक्यको 'आप्तागम' कहते है।

(५५) त्रिविध बल—स्वाभाविक बल, कालकृत बल और युक्तिकृत बल—इन तीनों प्रकारके बलोंको 'त्रिविध बल' कहते है। शरीर और मनके स्वभावसे जो बल होता है, उसे "स्वाभाविक बल" कहते है। ऋतु विशेष और अवस्था विशेषके कारण जो बल होता है, उसे "कालकृत बल" कहते है, और जो बल अच्छा-अच्छा खाने और कसरत वगैरःसे किया जाता है, उसे "युक्तिकृत बल" कहते है।

(५६) तीन आयतन—रोगके तीन आयतन या कारण होते हैं। (१) इन्द्रियोंके विषय—रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्धका अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। (२) कर्मका अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। (३) कालका अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। बस, इन तीन कारणोंसे रोग होते हैं। किसी खूबसूरत स्त्रीको हदसे जियादा देखना "रूपका अतियोग" है। किसी खूबसूरत स्त्री या चीजको देखना ही नहीं या देखना छोड़ देना, "रूपका अयोग" है। बहुत ही बारीक या बहुत ही दूरकी अथवा महाभयंकर चीजको देखना—"मिथ्या योग" है। इसी तरह इन्द्रियोंके और चारो विषयोंके सम्बन्धमे समझ लो।

किसी काममे एकदम लग जाना "कर्म का अतियोग" है। उसमे बिल्कुल न लगना "कर्मका अयोग" है। कर्मको जिस तरह करना चाहिये, उस तरह न करना—कर्मका "मिथ्या योग" है। मलके वेगको रोकना या बिना वेगके मल त्याग करना, विषम भावसे चलना-फिरना, सोना प्रभृति "शारीरिक मिथ्या योग" है। निन्दा करना, झूठ बोलना, झगड़ा करना, कठोर वचन बोलना प्रभृति "वाचिक मिथ्या योग" है। शोक, क्रोध, लोभ, ईर्षा, द्वेष प्रभृति "मानसिक मिथ्या योग" है।

सर्दी-गरमीका ज़ियादा पड़ना, वर्षाका जोरसे होना, "कालका अति-योग" है। इनका ऋतुके लक्षण-अनुसार न होना "कालका अयोग" है। इनका ऋतुके लक्षण-अनुसार न होना, "कालका मिथ्या योग" है।

(५७) कर्म—शरीर, वाणी और मनकी चेष्टाको 'कर्म' कहते हैं।

(५८) काल—सर्दी, गरमी और वर्षा इन मौसमोके समुदाय या समष्टिको "संवत्सर" या "वर्ष" कहते हैं। इसीको "काल" कहते हैं।

(५९) तीन रोग—रोग तीन तरहके होते हैं:—(१) निज रोग, (२) आगन्तु रोग, और (३) मानसिक रोग। शरीरके वायु, कफ और पित्तके कारणसे जो रोग होते हैं, उन्हे 'निज रोग' कहते हैं। विष, हवा, आग और चोट वगैर:के लगनेसे जो रोग होते हैं, उन्हे 'आगन्तु रोग' कहते हैं। प्यारी चीज़के न मिलने और अप्यारी चीजके मिलनेसे जो रोग होते हैं, उन्हे 'मानसिक रोग' कहते हैं।

(६०) तीन रोग-स्थान—रोगोके तीन स्थान हैं:—(१) रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र,—ये धातु सात और त्वचा (चमड़ा), (२) मर्म, अस्थि, सन्धि, और (३) कोष्ठ या कोठे। ये ही तीनो रोगोके स्थान हैं। गलगण्ड, अपची, अर्बुद, कुष्ट प्रभृति रोग पहले प्रकारके हैं। पक्षाघात, अङ्गग्रह, अपतानक, लकवा (अर्दित), सूजन, यक्ष्मा, अस्थि-शूल, सन्धि-शूल तथा सिरमे होनेवाले, वस्तिमे होनेवाले और हृदयमे होनेवाले रोग दूसरे प्रकारके हैं, यानी ये मर्म-स्थानो, हड्डियो और शरीरके जोडोमे होते हैं। ज्वर, अतिसार, वमन, हैजा, श्वास, खाँसी, हिचकी, अफारा, उदर-रोग और तिल्ली प्रभृति रोग कोठोमे होते हैं।

(६१) तीन वैद्य—छद्मचर वैद्य, सिद्ध-साधित वैद्य और वैद्य-गुण-युक्त वैद्य,—ये तीन वैद्य होते हैं। जो वैद्योकी-सी शीशी और पुस्तक वगैर: रखते हैं एवं वैद्योकेसे कपड़े पहनकर वैद्य होनेका ढोंग करते हैं, पर असलमे वैद्यकका अक्षर भी नही जानते, उन्हे "छद्मचर वैद्य" कहते हैं। जो किसी नामी-गिरामी विद्वान् वैद्यके कारणसे पुजने

लगते हैं, मगर जानते कुछ नहीं, उन्हें "सिद्ध-साधित वैद्य" कहते हैं। जो वैद्य प्रयोग-कुशल, विद्वान्, आरोग्यदाता और प्राण-रक्षक होते है यानी सच्चे वैद्य होते हैं, उन्हें "वैद्य" या "सद्वैद्य" कहते हैं। आज-कल छद्मचर और सिद्ध-साधित वैद्य वहुत हैं।

(६२) तीन औषधि—तीन प्रकारकी औषधियाँ होती हैः—(१) दैवव्यपाश्रय (२) युक्तिव्यपाश्रय (३) सत्वावजय। हवन, जप, पूजा, व्रत, उपवास, हीरा-पन्ना आदि रत्नोंका धारण करना प्रभृति, पहली किस्मकी दवा है। कायदेके माफिक पथ्य-परहेज करना और औषधि सेवन करना, दूसरी किस्मकी दवा है और देश, काल, वल, कुल और शक्तिके विरुद्ध काम न करना, अहित विषयोंसे मनको रोकना या शान्ति लाभ करना, ये तीसरी किस्मकी दवा है। मतलव यह है कि, जप, हवन, व्रत, उपवास प्रभृति करने, पथ्य और औषधि सेवन करने और शान्त रहनेसे रोग आराम होते हैं।

(६३) रसक्षय—रस-धातुके क्षय या कमीको "रसक्षय" कहते हैं। जिस समय शरीरमे रसका क्षय होता है, उस समय मनुष्यका हृदय विलोयासा हो जाता है, जोरकी आवाज वर्दाश्त नहीं होती, कलेजा धक-धक करता और सूनासा मालूम होता है, जरासी मिहनत करनेसे आँखोंके सामने अँधेरा आ जाता है।

(६४) रक्तक्षय—जव शरीरमे खून कम होता है, तव कहते हैं कि 'रक्तक्षय' हुआ है। रक्तक्षय होनेसे शरीरका चमड़ा कड़ा, रूखा और फटासा हो जाता है।

(६५) मासक्षय—मांसके कम होनेको कहते हैं। मांसक्षय होनेसे कमर, गर्दन और पेट ये विशेष रूपसे सूख जाते हैं।

(६६) मेदक्षय—चरवीके कम होनेको कहते हैं। मेदक्षय होनेसे सन्धियाँ फटने लगती हैं, दोनों आँखोंमे ग्लानि होती है, थकानसी मालूम होती और पेट पतला हो जाता है।

(६७) अस्थिक्षय—हड्डीके क्षय होनेको कहते हैं। अस्थिक्षय होनेसे

बाल, रोएँ, नाखून, मूँछ, हड्डी और दाँत बिना समयके यानी समयसे पहले गिर जाते है, जोड़ ढीलेसे हो जाते है और भ्रम होता है ।

(६८) मज्जाक्षय—हड्डियोके गूदेके क्षीण होनेको कहते है। मज्जा क्षीण होनेपर हड्डियाँ गिरने लगती है, दुर्बल और हलकी हो जाती हैं और रोगीको सदा वायुका रोग बना रहता है ।

(६९) शुक्रक्षय—वीर्यके क्षय होनेको कहते है। इसके क्षय होनेसे मनुष्य कमजोर हो जाता है, मुँह सूखता है, पीलापन छा जाता है; अवसाद, ग्लानि और नपुंसकता होती है तथा वीर्य नही निकलता ।

(७०) विष्ठाक्षय—विष्ठा यानी मलका क्षय होनेसे वायु आँतोमें दर्द करती है, शरीर रूखा हो जाता है, वायु कूखको ऊँची करके और तिरछी होकर ऊपर-नीचे जाती है ।

(७१) मूत्रक्षय—पेशाबके कम होनेको कहते है । मूत्रक्षय होनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग हो जाता है, पेशाबका रंग बदल जाता है, प्यास लगती है, मुँह सूखता है, मल-मार्ग सूने, हलके और सूखेसे मालूम होते है ।

(७२) ओजक्षय—सब धातुओमे "ओज" सार है । ओजक्षय होनेसे रोगी सदा डरता रहता है, कमजोर हो जाता है, हर समय चिन्ताग्रस्त रहता है, सारी इन्द्रियाँ पीड़ित होती है, शरीर क्षीण, रूखा और कान्तिहीन हो जाता है ।

(७३) दोषोकी तीन अवस्था—वात, पित्त और कफकी तीन अवस्थाएँ होती हैः—(१) क्षय, (२) वृद्धि और (३) स्थिति, यानी घटना, बढ़ना और समान रूपसे रहना,—ये तीन अवस्थाएँ होती है ।

(७४) दोषोकी तीन गति—वात, पित्त और कफकी तीन गति या चाल होती है—(१) उर्ध्व, (२) अध, (३) तिर्यक, यानी ये दोष ऊपर, नीचे और तिरछे चलते है । इनके सिवा और भी तीन गति होती है—(१) कोठोमे जाना, (२) रस-रक्त आदि सात धातुओ और चमड़ेमे जाना, (३) मर्म-स्थानों, हड्डियो और सन्धियोमे जाना ।

(७५) दोषोंकी कालकृत तीन गति—ऋतुओंके बदलनेके साथ वात, पित्त और कफकी तीन गति होती हैः—(१) संचय, (२) कोप, (३) उपशम। जैसे वर्षा ऋतुमे पित्तका संचय होता है; शरद ऋतुमे उसका कोप होता है और हेमन्त मे शान्ति होती है।

(७६) प्रकृतिस्थ पित्त—जब पित्त घटा या बढ़ा हुआ नही होता, सम भावसे होता है, तब कहते है, कि पित्त प्रकृतिस्थ है। प्रकृतिस्थ पित्तकी गरमीसे ही अन्न पचता है। जब यह कुपित होता है, अनेक रोग पैदा करता है।

(७७) प्रकृतिस्थ कफ—प्रकृतिस्थ कफ ही शरीरमें बल है, विकृत कफ ही शरीरमे मल है और कफ ही शरीरमें "ओज" कहाता है। इसे अवस्था-भेदसे वायु कहते हैं।

(७८) प्रकृतिस्थ वायु—प्रकृतिस्थ वायु ही प्राणियोका प्राण है। इसीसे सब तरहकी चेष्टाये होती हैं। इसीके कुपित होनेसे अनेक रोग होते है।

(७९) प्रत्याख्याय—असाध्य रोग यदि दारुण हो, आराम होनेकी ज़रा भी उम्मीद न हो, तो "प्रत्याख्याय" यानी त्याज्य कहाते है।

(८०) निदान—रोगकी उत्पत्तिके कारणको "निदान" कहते है।

(८१) पूर्वरूप—रोगकी उत्पत्तिके पहले लक्षणको "पूर्वरूप" कहते हैं।

(८२) रूप—रोग प्रकट हो जानेपर जो लक्षण प्रकाशित हो, उसे ही "रूप" कहते है।

(८३) उपशय—जो वस्तु अपनी आत्माके अनुकूल हो, उसे "उपशय" या "सात्म्य" कहते हैं।

(८४) सम्प्राप्ति—व्याधिकी उत्पत्तिको "सम्प्राप्ति" कहते है।

(८५) प्राधान्य सम्प्राप्ति—वातादि दोषोंके कम और जियादा होनेसे प्रधानता और अप्रधानता होती है।

(८६) विधि—रोगोंके भेदको विधि कहते हैः—(१) निज और

आगन्तु, (२) एक दोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज, (३) साध्य और असाध्य, (४) मृदु और दारुण—ये रोगोके चार प्रकार है।

(८७) विकल्प—मिले हुए वात, पित्त और कफके अंशांशकी कल्पनाको "विकल्प" कहते है। जैसे, ज्वरके ६३ विकल्प होते है।

(८८) बलकाल सम्प्राप्ति—ऋतु, दिन, रात और आहार इनके काल-भेदसे व्याधिके बलकालमे भेद होता है। वर्षा-कालकी अपेक्षा शरद् ऋतुमे पित्त-ज्वरका अधिक बल होता है। मध्याह्न-काल और मध्यरात्रिमे पित्त-ज्वरवालेको अधिक कष्ट होता है।

(८९) चार अग्नि—तीक्ष्ण, मन्द, सम और विषम—ये चार अग्नि होती है।

(९०) मन्दाग्नि—मनुष्यकी कफकी प्रकृति होनेसे मन्दाग्नि होती है, उसे थोडा भी आहार यथार्थ रूपसे नही पचता।

(९१) तीक्ष्णाग्नि—मनुष्यकी पित्त-प्रकृति होनेसे तीक्ष्ण अग्नि होती है। इस अग्निवालेको जियादा खाया-पिया भी सुखसे पच जाता है।

(९२) विषमाग्नि—मनुष्यकी वात प्रकृति होनेसे विषम अग्नि होती है। इस अग्निवालेको कभी अन्न पच जाता है और कभी नही पचता है।

(९३) समाग्नि—जिसकी अग्नि सम होती है उसका खाया-पिया अच्छी तरह पच जाता है।

(९४) रोगका निदान रोग—यो तो सभी रोगोके आदि कारण—कुपित हुए वात, पित्त और कफ—ये तीन दोष हैं। परन्तु इनके सिवा, रोग भी रोगका कारण या निदान होता है,यानी जिस तरह कुपित हुए वात आदि दोषोसे रोग होते है, उसी तरह रोगोसे भी रोग होते है, अर्थात् जो काम निदान करता है, वही काम रोग भी करता है। जैसे, ज्वरके संतापसे रक्तपित्त होता है, रक्तपित्तसे ज्वर उत्पन्न होता है, रक्तपित्त और ज्वर इन दोनोसे श्वास होता है; तिल्लीके बढ़नेसे

उदर-रोग होता है, उदर-रोगसे सूजन या शोथ होता है, बवासीरसे उदर-रोग और गुल्म होता है, जुकाम (प्रतिश्याय) से खाँसी होती है, खाँसीसे ओज प्रभृति धातुओंका क्षय होकर, क्षय या राजयक्ष्मा अथवा राजरोग होता है। पहले तो ये रोग स्वतन्त्र होते है, जब इन्हे बल मिल जाता है, तब ये दूसरे रोगोंको पैदा करते है। इनमें एक विचित्रता होती है यानी कोई रोग तो दूसरेको पैदा करके आप शान्त हो जाता है, और कोई दूसरेको पैदा करके आप भी जैसे-का-तैसा बना रहता है। बवासीर आप नहीं मिटती, जैसी-की-तैसी बनी रहती है और उदर-रोग तथा गुल्म-रोग पैदा कर देती है।

(९५) पीयूषपाणि—जिस वैद्यके हाथमे अमृत हो, यानी जिसके हाथमे आकर सभी रोगी आराम हो जाते हो, उसे "पीयूषपाणि" कहते हैं।

(९६) दोष—वात, पित्त और कफको दोष कहते है। धातु और मल इन दोषोंसे दूषित होते हैं, इसलिये इन्हे "दोष" कहते हैं। यह देहको धारण करते है, इसलिये विद्वान् इन्हे "धातु" भी कहते है। वाग्भट्टने कहा है, वात, पित्त और कफ दूषित होनेसे देहका नाश करते हैं और शुद्ध होनेसे शरीरको धारण करते है।

(९७) धातु—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—इन सातोंको "धातु" कहते हैं। यह मनुष्यके शरीरमे स्वयं स्थित रहकर देहको धारण करते है, इसीलिए इन्हे "धातु" कहते है।

(९८) रस—भले प्रकारसे पचे हुए भोजनके सारको "रस" कहते हैं।

(९९) मर्म—शिरा, स्नायु, सन्धि, मांस और हड्डी—ये जब इकट्ठे होकर मिलते हैं, तब "मर्मस्थल" कहलाते हैं। इन मर्मस्थलोंमे विशेषकर प्राण रहते है; देहधारियोके शरीरमें कुल १०७ मर्म हैं।

(१००) सन्धि—शरीरके जोड़ोंको सन्धि या जोड़ कहते है। देहधारियोंके शरीरमें २१० सन्धि या जोड़ होते है।

(१०१) शिरा—एक प्रकारकी नसे हैं । ये सब शिराये नाभिमे बँधी हैं और चारो ओरको फैल रही है । इन्हीसे सन्धियाँ बँधी हैं और यही वातादि दोषों और रस-रक्त आदि धातुओको बहाती है । इन्हीं शिराओसे शरीर सिकुड़ता और फैलता है । यह गिन्तीमे सात सौ हैं ।

(१०२)—स्नायु—स्नायु भी एक प्रकारकी नसे है । ये शिराओकी अपेक्षा मजबूत हैं । देहमे मांस, हड्डी और सन्धियाँ इन्हीसे बँधी हुई हैं । मनुष्य-शरीरमे नौ सौ स्नायु है ।

(१०३) धमनी—नाड़ियोको कहते हैं । ये नाभिसे उत्पन्न हुई है और गिन्तीमे चौबीस है ।

(१०४) कण्डरा—बड़ी स्नायुओको कण्डरा कहते हैं । ये गिन्तीमें १६ हैं । ये भी शरीरके सुकेड़ने और फैलानेमे काम आती है ।

(१०५) रन्ध्र—छेदोको कहते है । आँखोंमे दो, कानोमे दो, नाकमे दो, मुखमे एक, लिङ्गमे एक, गुदामे एक, इस तरह मर्दके शरीरमें मुख्य नौ छेद होते हैं, पर स्त्रियोके शरीरमें तीन छेद जियादा होते है—स्तनोमें दो और गर्भाशयमें एक ।

(१०६) स्रोत—मन, प्राण, अन्न, पानी, दोष, धातु, उपधातु, धातुओका मल, मूत्र और विष्ठा इत्यादि पदार्थ शरीरमे जिन रास्तोसे चलते है, उन रास्तोंको "स्रोत" कहते है । ये स्रोत अनगिन्ती है ।

(१०७) त्वचा—चमड़ेको कहते है । जिस तरह आगपर औटे हुए दूधमे मलाई होती है, उसी तरह पित्तसे पके हुए वीर्य्य और रजसे त्वचा होती है । ये त्वचाएँ सात होती है ।

(१०८) रोग और आरोग्य—दोषोंकी विषमताको "रोग" और उनकी समताको "आरोग्य" कहते है ।

(१०९) आगन्तुक रोग—लकड़ी, पत्थर आदिके लगनेसे जो रोग होता है, उसे "आगन्तुक रोग" कहते है ।

(११०) स्वाभाविक रोग—जो रोग अपने स्वभावसे होते है, उनको

"स्वाभाविक रोग" कहते हैं। भूख, प्यास, सोनेकी इच्छा, बुढ़ापा, मृत्यु, जन्ममें अल्पायन प्रभृति स्वाभाविक रोग हैं।

(१११) मानसिक रोग—जो रोग मनमें होते हैं, उन्हें "मानसिक रोग" कहते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, भय, अभिमान, दीनता, चुगली शोक, ईर्षा, द्वेष, मात्सर्यता, उन्माद, मृगी, मूर्च्छा, भ्रम, अन्धकार और सन्यास प्रभृति रोग मानसिक रोग हैं।

(१११क) कायिक रोग—काया यानी शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंको "कायिक रोग" कहते हैं। जैसे: पीलिया, ज्वर आदि।

नोट—चारों प्रकारके रोगोंके भेद अच्छी तरह समझ लो।

(११२) कर्मज व्याधि—पूर्व्व जन्मके प्रबल दुष्ट कर्मोंके कारण जो व्याधि होती है, वह अच्छी-से अच्छी चिकित्सा करनेपर भी आराम नहीं होती, उसे "कर्मज व्याधि" कहते हैं।

(११३) दोषज व्याधि—मिथ्या आहार-विहारके कारण वात-पित्त और कफके कुपित होनेसे जो रोग होते हैं, उन्हें "दोषज व्याधि" कहते हैं।

(११४) त्रिविधा रोग—साध्य, याप्य और असाध्य—इन तीनों प्रकारके रोगोंको "त्रिविधा रोग" कहते हैं।

(११५) उपद्रव—रोगको आरम्भ करनेवाले दोषोंका प्रकोप होनेसे जो और-और विकार होते हैं, उन्हें "उपद्रव" कहते हैं। जैसे, ज्वरमें खाँसी, ज्वरका उपद्रव है।

(११६) अरिष्ट—जिन लक्षणोंके प्रकट होनेसे रोगीकी मृत्यु अवश्य हो, उन लक्षणोंको "अरिष्ट" या "रिष्ट" कहते हैं।

(११७) प्रतिनिधि—जो औषधि दूसरी औषधिके स्थानमें काम देती है, उसे उसका "प्रतिनिधि" कहते हैं। जैसे, रसौतके अभावमें दारुहल्दी ली जाती है, अतः दारुहल्दी रसौतकी प्रतिनिधि हुई।

(११८) षट्रस—मीठा, खट्टा, खारी, कड़वा, चरपरा और कसैला—इन छै रसोंको षट्रस कहते हैं। ये छै रस पदार्थोंमें रहते हैं।

(११९) त्रिफला—हरड़, बहेड़ा और आमला—इन तीनोको एकत्र मिलाकर "त्रिफला," "फलत्रिक" अथवा "वरा" कहते हैं।

(१२०) त्रिकुटा—सोठ, मिर्च और पीपल—इन तीनोको एकत्र मिलाकर "त्रिकुटा" कहते हैं।

(१२१) पचकोल—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोठ—इन पॉचोंको एक-एक कोल यानी आठ-आठ माशे ले, तो उसे "पंचकोल" कहते है।

(१२२) षडूषण—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोठ और गोल मिर्च—इनको "षडूषण" कहते हैं।

(१२३) चतुर्बीज—मेथी, हालो, काला जीरा और अजवायन—इन चारो मिले हुए पदार्थोको "चतुर्बीज" या "चारदाना" कहते हैं।

(१२४) त्रिजातक—दालचीनी, इलायची और तेजपात—इन तीनोको "त्रिजातक" कहते है। अगर इनमे नागकेशर और मिला दें, तो इन्हे "चतुर्जातक" कहते है।

(१२५) मासपेशी—मांसके टुकड़ोको कहते है। इनसे शरीर सीधा खड़ा रहता है और उसमे बल रहता है।

(१२६) आयु-मृत्यु—शरीर और प्राणके संयोगको "आयु" कहते हैं। शरीर और प्राणके वियोग होनेको पंचत्व या "मरण" कहते है।

(१२७) उदानवायु—यह वायु गलेमे रहती है। इसीकी शक्तिसे आदमी बोलता और गीत प्रभृति गाता है। इसीके कुपित होनेसे कण्ठादिकके रोग होते है।

(१२८) प्राणवायु—यह वायु सदैव मुखमे चलती और प्राणोको धारण करती है। इसीके द्वारा खाया-पिया भीतर जाता है। इसीके कुपित होनेसे हिचकी और श्वास प्रभृति रोग होते हैं।

(१२९) समानवायु—यह वायु आमाशय और पकाशयमे रहनेवाली जठराग्निसे मिलकर, अन्नको पचाती और मल-मूत्रको अलग-अलग

करती है। इसके कुपित होनेसे मन्दाग्नि, अतिसार और वायु-गोला प्रभृति रोग होते है।

(१३०) अपानवायु—यह वायु पक्काशयमे रहती है। यही मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्तवको निकालकर बाहर डालती है। इसके कुपित होनेसे मूत्राशय और गुदासे सम्बन्ध रखनेवाले रोग होते है।

(१३१) व्यानवायु—यह वायु सारे शरीरमे घूमती है। यही वायु, रस, पसीना और ख़ूनको बहाती है। आँख खोलना, बन्द करना, नीचे डालना और ऊपरको फेकना प्रभृति क्रियाएँ इसीसे होती हैं। यह कुपित होकर सारे शरीरके रोगोको प्रकट करती है।

(१३२) पाचक पित्त—यह पित्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—इन चारो प्रकारके अन्नोको पचाता है। इसीसे इसे "पाचक पित्त" कहते है।

(१३३) भ्राजक पित्त—यह पित्त चमड़ेमे रहता और कान्ति उत्पन्न करता है। इसीसे शरीरमे किया हुआ चन्दन वगैरःका लेप, मालिश किया हुआ तेल और स्नान वगैरः पचते है।

(१३४) रञ्जक पित्त—यह पित्त रँगनेका काम करता है, इसीसे इसे "रञ्जक पित्त" कहते है। यह यकृत और प्लीहामे रहकर ख़ून बनाता है।

(१३५) साधक पित्त—मेधा और धारणा-शक्तिको करता है।

(१३६) अलोचक पित्त—यह पित्त दोनो आँखोमे रहता है, इसीसे जीवको दिखाई देता है।

(१३७) क्लेदन कफ—यह कफ अन्नको गीला करता है। इसी कारणसे इकट्ठा हुआ अन्न अलग-अलग हो जाता है। यह आमाशयमे रहता है।

(१३८) अवलम्बन कफ—यह कफ हृदयमे रहता है। यह अवलम्बन आदि कर्म द्वारा हृदयका पोषण करता है।

(१३९) संश्लेषण कफ—यह कफ सन्धियोमे रहता और उनको जोड़ता है।

(१४०) रसन कफ—यह कफ कण्ठमें रहता है और रसको ग्रहण

करता है। इसीसे कड़वे, कसैले और चरपरे प्रभृति रसोका ज्ञान होता है।

(१४१) स्नेहन कफ—यह कफ मस्तकमे रहता है और इन्द्रियोको तृप्त करता है, इसीसे इन्द्रियोमे अपने-अपने कामकी सामर्थ्य होती है।

(१४२) एकादश इन्द्रिय—कान, आँख, जीभ, नाक और त्वचा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और मुँह, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ है। ग्यारहवाँ "मन" इनका संचालक है। इन ग्यारहोंको "एकादश इन्द्रिय" कहते है।

(१४३) त्रिविध अहंकार—राजस, तामस और सात्विक,—तीन तरहके अहंकार होते है। साख्य-शास्त्रवाले कहते हैं कि, इन्द्रियाँ तीनो तरहके अहंकारोसे पैदा हुई हैं, किन्तु वैद्यक-शास्त्रवाले इन्हे भौतिक कहते हैं।

(१४४) पंचतन्मात्रा—शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा—ये "पाँच तन्मात्रायें" है।

(१४५) भूतपंचक—आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये "पच महाभूत" है।

(१४६) इन्द्रियोंके विषय—कान, आँख, जीभ, नाक और चमड़ा, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियोके पाँच विषय है, यानी कानका विषय सुनना, चमडेका छूना, आँखका देखना, जीभका स्वाद लेना और नाकका सूँघना।

इसी तरह मुँह (वाणी), हाथ, पैर, उपस्थ (लिङ्ग या भग) और गुदा—ये पाँच कर्म्मेन्द्रियाँ है। भाषण, आदान, विहार, आनन्द और उत्सर्ग—ये क्रमसे कर्मेन्द्रियोके पाँच विषय है, यानी मुखका विषय बोलना, हाथका काम लेना-देना, पैरका काम चलना-फिरना, उपस्थका काम सम्भोग-आनन्द करना या मूत्र त्याग करना और गुदाका काम मल त्याग करना है।

(१४७) षोडश विकार—दश इन्द्रिय, उभयात्मक-मन और पंच महाभूत—ये सोलह विकार है।

(१४८) चौबीस तत्व—अव्यक्त, महान, अहंकार, पाँच तन्मात्रा, ग्यारह इन्द्रिय और पाँच महाभूत—इन्हीं चौबीसोंको चौबीस तत्व कहते हैं। इन्हीं चौबीसों तत्वोंसे यह शरीर बना है। इस शरीर रूपी घरमें जो जीवात्मा रहता है, वही पचीसवाँ है। मन उसका दूत है। यद्यपि जीवात्मा आकाशकी तरह निर्विकार है, तथापि जिस तरह निर्विकार आकाश सन्ध्या-समय सूर्य-किरणोंके संयोगसे लाल हो जाता है, उसी तरह जीवात्मा विकारवान वस्तुओंके संयोगसे विकारवान हो जाता है।

(१४९) जीव-बन्धन—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इन्द्रिय और बुद्धि,—ये जीवके बन्धन हैं।

(१५०) काम—पुरुषोंकी स्त्रियोंसे और स्त्रियोंकी पुरुषोंसे उपभोगके लिये जो प्रीति होती है, उसे "काम" कहते है।

(१५१) क्रोध—प्राणोंके हृदयसे एकबारगी ही गरमी प्रकट होकर पराया बुरा चाहती है, उससे चित्तको एक प्रकारका दुःख पहुँचता है, उसी दुःख या क्लेशको "क्रोध" कहते हैं।

(१५२) लोभ—पराया धन, पराया भाग और परायी सामर्थ्यकी बात देख-सुनकर प्राणीके हृदयमें जो तृष्णा पैदा होती है, उसे ही "लोभ" कहते हैं।

(१५३) मोह—बुरेको भला और भलेको बुरा समझना मिथ्याज्ञान है। कल्याणकारक और अकल्याण-कारक बातोंका निश्चय जब बुद्धिको नहीं होता, वह इन दोनोंके बीचमें घूमती है, तब उसे "संशय" या "मोह" कहते हैं।

(१५४) अहंकार—जब प्राणी कार्य्य-कारणसे युक्त "अहं" इस अभिमानके साथ काममें लगता है, तब उसको "अहंकार" कहते हैं। "यह काम मैं करता हूँ", "यह काम मैंने किया"—यह भाव अहंकार प्रकट करता है।

(१५५) मल या विष्ठा—जो कुछ खाते है, उसके सारको रस

और निःसारको मल कहते है। यही मूत्रवाहिनी नसों द्वारा वस्ति या मूत्राशय अथवा पेड़ूमे जाकर, मूत्र या पेशाब हो जाता है और शेष रहा हुआ कीट पक्काशयके एक कोनेमे जाकर विष्ठा या मल हो जाता है। इसे अपानवायु गुदाके बाहर निकालकर फेंक देती है।

(१५६) गुदा—शरीरका वह सूराख है, जिधरसे अपानवायु मलको निकालती है। इस गुदामें शंखकी भाँति तीन वलियाँ या आँटे होते है। इन बलियोंके नाम प्रवाहिनी, सर्जनी और ग्राहिका है।

(१५७) स्वरस—ताजा रसदार द्रव्य लाकर, उसे तत्काल कूटने और कपड़ेमे रखकर निचोड़नेसे जो रस निकलता है उसे "स्वरस" कहते है।

नोट—अगर ताजा रसदार द्रव्य न मिले, तो सूखा हुआ आधसेर द्रव्य चूर्ण करके, एक सेर जलमें एक दिन-रात भिगोकर छान ले। उस रसको भी 'स्वरस' की जगह काममें लेते हैं, अथवा वैद्य सूखे द्रव्यको अठगुने जलमें पकावे, जब चौथाई पानी रह जाय, तब उतारकर 'स्वरस' के स्थानमें ग्रहण करें।

(१५८) कल्क—सूखे या जल-युक्त ताजा द्रव्यको शिलपर पीस-कर लुगदी-सी बना लेते है, उसीको "कल्क" कहते है। आवाप और प्रक्षेप कल्कके पर्य्याय शब्द है।

(१५६) चूर्ण—सूखा हुआ द्रव्य भली-भाँति कूट-पीसकर कपडेमे छान लिया जाय, तो उसे "चूर्ण" कहते है।

(१६०) शृत—कूटे हुए द्रव्यको जल मिलाकर आगपर पकाते हैं, फिर मसलकर कपड़ेमे छान लेते है, छाननेसे जो रस निकलता है, उसको "शृत" कहते है, क्वाथ, कषाय और निर्यूह इसके पर्याय हैं।

(१६१) शीत—आठ तोले द्रव्यको कूटकर बयालीस तोले जलमे एक रात भिगो रक्खे, उसको "शीत" कहते हैं।

(१६२) तण्डुलोदक—आठ तोले सूखे हुए चाँवल अच्छी तरहसे कूटकर चौगुने जलमे एक दिन या एक रात भिगो रक्खे, फिर छान ले, इस जलको "तण्डुलोदक" कहते है। "शार्ङ्गधर"मे लिखा है—चार तोले

साफ चॉवलोको अठगुने पानी यानी बत्तीस तोले जलमें डाल हाथसे मसले । यह "चॉवलोंका धोवन" सब काममे लावे ।

(१६३) फॉट—आठ तोले द्रव्यको अच्छी तरहसे कूटकर, मिट्टीके बर्त्तनमें, चौगुने गरम जलके साथ भिगो रक्खो, जब खूब गरम हो जाय, छान लो । उसको "फॉट" एवं "चूर्ण द्रव्य" कहते हैं ।

(१६४) उष्णोदक—जलको मिट्टीके बर्त्तनमे औटावे, जब औटते-औटते अष्टमांश (सेरका आधा पाव) चतुर्थांश (सेरका एक पाव) अथवा अर्द्धांश (सेरका आधा सेर) रह जाय, तब उतार ले या थोड़ा ही गरम कर ले—ऐसे जलको "उष्णोदक" कहते है ।

(१६५) अवलेह—काथादि द्वारा आगपर पकाकर घना यानी गाढ़ा किया जाय, तो उसे "अवलेह", "लेह" या "प्रास" कहते है ।

(१६६) मात्रा—एक बारमे रोगीको जितनी दवा दी जाय, उतनी दवाको "दवाकी मात्रा, खूराक या मौताद" कहते हैं ।

(१६७) कर्ष—वैद्यक शास्त्रकी पुरानी तोल है । आजकलके दो तोलेके बराबर एक कर्ष होता है । कोई-कोई एक तोलेके बराबर लिखते हैं ।

(१६८) पल—यह भी एक तोल है । पल आठ तोलेका होता है ।

(१६९) प्रस्थ—यह भी तोल है । प्रस्थ दो सेरका होता है ।

(१७०) खारी—यह भी तोल है । एक खारी ५१२ सेर यानी १२ मन, ३२ सेरकी होती है ।

(१७१) पञ्चलवण—विरिया सञ्चर, सेंधा, विड़, उद्भिद और समन्दरनोन—इन पॉचोंके मेलको पञ्चलवण कहते हैं ।

(१७२) मूत्रवर्ग—भेड़का मूत्र, बकरीका मूत्र, गोमूत्र, भैसका मूत्र, हाथीका मूत्र, ऊँटका मूत्र, घोड़का मूत्र और गधेका मूत्र, इन आठको "मूत्रवर्ग" कहते हैं ।

(१७३) चार स्नेह—घी, तेल, वसा और मज्जा—ये चार प्रकारके स्नेह हैं । ये पीने, मालिश करने, पिचकारी लगाने और नस्य-कर्मके काममे आते हैं ।

(१७४) दुग्धवर्ग—भेड़का दूध, बकरीका दूध, गायका दूध, भैसका दूध, ऊँटनीका दूध, हथिनीका दूध और गधीका दूध—इन दूधोको "दुग्धवर्ग" कहते है।

(१७५) सर्वगन्ध—दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, कपूर, काकोली, अगर, लोबान और लौंग—इन सबको मिलाकर "सर्वगन्ध" कहते है।

(१७६) महती त्रिफला—हरड़, बहेड़ा और आमला—इनको "महती त्रिफला" कहते है।

(१७७) स्वल्प त्रिफला—गम्भारी-फल, फालसा और खजूर—इनको "स्वल्प त्रिफला" कहते है।

(१७८) त्र्यूषण—पीपल, सोंठ और मिर्चको "त्र्यूषण" कहते है।

(१७९) त्रिमद—वायविडङ्ग, मोथा और चीता—इनको "त्रिमद" कहते है।

(१८०) क्षीर-वृक्ष—गूलर, बड़, पीपल, बेत और पिलखन—इन पाँचोको "क्षीर-वृक्ष" कहते है।

(१८१) पञ्चपल्लव—आम, जामुन, कैथ, बिजौरा नीबू और बेल—इन पाँचोंको "पञ्चपल्लव" कहते है।

(१८२) महत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गम्भारी, पाढल और अरणी—इन पाँचोको "महत् पञ्चमूल" कहते है।

(१८३) लघु पञ्चमूल—शालपर्णी (सरिवन), पिठवन, वृहती, कटेरी और गोखरू—इन पाँचोको "लघु पञ्चमूल" कहते है।

(१८४) दशमूल—लघु पञ्चमूल और वृहत पञ्चमूल—इन दोनोकी दसो चीजोको मिलाकर "दशमूल" कहते है।

(१८५) पञ्चतृण—कुश, काँस, शर, दर्भ और गन्ना—इन पाँचोंको "पञ्चतृण" या "पञ्चमूल" कहते है।

(१८६) वल्लीज पञ्चमूल—विदारीकन्द, मेढासिङ्गी, हल्दी, अनन्त-मूल और गिलोय—इन पाँचोंको "वल्लीज पञ्चमूल" कहते है।

(१८७) कण्टकाख्यमूल—करञ्ज, गोखरू, तालमखाना, पियावाँसा और शतावरी—इन पाँचोको "कण्टकाख्यमूल" कहते है।

(१८८) अष्टवर्ग—ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, ऋषभक, जीवक, काकोली और क्षीर काकोली, इन आठोंको 'अष्टवर्ग' कहते हैं।

(१८९) जीवनीयगण—अष्टवर्गकी आठों चीजे तथा मसवन, मुगवन, जीवन्ती और मुलहटी—इन सबको मिलाकर "जीवनीयगण" कहते है।

(१९०) श्वेत मरिच—सहँजनेके बीजको "श्वेत मरिच' कहते है।

(१९१) ज्येष्टाम्बु—चाँवलोके पानीको "ज्येष्टाम्बु" कहते है।

(१९२) सुखोदक—गरम जलको "सुखोदक" कहते है।

(१९३) वेशवार—बिना हड्डीका मांस, गुड़, घी, पीपल और मिर्च मिलाकर पकाया जाय, उसे "वेशवार" कहते हैं।

(१९४) अम्लमूलक—मूली काँजीमे भिगो रखकर. बासी करके पका ली जाय, तो उसको "अम्लमूलक" कहते हैं।

(१९५) कट्वर—मक्खन सहित दहीके माठेको "कट्वर" कहते है।

(१९६) तक्र—दहीमे दहीसे चौथाई जल मिलाकर मथे, तो वह 'तक्र' कहावेगा। आधा पानी मिलाकर मथनेपर "उदश्वित" तैयार होगा। अगर दहीमे बिल्कुल पानी न मिलावे और मथें तो "मथित" तैयार होगा।

(१९७) आसव—गन्नेका रस पकाकर जो मद्य तैयार किया जाता है, उसे "सीधु" कहते हैं और गन्नेके कच्चे रससे जो मद्य तैयार किया जाता है, उसे "आसव" कहते हैं।

(१९८) कृशरा या त्रिशरा—तिल, चाँवल और उड़दसे तैयार किये हुये यवागूको "कृशरा या त्रिशरा" कहते हैं।

(१९९) अरिष्ट—पके हुये काथ और मधुर रस-युक्त पतले पदार्थसे बने हुये मद्यको "अरिष्ट" कहते है।

(२००) तुषोदक—चरकने कहा है, उड़दकी भूसी भुनाकर पकावे, फिर उसमें जौका आटा मिलाकर, काँजी तैयार करनेकी विधिके अनुसार, जल डालकर भिगो रक्खे, जब खट्टा हो जाय, तब 'तुषोदक' को तैयार समझे।

(२०१) पञ्चक्रिया—वमन,विरेचन,नस्य,निरूह और अनुवासन—इन पाँचो क्रियाओंको "पञ्चक्रिया" कहते हैं। इन क्रियाओसे शरीरके वातादिक दोष शुद्ध होते हैं।

(२०२) नस्य—नाकसे जो औषधि धीरे-धीरे चढ़ाई जाती है, उसे "नस्य" कहते हैं। रूखे मस्तकको चिकना करनेके लिये और गर्दन, कन्धे और छातीका बल बढानेके लिए जो तैलादिका प्रयोग किया जाता है, उसको भी "नस्य" कहते हैं।

(२०३) प्रधमन—छः अङ्गुल लम्बे, दो मुँहवाले खाली नलमे तेज दवाका एक तोले चूर्ण भरकर, फूँक द्वारा नाकमें घुसाया जाय, उसे "प्रधमन" कहते हैं।

(२०४) अवपीड़—तेज दवाको कूटकर रस निकाला जाय और वह नस्यके काममे लाई जाय, तो उसे "अवपीड" कहते हैं। गलेके रोग, सन्निपात, विषम ज्वर, उन्माद, प्रभृति रोगोमे "अवपीड" नस्य दी जाती है, किन्तु प्रबल दोष और अचेतन अवस्थामें "प्रधमन नस्य" देनी चाहिये। इससे शीघ्र लाभ होता है।

(२०५) यवागू—चाँवल अथवा मूँग अथवा उड़द अथवा तिल इनमेसे जिस द्रव्यकी यवागू बनानी हो, उसको लेकर, उसमे उससे छः गुना पानी डालकर पकावे, जब तक गाढी न हो जाय, पकाता रहे; इसी-को "अन्न यवागू" और इसीको "कृशरा" कहते हैं। यह मलादिकोंको स्तम्भन करती, शरीरमें बल-पुष्टि करती और वायुका नाश करती है।

(२०६) विलेपी—चाँवल या मूँगमेसे कोई चीज लाकर, द्रव्यसे चौगुना पानी डालकर पकावे, जब लहापसीके समान गाढी और लिपटनेवाली हो जाय, उतार ले। इसको "विलेपी" कहते हैं। यह पुष्टि-कारक, हृदयको हितकारी, मधुर और पित्तनाशक है।

(२०७) पेया—जिसकी पेया बनानी हो, उस द्रव्यसे चौदह गुणा पानी उसमें डालकर पकावे, जब तक कुछ लहसदार न हो जाय पकावे, किन्तु बहुत गाढी न हो जाय, पेया पीने-लायक पतली रहती है। पेयासे

कुछ गाढ़ा "यूष" होता है। पेया बलदायक, कण्ठको हितकारी, हलकी और कफ-नाशक है।

(२०८) शुद्ध मण्ड—शुद्ध चाँवलोंको चौदह गुने जलमे डालकर पकाओ, जब चाँवल पक जायँ, माँड निकाल लो। इसी माँडको "शुद्ध-मंड" कहते है। इसमे सोठ और सेंधानोन मिलाकर पीवे, तो अन्नका पाचन हो और अग्नि-दीपन हो।

(२०९) अष्टगुण मंड—धनिया, सोठ, मिर्च, पीपल, सेंधानोन, मूँग, चाँवल, हींग और तेल—इन नौ चीजोंसे यह मंड तैयार होता है।

पहले तेलमे हींग मिलाओ। पीछे आठ तोले मूँग और सोलह तोले चाँवलोको तेल-मिली हींगके साथ भूनो। पीछे धनिया, सोठ, मिर्च, पीपल और नमकको इन भूने हुए मूँग-चाँवलोंमे इस अन्दाजसे मिलाओ कि, जायका खराब न हो। पीछे इनमे चौदह गुना पानी डालकर औटाओ। सब सीज जायँ, उतारकर छान लो। इस मांडको ही "अष्टगुण मंड" कहते हैं।

इस मंडमें आठ गुण हैं। इसके पीनेसे अग्नि दीप्त होती है, मूत्र-वस्तिका शोधन होता है, बल बढ़ता है, खूनकी वृद्धि होती है तथा ज्वर, कफ, पित्त और वायुका नाश होता है।

(२१०) लाजामण्ड—धानकी भुनी खील अथवा चाँवलोको भूनकर, उसमे चौदह गुना पानी डालकर औटावे, पीछे पसाकर माँड निकाल ले। इसी माँडको "लाजा-मण्ड" कहते है। इससे कफ-पित्तका प्रकोप दूर होता है, सग्रहणी और अतिसारके दस्तोंमे रुकावट होती है, अधिक प्यासवाला ज्वर शान्त होता है।

(२११) वाट्य-मण्ड—अच्छे जौ लेकर कूटो और भूनो, पीछे चौदह गुना जल डालकर पकाओ। पकनेपर माँड निकाल लो यही "वाट्य-मण्ड" है। इससे कफ-पित्तका प्रकोप दूर होता है। यह कण्ठको हितकारी और रक्तपित्तकी शान्ति करनेवाला है।

(२१२) आम्रादि-यवागू—आम, आमला और जामुन—इन तीनों

वृक्षोकी सोलह तोले छालको मिलाकर, जौकुट करके, चौंसठ गुने पानीमे यानी प्रायः पौने तेरह सेर जलमे औटावे। जब आधा पानी रह जाय, तब उतारकर छान ले। उस दवाके पानीमे सोलह तोले चाँवल डालकर पकावे। जब पकते-पकते गाढ़ा हो जाय, उतार ले। इसे "आम्रादि यवागू" कहते है। इस यवागूके खानेसे संग्रहणी दूर होती है।

(२१३) पानक—चार तोले दवाको जौकुट कर, चौंसठ गुने पानीमे डालकर औटाओ, आधा रहनेपर उतारकर छान लो, प्यास लगनेपर पिलाओ। जैसे, उशीरादि पानक।

(२१४) उशीरादि पानक—खस, पित्तपापड़ा, नेत्रवाला, नागरमोथा, सोंठ और रक्तचन्दन—इन छै दवाओंको मिलाकर चार तोले लो। पीछे जौकुट करके, २५६ तोले जलमे औटाओ, जब आधा पानी रह जाय, उतार लो। शीतल होनेपर, जिस ज्वरमे अत्यन्त प्यास लगती हो, थोड़ा-थोड़ा दो। इसके पीनेसे प्यास और ज्वर दूर होगे। इसी तरह और पानक भी तैयार हो सकते हैं।

(२१५) पञ्चमूली क्षीरपाक—औषधिसे अठगुना दूध और दूधसे चौगुना पानी मिलाकर औटानेसे "क्षीर" या दूध तैयार होते है। सरिवन, पिथवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू—लघु पंचमूलके इन पाँचो द्रव्योको जौकुट करके, अठगुने दूधमे और दूधसे चौगुने पानीमे डालकर औटाओ। जब औटते-औटते पानी जल जाय और केवल दूध रह जाय, उतारकर छान लो। यही "पचमूली क्षीरपाक" है। इसके पीनेसे श्वास, खाँसी, मस्तकशूल, पसलीका दर्द, पीनस (जुकाम) और जीर्णज्वर आराम होते है। यह दूध सब तरहके जीर्णज्वरोकी परमोत्तम परीक्षित औषधि है।

(२१६) क्काथ—चार तोले औषधिको, चौसठ तोले जलमे डालकर, मिट्टीके बासनमे हलकी-हलकी आगसे पकाओ। जब आठवाँ भाग यानी ८ तोले पानी शेष रहे, तब उतारकर छान लो। इसीको क्काथ (काढ़ा), शृत, कषाय और निर्यूह कहते है। हाँ, काढ़ेके बर्त्तनपर, औटाते समय, ढक्कन भूलकर भी न रखो, अन्यथा काढ़ा भारी हो जायगा।

(२१७) पुटपाक—गीली वनस्पतिको कूट-पीसकर गोला बनाओ। पीछे उस गोलेको कम्भारी, बड़ या जामुनके पत्तोसे लपेट दो। ऊपरसे सूत बाँध दो। पीछे उसपर दो अंगुल मिट्टी चढ़ा दो। इसके बाद कण्डे लगाकर, उसके बीचमें गोलेको रखकर, आग लगा दो। जब गोलेकी मिट्टी लाल हो जाय, गोलेको निकाल लो। पीछे गोलेके ऊपरसे मिट्टी और पत्ते हटाकर, उसे कपडेमे रखकर निचोड़ लो। यह रस "पुटपाक-विधिसे" तैयार हुआ। पुटपाक द्वारा तैयार हुआ रस "शहद" आदि डालकर पिया जाता है।

(२१८) मंथ—आठ तोले दवाको अच्छी तरह कूटो, पीछे बत्तीस तोले शीतल जलको मिट्टीके बर्तनमे भरो; फिर उसमें आठो तोले दवा डाल दो। पीछे उस दवाको रईसे मथो, जब एकदम झाग आने लगे, उसको छान लो। यही "मंथ" है। इसके पीनेकी मात्रा फॉटकी तरह दो पल या १६ तोलेकी है।

(२१९) हिम—आठ तोले दवाको जौकुट कर लो। अड़तालीस तोले जल किसी हॉडीमे भरकर, उसीमे जौकुट की हुई दवाको डाल दो और रातभर भीगने दो। सवेरे उस जलको छानकर पी जाओ। इसको "हिम" अथवा "शीत काढा" कहते हैं। इसकी मात्रा भी फॉटके समान सोलह तोलेकी है।

(२२०) गुटिका—गोलीको कहते हैं। गुटिका, वटी, मोदक, वटिका, पिण्डी, गुड और वत्ती,—ये सब गोलीके नाम है। यदि गोली बनानी हों, तो गुड, खॉड या गूगलको पकाकर, उसमे चूर्ण मिलाकर गोली बना लो। अगर विना पाक किये गोली बनानी हो, तो गूगलको शोधकर पीस लो, फिर उसमे चूर्ण मिलाकर घीसे गोली बना लो। यदि खॉड या मिश्री आदि डालकर गोली बनानी हो, तो चूर्णसे चौगुनी लेकर दोनोंको मिलाकर गोली बना लो। यदि कभी गूगल और शहद दोनों मिलाकर गोली बनानी हों, तो दोनोको चूर्णके बराबर लेकर गोली बना लो।

(२२१) शीतरस सीधु—कच्चे ईखके रस आदि मधुर पदार्थोंसे सिद्ध किये मद्यको "शीतरस सीधु" कहते हैं।

(२२२) पक्वरस सीधु—ईख आदि मधुर-द्रव-पदार्थोंको पकाकर जो मद्य बनाते हैं, उसे "पक्वरस सीधु" कहते हैं।

(२२३) सुरा—चाँवल आदि धान्यको उबालकर, अग्निके संयोगसे, यन्त्र द्वारा जो मद्य बनाते हैं, उसको शास्त्रमे "सुरा" कहते हैं।

(२२४) कादम्बरी—उपरोक्त नं० २२३ की सुराके घन भागको "कादम्बरी" कहते हैं।

(२२५) जगल—उपरोक्त सुराके नीचेके भागमे जो पतलासा पदार्थ होता है, उसको "जगल" कहते हैं।

(२२६) मेदक—जगलके गाढ़े भागको "मेदक" कहते हैं।

(२२७) पुक्कस—मेदकके सार-भागको "पुक्कस" कहते हैं।

(२२८) किण्वक—सुराबीजको "किण्वक" कहते हैं।

(२२९) वारुणी—ताड़ या खजूरके रससे, अग्निके संयोगसे, यन्त्र द्वारा जो रस खींचते हैं, उसको "मद्य", "वारुणी," "ताड़ी" या "खजूरी" कहते हैं।

(२३०) चुक्र—बिना खट्टे हुए मधुर द्रव पदार्थोंको पात्रमे भरकर, पात्रका मुँह बन्द करके, उसपर मुद्रा देकर, एक मास या पन्द्रह दिन रखनेसे जो मद्य तैयार हो, उसे "चुक्र" कहते हैं।

(२३१) गुड़सूक्त—गुड़, जल, तेल, कन्द-मूल और फल इन सबको किसी बर्तनमे भरकर, मुँह बन्द कर दो और पीछे मुद्रा दे दो। एक मास या दो पक्ष तक रक्खा रहने दो। जब खट्टा हो जाय, तब काममे लाओ। इसे "गुड़सूक्त" कहते हैं। इसी तरह ईख और घासका सूक्त बनाते हैं।

(२३२) तुषाम्बु—कच्चे जौ भूनकर किसी बासनमे रक्खो, ऊपरसे पानी भरकर मुँह बन्द कर दो और मुद्रा दे दो। कुछ दिन बाद काममे लाओ। यही "तुषाम्बु" है।

(२३३) सौवीर—जौओंके छिलके दूर करके, उनको आगपर

पकाओ, फिर उन्हे एक बासनमे भरकर ऊपरसे पानी भर दो। फिर मुँह बन्द करके मुद्रा दे दो और कुछ दिन रक्खा रहने दो। यही "सौवीर" है।

(२३४) कॉजी—कुलथी अथवा चॉवलोको पानी डालकर पका लो। पीछे मॉड निकाल लो। उस मॉडमे सोठ, राई, जीरा, हीग, सेंधानोन, हल्दी प्रभृति डालकर बासनका मुँह बन्द करके मुद्रा दे दो। तीन या चार दिन रक्खा रहने दो। इसीको "कॉजी" कहते है।

कॉजीकी और विधि—पहले मिट्टीके बर्तनको सरसोके तेलसे पोत दो। पीछे उसमे निर्मल जल भर दो। पीछे राई, जीरा, सेधानमक, हीग, सोठ और हल्दी,—इन छहोको पीसकर डाल दो। पीछे चॉवलोका भात मिला हुआ मॉड, कुलथीका काढ़ा और थोड़ेसे बॉसके पत्ते—ये सब भी उसी बर्तनमे डाल दो। पीछे पानीके अन्दाजसे उड़दके दस-पॉच बड़े भी उसमे डाल दो। पीछे बर्तनका मुख बन्द करके, तीन-चार दिन रक्खा रहने दो। जब खट्टी-खट्टी बास आने लगे, समझ लो "कॉजी" तैयार है।

(२३५) सण्डाकी—एक बर्तनमे मूलीको कतर-कतरकर डाल दो और ऊपरसे पानी डाल दो। पीछे हल्दी, हीग, राई, सेधानोन, जीरा और सोठ प्रभृति डालकर बर्तनका मुँह बन्द करके मुद्रा दे दो। तीन-चार दिन रक्खा रहने दो। इसीको "सण्डाकी" कहते है।

(२३६) सप्त धातु—रस, रक्त, मांस आदिको देहका धारक होनेसे जिस तरह धातु कहते है, उसी तरह सोना, चॉदी, ताम्बा, जस्ता, शीशा, रॉगा और फौलाद—इन सातोको भी "धातु" कहते है, क्योकि ये भी बुढ़ापे और कमजोरी आदिका नाश करके देहको धारण करते है।

(२३७) धातु-शोधन—ये सातों धातुएँ पहाड़ोसे पैदा होती है, इसलिये इनमे मैल रहता है। इनके बारीक पत्र करके आगमे बारम्बार तपा-तपाकर तेल, मॉठा, कॉजी, गोमूत्र और कुलथीका काढ़ा—इनमेसे प्रत्येकमे तीन-तीन बार बुझाते है। इस तरह सुवर्ण आदि धातुओका मैल दूर होकर शुद्धि होती है। इसीको "धातु-शोधन" कहते हैं।

शीशा और रॉगा नरम धातु हैं। इसलिये जब यह तपनेसे गल

जावे तब इनको तीन-तीन बार तेल, मॉठा, कॉजी, कुलथी-काथ, गोमूत्र, हल्दी-काथ और आकके दूधमें बुझानेसे शोधन होता है।

(२३८) मारण—पहले धातुका शोधन होता है। वह हम नं० २३७ मे लिख चुके हैं। अब मारण बताते है। चूल्हेमें आग जलाओ। चूल्हेपर मिट्टीका खपरा रक्खो। खपरेपर शुद्ध धातुको डालकर तपाओ। जब गलकर पानी हो जाय, तब धातुसे चौथाई इमलीकी छाल और पीपलकी छालके चूर्णको पास रखकर, गली हुई धातुपर जरा-जरा डालो और लोहेकी कलछीसे चलाते जाओ। इस तरह एक पहर तक करते रहनेसे शीशेकी और दोपहर तक करते रहनेसे रॉगेकी भस्म हो जाती है। यही धातुका "मारण" कहलाता है।

(२३९) भस्म—मारण की हुई धातुकी भस्मको अन्यान्य चीजोंके साथ खरल करके, दो सराइयोंके बीचमे रखकर, सराइयोका मुॅह कपड़-मिट्टीसे बन्द करके, खड्डेमें आरने कण्डे भरकर, उन कण्डोंके बीचमे सराइयोको रखकर आग लगा देते है। ठण्डा होनेपर फिर निकाल लेते है। इसी तरह कई बार करनेसे असल "भस्म" तैयार हो जाती है।

(२४०) निरुत्थ भस्म—जो भस्म घी, शहद, सुहागा, चिरमिटी और गुग्गुल, इन पॉचोके योगसे भी नही जीवे, उसे "निरुत्थ भस्म" कहते है। निरुत्थ भस्म मनुष्यका बुढ़ापा नाश करती, बल बढाती और प्रमेह आदि अनेक रोगोका नाश करती है, किन्तु कच्ची भस्म कोढ़, बवासीर प्रभृति अनेक रोग पैदा करती है।

(२४१) मित्रपंचक—घी, शहद, सुहागा, चिरमिटी और गूगल,—इनको "मित्र-पंचक" कहते है। ये बराबर-बराबर लिये जाते हैं।

(२४२) उपधातु—सोनामक्खी, नीलाथोथा, अभ्रक, सुरमा, मैनसिल, हरताल और खपरिया—ये सात उपधातु है। इनका भी शोधन होता है, यानी इनका भी मैल अलग किया जाता है।

(२४३) गंडूष और कवल—काढ़े वगैरः जो पतले पदार्थ है,

उनसे मुँहको भरकर, उनको मुँहमे रहने दे, पीछे थोड़ी देरमे बाहर निकाल दे, बस यही "गंडूप" या "कुल्ला" है। कल्कादिक पदार्थ यानी दवाओंकी लुगदीको मुँहमे रखकर, इधर-उधर फिरावे और मुखमे रक्खे रहे—इसीको "कवल" कहते है।

(२४४) प्रतिसारण—किसी सूखी, गीली या पतली दवाको उँगलीके पोरुएमे लगाकर, जीभ और सारे मुँहमे लगानेको "प्रतिसारण" कहते है। जैसे;—

कूट, दारुहल्दी, लजालू, पाढ़, कुटकी, मजीठ, हल्दी, नागरमोथा और लोध—इन नौ दवाओंका चूर्ण करके, उँगलीके पोरुएसे जीभ और सारे मुँहमे लगानेसे दाँतोसे खून गिरना, दाँतोका दर्द, दाह (जलन) और सूजन अवश्य आराम हो जाती है। यही प्रतिसारणका उदाहरण है।

(२४५) आलेप—लिप्त, लेप, लेपन और आलेप,—चारो नाम लेपके हैं। मुखके लेप तीन तरहके होते हैं,—(१) दोषघ्न, (२) विषघ्न और (३) वर्ण्य, अर्थात् सूजन, खुजली वगैरःके नाश करनेवालेको "दोषघ्न"; भिलावे, बच्छनाग या किसी कीडेके जहरके नाश करनेवालेको "विषघ्न" और मुँहकी सुन्दरता बढ़ानेवाले तथा मुहाँसे, झाँई, नील प्रभृति नाश करनेवालेको "वर्ण्य" कहते है।

जैसेः—

पुनर्नवा (सोंठ), देवदारु, सोंठ, सफेद सरसों और सहँजनेकी छाल—इन पाँचोको बराबर-बराबर लेकर, काँजीमे सिलपर पीसकर, लेप करनेसे नौ प्रकारकी सूजन नाश हो जाती है। यह नुसखा उत्तम है। अनेक बार इसे रामबाणका काम करते देखा है। (काँजी बनानेकी विधि नं० २३४ परिभाषाके शेषवाली उत्तम है।) यह लेप "दोषघ्न" है, यानी वात, पित्त और कफसे हुई नौ तरहकी सूजनको आराम करता है।

लालचन्दन, मजीठ, लोध, कूट, फूलप्रियंगू, बड़के अंकुर और

मसूर—ये सात चीजे पसारीके यहाँसे बराबर-बराबर लाकर पानीमे पीस लो और मुखपर मला करो, तो आपका मुँह खूबसूरत हो जायगा, मुखपर कान्ति विराजने लगेगी, साथ ही यदि कोई वादीका रोग होगा तो वह भी दूर हो जायगा। यह नुसखा ठीक है। निष्फल न जायगा। आजमाकर देखिये, मगर बहुत दिन तक लेप कीजिये। यह लेप "वर्ण्य" है।

बकरीके दूधमे तिलोको पीसकर, उसमे मक्खन मिलाकर लेप करो, तो भिलावेकी सूजन आराम हो जायगी।

(२४६) शलाका--सलाईको कहते हैं। इससे आँखोमे सुरमा लगाया जाता है। शोधे हुए शीशेको सलाई, विना सुरमेके, फेरनेसे भी अनेक नेत्र-रोग नाश हो जाते है। हम अपनी परीक्षित सलाई बनानेकी विधि बताते हैः—

त्रिफलेका काढ़ा, भाँगरेका रस, सोठका काढा, घी, गोमूत्र, शहद और बकरीका दूध,—इन सातोको पहले तैयार करके रख लो, पीछे एक लोहेके कलछे या मिट्टीके बर्तनमे शीशेको गर्म करो, जब पानी-सा हो जाय, त्रिफलेके काढ़ेमे डाल दो, फिर निकालकर फिर पिघलाओ, पानी-सा हो जानेपर फिर त्रिफलेके काढ़ेमे डाल दो, इस तरह सात बार त्रिफलेके काढ़ेमे डालो। पीछे इसी तरह सात बार भाँगरेके रसमे, फिर सात बार सोठके काढ़ेमे, फिर सात बार घीमे, फिर सात बार गोमूत्रमे, फिर सात बार शहदमें, फिर सात बार बकरीके दूधमे डालो—इस तरह त्रिफलेके काढ़े वगैरः सातो चीजोमे शीशेको सात-सात बार (कुल ४९ बार) बुझानेसे शीशा शुद्ध हो जायगा। उस शुद्ध शीशेकी सलाई बनाकर आँखोमे फेरा करो, तो नेत्रोके सारे रोग धीरे-धीरे आराम हो जायँगे। अगर ऐसी सलाई बनाकर बेची जायँ तो लोगोंको लाभ हो, बेचनेवाला भी खूब कमावे। बाजारू सलाइयाँ अशुद्ध शीशेकी होती है, जो लाभके बदले हानि करती है।

नोट—इस सलाईके आँखोंमें फेरनेसे जब दोष दूर हो जाय, आँखोंसे पानी निकल जाय, तब रोगी क्षण-भर शीतल जलको देखे, पीछे आँखोंको जलसे धोले। जब तक दोष निकल न जावे, आँखोंको जलसे न धोवे।

(२४७) दीपन—जो पदार्थ कच्चेको न पकावे, किन्तु अग्निको प्रदीप्त करे, उसे "दीपन" कहते है। जैसे, सौंफ।

(२४८) पाचन—जो पदार्थ कच्चेको पकाता है, किन्तु अग्निको दीपन नहीं करता है, उसे "पाचन" कहते है। जैसे; नागकेशर।

(२४९) दीपन-पाचन—जो पदार्थ अग्निको दीपन करता है और कच्चेको पचाता भी है, उसे "दीपन-पाचन" कहते है। जैसे, चीता।

(२५०) शमन—जो पदार्थ तीनो दोषोको शुद्ध नही करता, समान दोषोको बढ़ाता नहीं, किन्तु विषम दोषोको सम करता है, वह पदार्थ "शमन" कहाता है। जैसे, गिलोय।

(२५१) अनुलोमन—जो पदार्थ कच्चे वात, पित्त और कफको पकाकर, वायुके बन्धको भेदन करके और नीचे ले जाकर, गुदा द्वारा निकाल देता है, उसे "अनुलोमन" कहते है। जैसे, हरड़।

(२५२) स्रंसन—जो पदार्थ कोठेमें चिपटे हुए पकाने योग्य मल, कफ और पित्तको विना पकाये ही नीचे ले जाय, उसे "स्रंसन" कहते हैं। जैसे, अमलताश।

(२५३) भेदन—जो पदार्थ वातादि दोषोंसे बँधे हुए अथवा न बँधे हुए गाँठोके समान मलमूत्रादिको तोड़-फोड़कर नीचे ले जाकर गुदा द्वारा निकाल दे, उसे "भेदन" कहते है। जैसे, कुटकी।

(२५४) रेचन—जो पदार्थ अधपके अथवा कच्चे मलको पतला करके नीचेको गिरा दे, यानी दस्त करा दे, उसे "रेचन" कहते है। जैसे; निशोथ।

(२५५) वमन—जो पदार्थ कच्चे पित्त, कफ तथा अन्न-समूहको जबर्दस्ती मुँहसे निकाले, वह पदार्थ "वमन" कहाता है। जैसे; मैनफल।

(२५६) संशोधन—जो औषधि स्वस्थानमें संचित मलोको ऊपरकी

ओर ले जाकर मुँह और नाक द्वारा बाहर निकाले अथवा संचित मलको नीचेकी ओर ले जाकर गुदा या लिङ्ग या भग द्वारा बाहर निकाले, उसे "सशोधन" कहते है। जैसे, देवदालीका फल।

(२५७) छेदन--जो पदार्थ आपसमे मिले हुए कफादि दोषोको, अपनी शक्तिसे फोड़कर अलग-अलग कर देवे, उसको "छेदन" कहते है। जैसे, जवाखार, कालीमिर्च और शिलाजीत।

(२५८) ग्राही—जो पदार्थ अग्निको दीपन करता है, कच्चेको पकाता है, गरम होनेकी वजहसे गीलेपनको सुखाता है, वह "ग्राही" कहलाता है। जैसे, सोंठ, जीरा और गजपीपल।

(२५९) स्तम्भन—जो पदार्थ रूखा, शीतल, कसैला और लघुपाकी होनेके कारण, वायुको उल्टा करनेवाला होता है, यानी नीचे जानेवाले पदार्थको नीचे जानेसे रोकता है, उसे "स्तम्भन" कहते है। जैसे, कुड़ा, सोनापाठा।

(२६०) लेखन—जो पदार्थ देहकी धातुओंको अथवा मलको सुखा-कर दुर्बलता करता है, यानी मोटेको पतला करता है, उसे "लेखन" कहते है। जैसे, मधु, उष्णजल, बच और इन्द्रजौ।

(२६१) बाजीकरण—जिस पदार्थके प्रयोगसे स्त्रीके साथ रमण करनेका उत्साह हो, मैथुन-शक्ति बढे, वह द्रव्य "बाजीकरण" कहलाता है। जैसे, असगन्ध, मूसली, चीनी, शतावर, दूध, मिश्री इत्यादि।

बाजीकरण दो तरहका होता है—(१) वीर्यको रोकनेवाला, (२) वीर्यको बढ़ानेवाला। दूध, मिश्री, शतावर आदि वीर्यको बढ़ानेवाले पदार्थ है; अफीम, भाँग, जायफल आदि वीर्यको स्खलित होनेसे रोकनेवाले है।

(२६२) शुक्रल--जिस द्रव्यसे वीर्यकी वृद्धि हो, उसे "शुक्रल" कहते है। जैसे, नागबला, कौंचके बीज इत्यादि।

दूध, उड़द, भिलावेकी मीगी और आमले--ये अपने प्रभावसे, शीघ्र ही रस-रक्त आदिको पैदा करके वीर्य्यको प्रकट करते और वीर्य्यकी अधिकता होनेपर उसकी प्रवृत्ति करते है।

स्त्री वीर्यको निकालनेवाली, कटेरीका फल वीर्य्यको रेचन करनेवाला, जायफल गिरते वीर्य्यको रोकनेवाला और इन्द्रजौ वीर्य्य क्षय करनेवाला है।

(२६३) स्त्री—स्मरण, कीर्त्तन, दर्शन, सम्भाषण, स्पर्श, चुम्बन, आलिङ्गन और मैथुन इन सारी क्रियाओंसे अथवा थोड़ी क्रियाओंसे अथवा एक ही क्रियासे वीर्य्यको निकालनेवाली है।

(२६४) रसायन—जो पदार्थ बुढ़ापे और ज्वर आदि रोगोंका नाश करे, उसे "रसायन" कहते हैं। जैसे, हरड़, दन्ती, गूगल और शिलाजीत।

(२६५) व्यवायि—जो पदार्थ अपक्व यानी कच्चा ही सारी देहमें व्याप्त होकर, पीछे मद्यकी तरह पाक अवस्थाको प्राप्त हो, उसे "व्यवायि" कहते हैं। और चीजे पककर अपना गुण करती है, किन्तु व्यवायि पदार्थ कच्चे ही अपने गुणोंसे सारे शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पकते है। जैसे, भॉग और अफीम।

(२६६) विकाशी—जो पदार्थ सारे शरीरमें रहनेवाले वीर्य्यमेंसे 'ओज' को सुखाकर, शरीरकी सन्धियोंको ढीला करते है, उन्हें विकाशी कहते है। जैसे, सुपारी और कोदों।

(२६७) मादक—जो पदार्थ अधिक तमोगुणवाला और बुद्धिके नाश करनेवाला हो, उसे 'मादक' कहते हैं। जैसे, मदिरा।

(२६८) विष—जो पदार्थ सारे शरीरमें व्याप्त होकर, पीछे पकता है, वीर्य्यमेंसे 'ओज' को सुखाकर शरीरके जोड़ोंको ढीला करता है, जो कफको नाश करता है और नशा लाता है तथा जिसमें अग्निका अंश अधिक होता है, जो प्राणीके प्राणोंको नाश करता है और जिस पदार्थके साथ मिलता है, उसीके गुण ग्रहण कर लेता है, उसे 'विष' कहते हैं। जैसे, वत्सनाभ।

(२६९) प्रमाथी—जो पदार्थ अपने बलसे स्रोतोंमेंसे दोषोंको निकाल देता है, उसे "प्रमाथी" कहते हैं। जैसे, मिर्च और बच।

(२७०) अभिष्यन्दी--जो पदार्थ रेशेवाला, कफकारी और भारी होनेके कारण रस बहानेवाली शिराओंको रोककर शरीरमे भारीपन करता है, उसे 'अभिष्यन्दी' कहते है। जैसे, दही।

(२७१) विदाही—जिस पदार्थके खानेसे खट्टी-खट्टी डकारे आवे, प्यास लगे, हृदयमे जलन हो, उसे "विदाही" कहते हैं। ऐसी चीज देरमे पचती है।

(२७२) योगवाही—जो पदार्थ अपने साथ मिले हुए द्रव्योके गुण ग्रहण करे, उसे 'योगवाही' कहते है। जैसे, शहद, घी. तेल, पारा और लोहा आदि।

(२७३) हलका—जो पदार्थ अत्यन्त पथ्य, कफनाशक और शीघ्र पचनेवाला हो, उसे 'हलका' या 'लघु' कहते है।

(२७४) भारी--जो पदार्थ भारी हो, वातनाशक हो, पुष्टिकारक हो, कफकारी और देरसे पचनेवाला हो, उसे 'भारी' या 'गुरु' कहते है।

(२७५) स्निग्ध—जो पदार्थ वातनाशक, वीर्य्यवर्द्धक, कफकारक और बलवर्द्धक होते है, उन्हे "स्निग्ध" कहते है। स्निग्धका अर्थ चिकना है।

(२७६) रुक्ष--रुक्षका अर्थ रूखा है। रूखे पदार्थ वायुको बढ़ाने-वाले और कफको नाश करनेवाले होते है।

(२७७) तीक्ष्ण--तीक्ष्ण पदार्थ पित्तकारक, रस-रक्तादि धातुओंको सुखानेवाले, कफ तथा बादीको नाश करनेवाले होते है।

(२७८) श्लक्ष्ण—इसका अर्थ छोटा, पतला और चिकना या तेलिया है। जो पदार्थ स्नेह-युक्त न होनेपर भी तथा कठिन होनेपर भी चिकना हो, उसे 'श्लक्ष्ण' कहते है।

(२७९) स्थिर--जो पदार्थ वायु और मलको रोकनेवाला हो, उसे 'स्थिर' कहते है।

(२८०) सर--जो पदार्थ वायु और मलको प्रवृत्त करनेवाला हो, उसे 'सर' कहते है। सरका अर्थ यहाँ दस्तावर है। इस शब्दके मलाई, झील, तालाब, सरकना आदि बहुतसे अर्थ होते है। "सर"

शब्द "स्थिर" का उल्टा है। "सर" दस्तावरको कहते हैं, 'स्थिर' काबिजको कहते हैं।

(२८१) पिच्छिल—जो पदार्थ रेशेवाला, बलकारी, जोड़नेवाला, कफकारी और भारी होता है उसे पिच्छिल' कहते हैं।

(२८२) विशद—गीलेको सुखानेवाले और घाव भरनेवाले पदार्थको 'विशद" कहते हैं।

(२८३) शीत—इसका अर्थ शीतल है। जो पदार्थ सुखकारक, रक्तकी अति प्रवृत्तिको रोकनेवाला, मूर्च्छा, दाह प्यास और पसीनेको रोकनेवाला हो उसे शीत' कहते हैं। जिस पदार्थमें 'शीत' गुण होता है यानी जो ठण्डा होता है उससे मूर्च्छा प्यास दाह वगैरःमे लाभ अवश्य होता है।

(२८४) उष्ण—इसका अर्थ गर्म है। यह शीतका उल्टा है। जो पदार्थ गर्म और पाचक होता है, उसे उष्ण" कहते हैं।

(२८५) मृदु—इसका अर्थ नर्म या मुलायम है। पदार्थमें मृदुता एक गुण होता है।

(२८६) कर्कश—इसका अर्थ कठोर है। पदार्थमें कठोरता एक गुण होता है।

(२८७) स्थूल—इसका अर्थ मोटा है। जो पदार्थ शरीरको मोटा करता है और स्रोतो (छेदो) को रोकता है, उसे स्थूल" कहते हैं।

(२८८) सूक्ष्म—इसका अर्थ छोटा बारीक, न दिखाई देनेवाला आदि बहुतसे हैं। शरीरके सूक्ष्म (अत्यन्त छोटे-छोटे) छेदोमे तेल आदि जिस गुणसे भीतर घुस जाते है उसे सूक्ष्म" कहते हैं।

(२८९) द्रव—इसका अर्थ पानी-जैसा पतला है। जो पदार्थ गीला करनेवाला और व्यापक होता है उसे "द्रव" कहते हैं।

(२९०) शुष्क—इसका अर्थ सूखा है। यह द्रवका उल्टा है। द्रव गीलेको कहते हैं और शुष्क सूखेको कहते हैं। पदार्थमें गीलापन,

सूखापन आदि गुण होते है । जो पदार्थ सूखा होता है और व्यापक नही होता, उसे "शुष्क" कहते है ।

(२६१) आशु—जिस पदार्थमे आशु गुण होता है, वह शरीरमे फैल जाता है, यानी जो पदार्थ पानीमे तेलकी तरह शरीरमे फैल जाता है, उसे "आशु" कहते है ।

(२६२) मन्द—जो सब कामोमे शिथिल और अल्प होता है, उसे "मन्द" कहते है ।

नोट—न० २७३ "हलका" से लेकर ऊपर २६२ "मन्द" तक जो शब्द लिखे हैं, ये गिन्तीमे बीस हैं, यही बीस गुण द्रव्यों 'पदार्थों' मे होते हैं । सुश्रुतने पदार्थोंमे जो बीस गुण बताये है, उनको हमने विद्यार्थियोंकी समझमे सुगमतासे आनेके लिये उलट कर लिख दिया है ।

याद रक्खो, हलकापन आकाशका, भारीपन पृथ्वीका, चिकनापन जलका, 'रूखापन' वायुका और तीक्ष्णता अग्निका गुण है ।

ध्यानमे धर लो, जो पदार्थ हलका होगा, जल्दी पचेगा और जो भारी होगा, देरमे पचेगा । जो पदार्थ भारी और चिकना होगा, वह कफकारक अवश्य होगा, जो कफकारक और भारी होगा वह बल, वीर्य बढानेवाला और वादीको नाश करनेवाला होगा । इसीसे प्रायः सभी बल वढ़ानेवाली चीजे बहुधा भारी और देरमे पचनेवाली होती है ।

रूखी चीजें वादीको बढ़ाती है, किन्तु कफको नाश करती है । चिकनी चीजें कफको वढ़ाती और वादीको नाश करती है । गर्म चीजें पित्तको वढ़ाती और कफ तथा वादीको नाश करती है ।

ऊपर जो हमने पॉच गुणोका सार लिखा है, उसे अच्छी तरह समझकर माथेमें जमा लो । चिकित्सामे इससे वड़ी आसानी पड़ती है । पर इस बातका भी ध्यान रक्खो, कि ये साधारण नियम है, इनके विपरीत भी कही-कही होता है ।

(२६३) मधुर—मधुरका अर्थ मीठा है । यह एक रस है । छहों रसोमे मीठा रस उत्तम है । इसकी पैदायश पृथ्वी और जलसे है । पृथ्वीका गुण भारीपन और जलका चिकनापन है, इसलिये

मधुर रस भी भारी और चिकना होता है। यह रस शीतल है। इससे वात और पित्तका नाश होता है।

(२९४) अम्ल—अम्लका अर्थ खट्टा है। इसकी उत्पत्ति पृथ्वी और अग्निसे है। यह रस वात नाशक है, किन्तु पित्त और कफको बढ़ानेवाला है। यह गरम है।

(२९५) क्षार—क्षारका अर्थ खारी है। इसकी पैदायश जल और अग्निसे है। यह रस कफ तथा पित्तको करनेवाला और वातको नाश करनेवाला है।

(२९६) कटु—कटुका अर्थ चरपरा है। इसकी पैदायश आकाश और वायुसे है। यह रस वात-पित्तको बढ़ानेवाला और कफको हरनेवाला है। यह गरम है।

(२९७) तिक्त—इसका अर्थ कड़वा है। इसकी पैदायश वायु और अग्निसे है। यह रस वातकारक और पित्त-कफनाशक है। यह शीतल है।

(२९८) कषाय—इसका अर्थ कसैला है। इसकी उत्पत्ति वायु और पृथ्वीसे है। यह रस वायुको कुपित करनेवाला और कफ, रुधिर और पित्तको हरनेवाला है। यह शीतल है।

(२९९) वीर्य—वीर्य बहुधा द्रव्यके आश्रय रहता है और दो तरहका होता है:—(१) शीतल, और (२) गरम।

(३००) विपाक—जठराग्निके संयोगसे पचनेपर छहो रसोंका जो परिणाम होता है, उसे "विपाक" कहते है। विपाक तीन तरहका होता है:— मीठे और खारी रसका पाक मीठा होता है, खट्टे रसका पाक खट्टा होता है, कसैले, कडवे और चरपरे रसका पाक बहुधा तीक्ष्ण या चरपरा होता है।

इन तीनो तरहके पाकोंसे तीन दोष उत्पन्न होते है। मधुर पाकसे कफ, खट्टेसे पित्त और चरपरेसे वायु उत्पन्न होती है।

(३०१) प्रभाव—द्रव्यकी शक्तिको "प्रभाव" कहते है। जो काम रस, गुण, वीर्य और विपाकसे नही होते वह शक्ति या प्रभावसे होते है। जैसे:—खैर कोढ़का नाश करता है। यह इसकी विलक्षण शक्ति है।

नोट—रस, गुण और वीर्य आदिके सम्बन्धमे हम आगे विस्तारसे लिखेगे।

इस चित्रमे फेफड़े दिखाये गये है, इनका स्थान छाती है, यानी ये छातीमे रहते है। अँगरेजीमे इनको 'लंगूज" (Lungs) और अरबीमें इनको "रिया"कहते है। ये गिन्तीमे दो होते है। एकको दाहिना फुस-फुस और दूसरेको बायॉ कहते है। हम लोगोके फेंफड़ोका वजन करीब-करीब दो पौण्ड या एक सेर होता है। पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियोके फेंफड़ोका वजन कुछ कम होता है। इनमे हवा भरी रहती है। यों तो यकृत तिल्ली प्रभृति भी .खूनके साफ करनेमे मदद देते है, किन्तु फेंफड़े, गुर्दे और चमड़ा—ये .खूनको साफ करनेमे मुख्य है।

इस चित्रमे जहॉ "ख" अक्षर लिखा है, वह हवाकी प्रधान नली है। इसे श्वास-नली कहते है। नाकके छेदोसे फेफडो तक हवाके आने-जानेकी यही राह है। फेफड़ोमे हवाके पहुँचते ही उसे वहॉ अनेक नालियॉ मिल जाती है। इन्ही नालियोके द्वारा हवा फेफड़ोके सब भागोमे पहुॅच जाती है। फेफड़ोमे हवाकी कोई १७।१८ करोड़ कोठरियॉ है। आप दाहिनी ओरके फेफड़ेमें वृक्षकी शाखाओकी तरह फैली हुई चीजोंको देखिये।

फेंफडोके कोने-कोनेमे हवाका भरा रहना ही अच्छा है। इसलिये जो लोग खूब औडा सॉस लेते है, उनके फेफड़ोमे हवा भरी रहती है, हलके सॉस लेनेसे उनमे हवाकी कमी रहती है। फेफड़ोमे हवा भरी रहती है, इसीसे ये पानीसे हलके होते और पानी पर तैर सकते है। जब इनके किसी हिस्सेमे दोष हो जाता है, तब वह हिस्सा हवा न होनेसे पोला नही रहता। क्षय-तपेदिक प्रभृति रोगोमे फेफड़ोके जो भाग ठोस हो जाते है, वे जलपर तैर नहीं सकते।

चित्र नं० १

फुफ्फुस और हृदय।
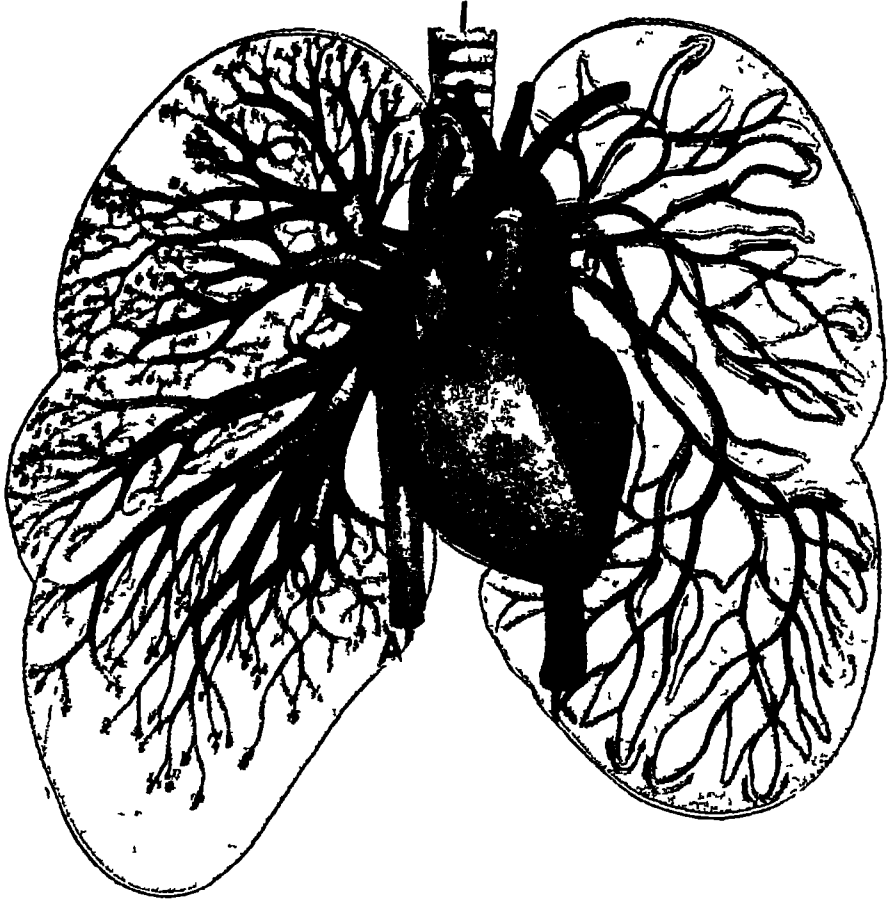
दोनों फेफड़ों को देखिये। दाहिना फेफड़ा बाये से बड़ा है। बीच मे नीला और लाल (D और J) हृदय है "ख" जहाँ लिखा है, वह श्वास-नलिका है। इसके पीछे रबड़ के समान खाने की नली है, जो कण्ठ से मलाशय तक चली गई है। इस नली से खाना आमाशय मे, फिर वहाँ से आँतों में जाता है। आँतों से मल मलाशय में और सार पदार्थ रस रसवाहिनी नाड़ियों मे चला जाता है। 'क" जहाँ लिखा है, वह बृहत धमनी है। इसमे होकर खून सारे शरीर मे चक्कर लगाता है।

हवाका फेंफड़ोमे जाना और वहाँसे बाहर आना ही श्वास लेना है। जब मनुष्य साँस लेता है, यानी नाकके छेदों द्वारा हवा भीतर जाती है, तब छाती वड़ी हो जाती है और जब मनुष्य साँस छोड़ता है यानी जब हवा भीतरसे बाहर आती है, तब छाती पहले जितनी ही हो जाती है। साँसके एक बार भीतर जाने और बाहर आनेको एक साँस कहते है।

तन्दुरुस्त आदमी १ मिनिटमे १५।२० साँस लेता है। बालक अधिक साँस लेता है। हालका पैदा हुआ बच्चा एक मिनिटमे प्रायः ४५ साँस लेता है। पाँच सालका बालक प्रायः २५ साँस लेता है। कह आये है, कि स्वस्थ मनुष्य एक मिनिटमे १५।२० साँस लेता है, पर भागते हुए, स्त्री-संगम करते हुए, कसरत या और कोई मिहनत करते समय साँसोकी संख्या मामूलीसे जियादा हो जाती है। बीमारीकी हालतमे अथवा अफीम प्रभृतिके जहर चढ़नेकी दशामे, साँसोकी संख्या कम हो जाती है, पर ज्वरकी हालतमे साँस जल्दी-जल्दी चलने लगता है।

जो हवा साँस द्वारा फेफड़ोमे जाती है, वही खूनको साफ करती है। इसलिए मनुष्यको सदा साफ हवामे रहना चाहिये। फेफड़े साफ हवाको खीचते है और उससे शरीरकी जान—खूनको साफ करते हैं तथा बाहर आनेवाले साँस द्वारा जहरीले पदार्थोको बाहर निकाल देते है। न्यूमोनिया या क्षय रोग अथवा थाइसिसमे जब फेफड़े खराब हो जाते है, तब बड़ी कठिनता होती है।

आप जो इस चित्रमे नीली और लाल दो तरहकी नालियाँ देखते है, आपके मनमे सवाल उठता होगा, कि ये दो रङ्गकी नालियाँ कैसी है? सुनिये,—शरीरका ख़ून नालियोमे ही रहता है। ये नालियाँ दो तरहकी होती है:—(१) धमनी, (२) शिरा। धमनियाँ शिराओसे मोटी होती है और इनमे साफ खून रहता है। शिराये पतली होती हैं और इनमे मैला ख़ून रहता है। फेंफड़ोंके बाये हिस्सेमे जो नीली-नीली नालियाँ है वे शिराये है, उनमे मैला ख़ून रहता है। दूसरी जो लाल-लाल है, वे धमनियाँ हैं, उनमे साफ ख़ून रहता है।

चित्र न०-२

मस्तिष्क और वात-नाड़ियोंका वर्णन

मनुष्य-शरीरमे मस्तिष्क सार और मुख्य अंग है। यह कपालमे रहता है। यह आठ हड्डियोसे वना एक कोठा है। इस कोठेके अन्दर जो चीज है, वही मस्तिष्क है। कपालकी पेंदीमें एक बड़ा छेद होता है। इसी स्थानपर एक नली आ मिली है। इस नलीको Spinal cord या कशेरुल नली कहते है। इस नलीके भीतर एक और नली रहती है, उसे सुषुम्ना नाड़ी कहते है। यह मस्तिष्कके नीचेके हिस्सेसे मिली हुई है।

मस्तिष्क अण्डेकी-सी शकलका होता है। स्त्रियोके मस्तिष्कसे पुरुषोका मस्तिष्क कुछ अधिक वजनी होता है। यह तोलमें कोई सवा सेरके करीव होता है। मस्तिष्क और सुषुम्नासे निकलकर अनेको नाड़ियाँ सारे शरीरमें फैली हुई है।

मस्तिष्क दो होते है--(१) बड़ा, और (२) छोटा। इनके काम भी अलग-अलग है।

भारतवर्षकी राजधानी दिल्ली है। दिल्लीसे तारोकी मुख्य लाइन चलती है और उससे सारे भारतवर्षके नगरोके तारोका सम्बन्ध है। भारतके किसी भी नगरमे जो कोई बुरा-भला काम होता है, उसकी खबर उन तारो द्वारा दिल्ली पहुँच जाती है और फिर दिल्लीसे जो आज्ञा जारी होती है, वह सव नगरोमे पहुँच जाती है। जिस तरह दिल्ली सारे भारतकी तार-लाइनसे सम्बन्ध रखती है और वहींसे सव तरहका हुक्म होता है और वहीं सवकी शिकायत पहुँचती है, उसी तरह मानव देहमे मस्तिष्क मुख्य स्थान है, जहाँसे सारे शरीरको आज्ञायें निकलती हैं और जहाँ सारे अङ्ग-प्रत्यंगोके दुःख-सुखकी खबरे पहुँचती हैं। मतलव यह है, कि शरीरमे जो नाड़ी-जाल है, वह तारोंके जालकी

चित्र नं० २
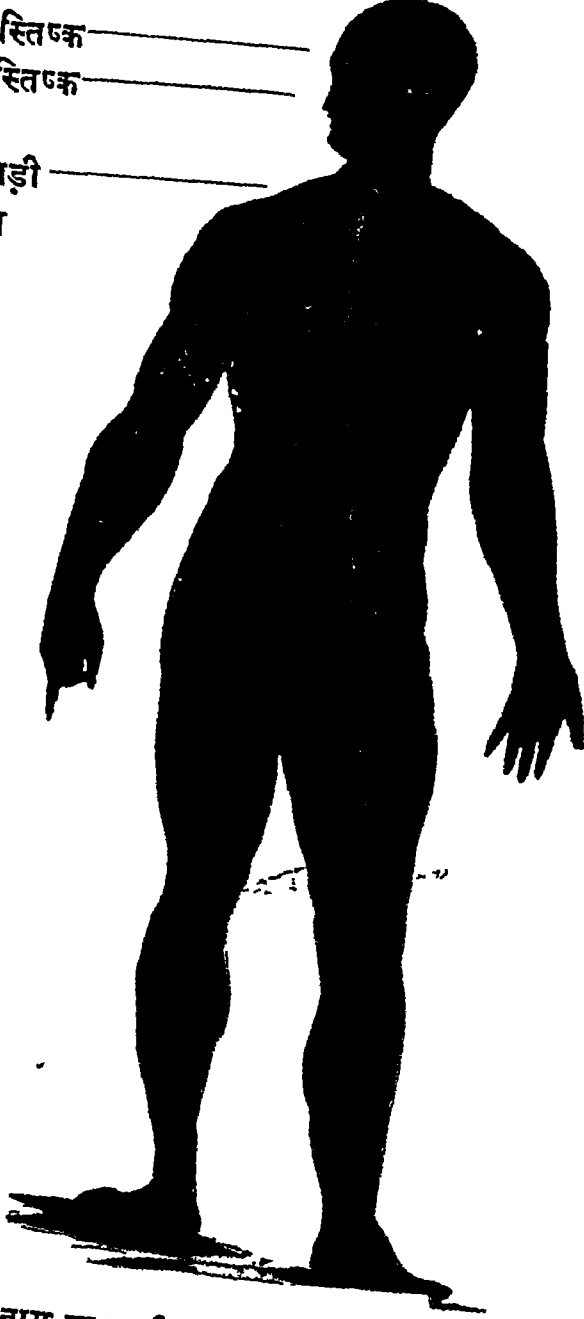
स्नायु या नाड़ीजाल दिखानेवाला चित्र ।

तरह है। अगर मौसममे भी जरासा फेरफार होता है, तो शरीरकी तारबरकी फौरन मस्तिष्कको खबर देती है।

सुषुम्ना नाड़ी इस शरीरकी मुख्य तारकी लाइन है, जो मस्तिष्कसे चलती है। इससे फिर और-और तरफोंको लाइने निकली है। इसीमे होकर खबरे आया और जाया करती हैं। मस्तिष्कसे ही इच्छा, विचार, बुद्धि, ज्ञान, अनुभव और संचालन-क्रिया होती है। जब मस्तिष्क बिगड़ जाता है, तब कोई इन्द्रिय काम नहीं करती। मस्तिष्क बिना शरीरकी रक्षा नहीं है। जिस तरह अच्छा राजा प्रजाकी रक्षा करता है, उसी तरह मस्तिष्क शरीरकी रक्षा करता है। मान लो—आपके पाँवमे बिच्छू काटना चाहे। बिच्छूके पास आते ही वह खबर नाड़ी रूपी तारबरकी द्वारा मस्तिष्कमे पहुँचेगी। खबर पहुँचते ही वहाँसे हुक्म आवेगा—पैर हटा लो। खबर पाते ही आप पैर हटा लेगे और तकलीफसे बच जायेंगे। इसी तरह दुःख-सुख, गरमी-सर्दी सभी बातोंकी खबर, मस्तिष्क-रूपी राजधानीमे, नाड़ी-जाल रूपी तारों द्वारा पहुँचती है और वहाँसे हर बातका यथोचित उत्तर आता है। इससे सिद्ध हुआ कि, मस्तिष्क प्रधान अङ्ग है। उसमे बिगाड़ होनेसे शरीरकी खैर नहीं। इस मस्तिष्कमे ही आत्मा या मन रहता है। जब मनको जरा भी कष्टकी सम्भावना होती है, तब मस्तिष्क शीघ्र ही उस दुःखदायी खबरको शरीरके प्रत्येक अङ्गके पास पहुँचा देता है। पीछे सभी अङ्ग मिलकर दुःख निवारणकी कोशिशे करते है। बाज-बाज मौकों-पर जब कोई भयानक शोकप्रद घटना होती है, तब मन ऐसे विचारोमे डूब जाता है कि, वह सब वैद्युतिक शक्तिको खर्च कर डालता है। जब अपने पासकी शक्ति खर्च हो जाती है, तब अपने नीचेवालोकी शक्तिको भी खीचकर खर्च कर देता है। जब कुछ नहीं रहता, दीवालिया हो जाता है, सारा खजाना खाली हो जाता है, तब अक्सर मृत्यु हो जाती है। मस्तिष्कका इतना प्रभाव है कि यदि सिरमे कोई तकलीफ हुई कि भूख बन्द हो जायगी अथवा और कोई रोग हो जायगा। देखते हैं,

कि हमे घण्टे भर पहले ऐसी भूख लग रही थी कि, भूखके मारे घबराये जाते थे। हम खानेको जाने ही वाले थे कि, हमारे उठते-उठते एक बड़ी भारी दुःखदायी ख़बर आ गई। उसे सुनते ही हमारी भूख न जाने कहाँ चली गई। इन सब बातोंसे साफ जाहिर है कि, चित्त और मस्तिष्कका हृदय और फेफड़ोपर बड़ा प्रभाव है। चित्तपर बुरा प्रभाव होनेसे मनुष्यका दिल धड़कने लगता है और मनुष्य बेहोश हो जाता है। नाजुक-मिजाजोकी तो मृत्यु तक हो जाती है।

मिस्टर इलियट वारबर्टन महोदय लिखते है कि, एक हाजीको राहमे महामारी मिली। उन्होने कहा—"तुम बड़ी दुष्टा हो, जो कैरोके इतने मनुष्योको हड़प गई!" महामारीने कहा—"अरे भाई क्या बकते हो? हाँ, उस नगरके २० हजार आदमी मर गये, पर मेरे हाथोसे तो कोई दो हज़ार ही मरे है। शेष सब तो मेरे साथी "भय" के मारे मरे है।"

हृदयका वर्णन।

जहाँ अङ्गरेजीके D और J अक्षर लिखे है, वह हृदय या दिल है। इसके भी दो भाग है। जहाँ D लिखा है, वह नीला है और जहाँ J लिखा है, वह लाल है। हृदय दोनों फेफड़ोंके बीचमे रहता है।

मनुष्य-शरीरमे .खून सदा चक्कर लगाया करता है। हृदयमे होकर .खून आता और जाता है, इसीसे यह सिकुड़ता और फैलता है। हृदयका फड़कना आपको छातीपर हाथ लगानेसे मालूम हो सकता है।

हृदयमे कोठे होते है। उनमे किवाड़ होते है। जब एक कोठेमे नालियो द्वारा .खून आता है, तब वह .खूनसे भरकर सिकुड़ता है और .खूनको दूसरे कोठोमे निकालकर फिर फैलता है। पिछले कोठेका .खून पहलेमे नही जा सकता, क्योकि उसके बाहर आते ही द्वार बन्द हो जाता है। तब वह .खून बड़ी धमनीमे (बड़ी धमनी वह है जहाँ "क" लिखा है)

चला जाता है। बड़ी धमनीमेसे अनेक शाखायें निकली है। उनमे होकर .खून सारे शरीरमे फैल जाता है।

इस तरह .खूनके आने और जानेके कारण हृदय सिकुड़ता और फैलता रहता है। हृदयका यह काम जिन्दगी-भर चलता रहता है, इसलिए हृदयका कोई भी कोठा .खूनसे खाली नही रहता। कहते है, हृदय एक मिनिटमे कोई ७२ बार .खूनको लेता है और उतने ही बार निकालता है। जब हृदय फैलता है, उसमे .खून आता है और जब वह सिकुड़ता है, .खून बाहर जाता है। हृदयके फैलने और सिकुड़नेसे एक प्रकारका शब्द होता है, जो मनुष्यके बाये स्तनसे नीचे, कान लगाकर सुननेसे, साफ सुनाई देता है।

बचपनमें हृदय जल्दी-जल्दी धड़कता है। ज्यो-ज्यो बालक बड़ा होता जाता है, धड़कन कम होती जाती है। मध्य अवस्थावाले पुरुषका हृदय एक मिनिटमे प्रायः ७०।७५ बार धड़कता है। जन्मे हुए बालकका प्रायः १४०।१४४ बार धड़कता है। अनेक रोगो या मानसिक विकारोके कारण हृदयकी धड़कन कम और जियादा भी हो जाती है, .खुशीकी ख़बरसे अथवा स्त्री-प्रसंगकी इच्छासे हृदयकी धड़कन तेज हो जाती है। बुरी ख़बर सुननेसे धड़कन कम हो जाती है।

नाड़ीकी चाल हृदयकी धड़कनपर ही निर्भर है। वैद्य लोग अँगूठेके मूलकी धमनियोको, कलाईके ऊपर, अपनी अँगुलियोसे दबाकर नाड़ी देखते है। इन धमनी नाड़ियोका सम्बन्ध हृदयसे है। यह बात आप चित्र नं० ३ को देखनेसे सहजमे समझ जायेगे।

आप चित्रके दाहिने हाथकी धमनी नाड़ियोको देखिये। इन धमनियोका सम्बन्ध प्रधान धमनीसे है। प्रधान धमनी और उसकी शाखा-धमनियाँ .खूनके कारण फैला और सिकुड़ा करती है, इसीसे नाड़ीमे फड़कन होती है। इस फड़कनके देखनेको ही नाड़ी देखना कहते है। डाक्टरोके मतानुसार नाड़ीसे विशेषकर दिल और धमनियोके रोग ही जाने जा सकते है।

इस चित्रमें छातीकी जगह दोनो ओर बारह-बारह पसलियाँ हैं। हृदयके सम्बन्धमे पीछे पृष्ठ ड और च मे लिख आये है। जहाँ "क" और "क" लिखे है, ये दोनो वृक्क या गुर्दे है। इनमे मूत्र तैयार होता है। यहाँसे मूत्र दो नालियो द्वारा मूत्राशय या मूत्रकी थैलीमे जाता है। यह मूत्रकी थैली गेंदकी तरह गोल है और वहाँ "ख" लिखा है। इस मूत्रकी थैलीके पीछे ही मलाशय यानी मलकी थैली है।

इस चित्रके (इस चित्र नं० ३ को इस पुस्तकके २१२ और २१३ पृष्ठोंके बीचमे देखिये) दाहिने हाथ या अपने बाये हाथके सामनेके हाथकी धमनी नाड़ियोको देखिये। इन नाड़ियोंका सम्बन्ध हृदयके पासवाली वृहत् धमनी या प्रधान धमनीसे है। ख़ूनके आवागमनके कारण हृदय फैलता और सिकुड़ता है। हृदयसे खून बड़ी धमनीमे जाता है। बड़ी धमनीसे और धमनियोमे जाता है। खूनके कारणसे वह धमनियाँ फैलती और सिकुडती है। उनमे तरङ्गसी उठती है, इससे नाड़ियोमे फड़कन या स्पन्दन होता है। इस फड़कनको ही "नाड़ी चलना" कहते हैं। समझ लीजिये, इन नाड़ियोंके फड़कनेका कारण हृदयका फड़कना या स्पन्दन है।

ऐसा होता है, कि नाड़ीका फड़कना बन्द हो जाता है, नाड़ी कोहनीपर भी नहीं मिलती, किन्तु हृदय फड़कता रहता है। हैज़ेमे बहुधा ऐसा होता है कि नाड़ी गतिहीन हो जाती है, हाथ-पॉव शीतल हो जाते है। उस समय उपाय करनेसे नाड़ी फिर भी आ जाती है। रोगी बच जाता है। विषगर्भ तैलमें तारपीनका तेल मिलाकर मालिश
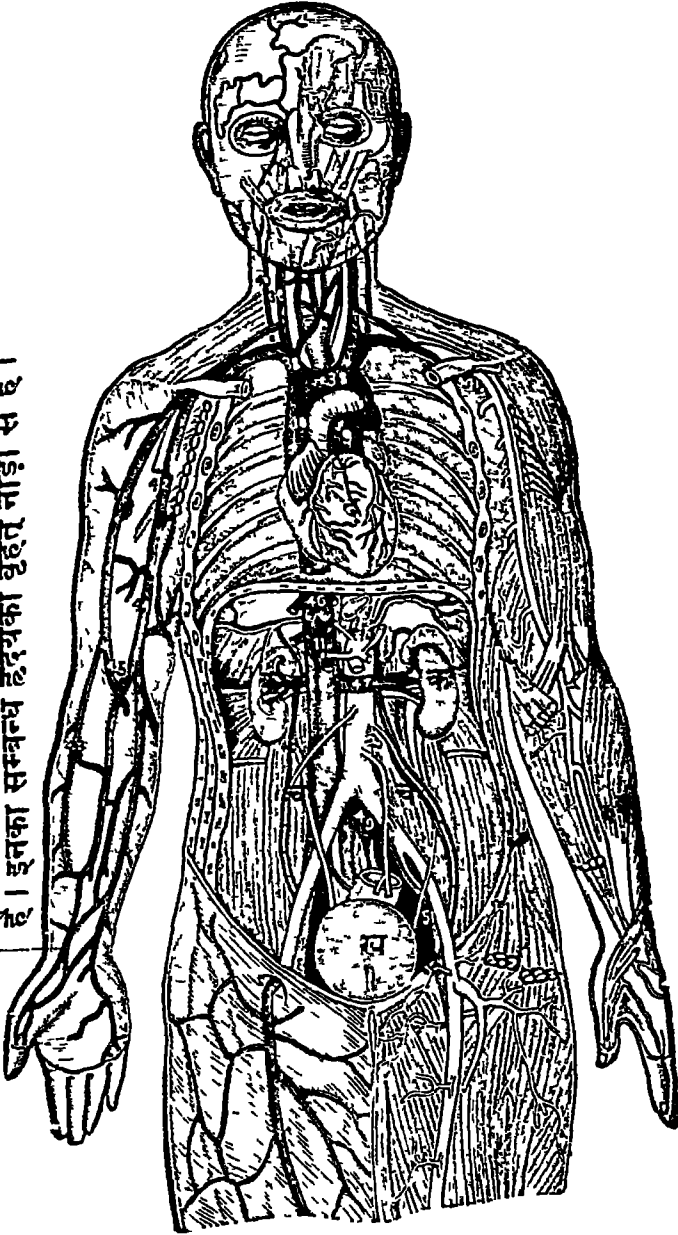
चित्र नं० २

ट—यह दिल या हृदय है।

क—क—ये दोनों गुर्दे या मूत्रयन्त्र हैं। इन दोनोंसे दो नालियाँ मूत्रकी थैली तक गई हैं। इन्हींमें होकर मूत्र मूत्रकी थैलीमें जमा होता है। इन दोनों नसोंके पास च—च लिखे हैं।

ख—यह मूत्रकी थैली है। इसके पीछे मलाशय है।

चित्र नं० ४
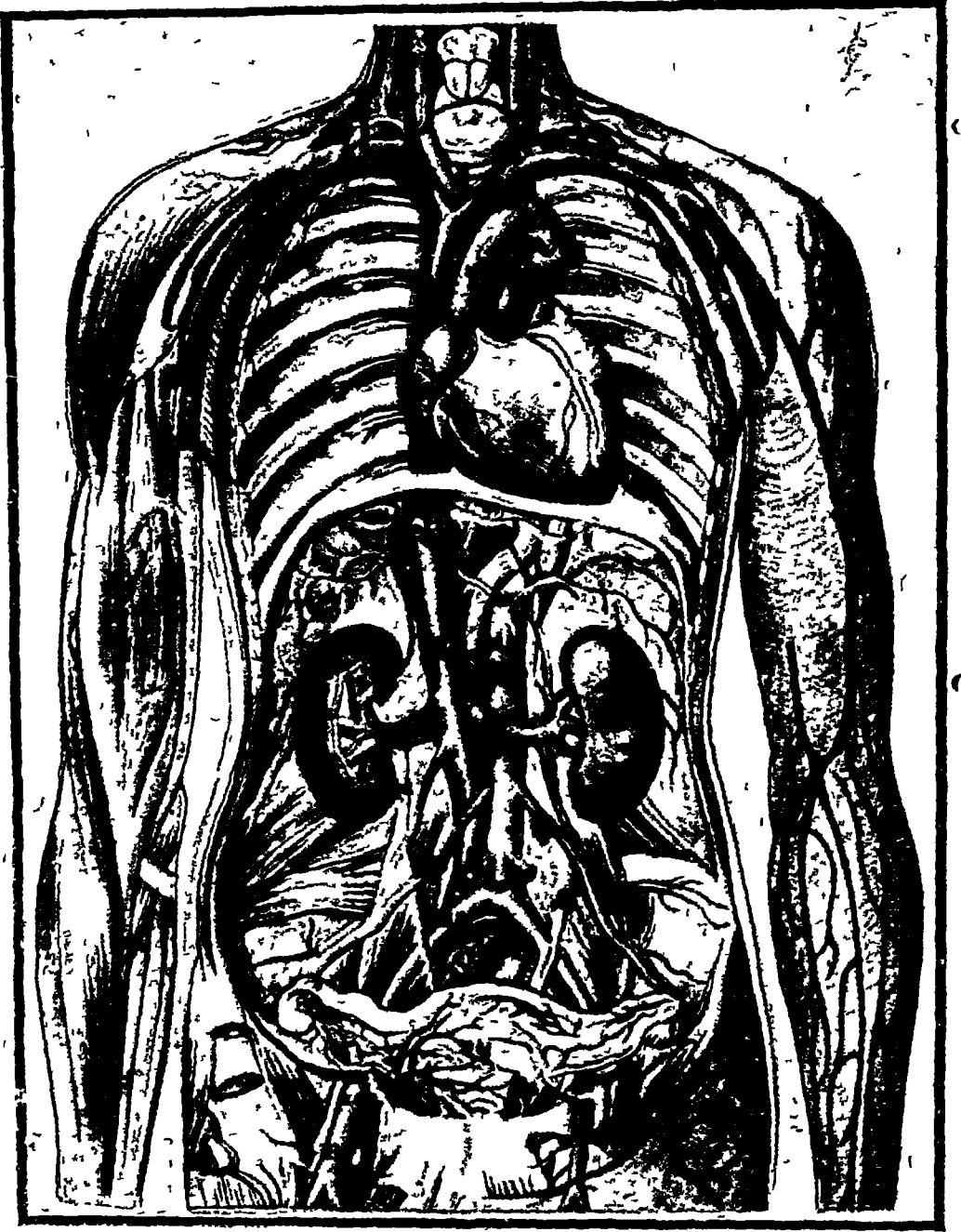
नं० २।२—हृदय या दिल ।
नं० ६—ख़राब या मैले ख़ूनकी शिरा ।
नं० ५—साफ़ ख़ूनकी बड़ी धमनी ।
नं० २०—दोनों गुर्दे या वृक्क ।
नं० २५—गर्भाशय ।

चित्र नं० ५
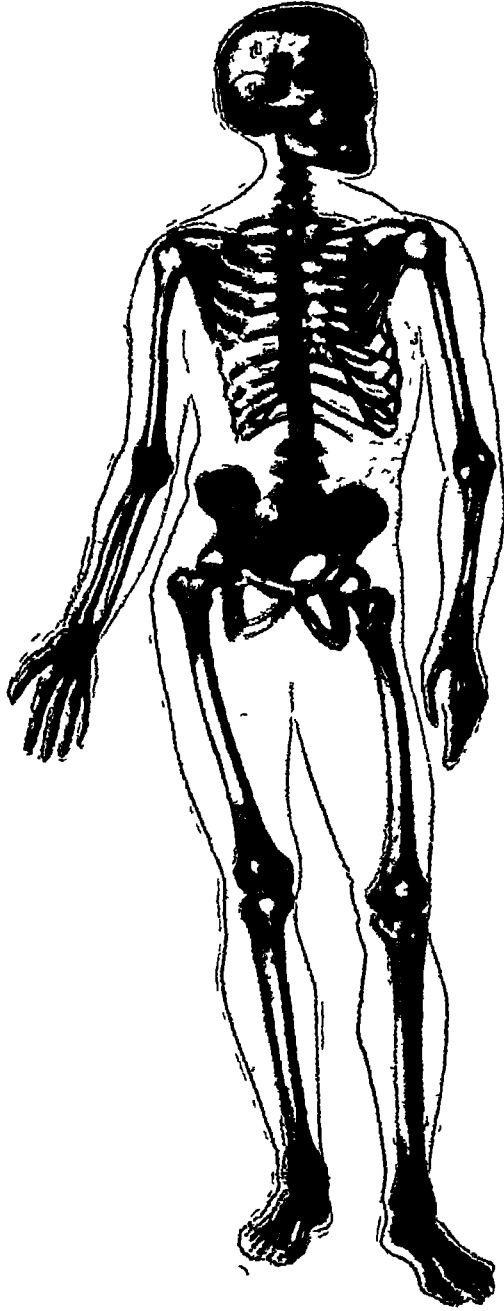
नरकङ्काल या अस्थिपञ्जर।

शरीरका दारमदार इस अस्थिपञ्जरपर ही है। वैद्यक मतसे शरीरमें ३०० हड्डियाँ हैं, किन्तु डाक्टर कोई २४६ बताते हैं।

करने तथा और भी कई उपाय करनेसे हम नाड़ीको चलानेमे कामयाब हुए है, रोगी बच गये है, किन्तु हृदयका फड़कना बन्द हो जानेपर कोई उपाय काम नही देता ।

सूचना

नं० ४ और नं० ५ चित्रोंके सम्बन्धमे हम विस्तार-पूर्वक नहीं लिख सके। फिर भी इनके देखने मात्रसे बुद्धिमान बहुत कुछ लाभ उठा सकते है ।

चित्रोंके सम्बन्धमे जो कुछ हमने लिखा है, उसके लिखनेमे हमें हमारे एक मित्र भूतपूर्व सिविल सर्जन निज़ाम हैदराबाद एवं डिमान्स्ट्रेटर आव् एनाटोमी कलकत्ता नेशनल कालेज, श्रीमान् डाक्टर कार्त्तिकचन्द्र दत्त एल० एम० एस० महोदयसे तथा अमेरिकाके डाक्टर फुट (Foote) की Cyclopedia of Popular Medical Social and Sexual Science नाम्नी पुस्तकसे बहुत कुछ सहायता मिली है, अतएव हम अपने मित्र डाक्टर साहब मजकूरके और उपरोक्त पुस्तकके लेखक डाक्टर फुट महोदयके अतीव आभारी हैं । —लेखक

मनुष्य-शरीरका वर्णन ।

शरीरके मसाले ।

मनुष्य-शरीर निम्नलिखित चीजोंके योगसे बना हुआ है:—

१—सात कला

२—सात आशय

३—सात धातु

४—सात धातु-मल

५—सात उपधातु

६—सात त्वचा

७—तीन दोष

८—नौ सौ स्नायु (नाडी)

९—दो सौ दस नाडी-सन्धि

१०—दो सौ हड्डियाँ

११—एक सौ सात मर्मस्थान

१२—सात सौ शिरायें

१३—चौबीस रसवाहिनी धमनी-नाड़ियाँ

१४—पाँच सौ मांसपेशी (स्त्रियोंके ५२० हैं)

१५—सोलह कण्डरा (बड़े स्नायु)

१६—दश छेद (स्त्रीकी देहमें १२ छिद्र हैं)

सात कला ।

१—मासधरा

२—रक्तधरा

३—मेदधरा

४—कफधरा

५—पुरीपधरा

६—पित्तधरा

७—रेतोधरा

पहली कला—मांसको धारण करती है, इसलिए उसे "मांसधरा कला" कहते हैं।

दूसरी कला—रक्तको धारण करती है, इसलिए उसे "रक्तधरा" कहते हैं।

तीसरी कला—मेदको धारण करती है, इसलिए उसे "मेदधरा" कहते हैं।

चौथी कला—यकृत और प्लीहाके बीचमे रहती है, और वह इन्हीं दोनोंकी कला है, इसलिये उसे "कफधरा" कहते हैं।

पाँचवीं कला—आँतोंको धारण करती है, यानी आँतड़ियोंके आधारसे पेटके मलके विभाग करती है, इसीलिये उसे "पुरीपधरा कला" कहते हैं।

छठी कला—अग्निको धारण करती है, यानी खाद्य, पेय प्रभृति चार प्रकारके आमाशयसे गिरे हुए पदार्थोंको पक्वाशयमे ले जाकर धारण करती है, इसलिये उसे "पित्तधरा" कहते है।

सातवीं कला—शुक्र यानी वीर्यको धारण करती है, इसलिये उसे "शुक्रधरा कला" कहते है।

स्नायुसे ढका हुआ, जरायुमे विस्तृत और कफसे विस्तृत जो होता है, उसे "कलाका भाग" कहते हैं। धात्वाशयके बीचमे जो धातुका भीगा हुआ भाग शरीरकी गरमीसे पका हुआ होता है, उसे "कला" कहते हैं।

सात आशय।

१—कफाशय

२—आमाशय

३—अग्न्याशय (पित्ताशय)

४—पवनाशय (वाताशय)

५—मलाशय (पक्वाशय)

६—मूत्राशय (वस्ति)

७—रक्ताशय

नोट—स्त्रियोंके तीन आशय जियादा हैं—(१) गर्भाशय, (२) दो स्तन्याशय।

वक्षस्थल यानी छातीमे "कफाशय" है। उसके जरा नीचे आमाशय है। नाभिके ऊपर, बाईं तरफ, "अग्न्याशय" है। अग्नि-आशयके ऊपर तिल या "क्लोम" है, यह प्यासका स्थान है। इस तिलके नीचे "पवनाशय" है। पवनाशयके नीचे "मलाशय" है और मलाशयके नीचे "मूत्राशय" है। जीव-तुल्य रक्तका स्थान—रक्ताशय, उर यानी छातीमे है, इसे प्लीहा या तिल्ली कहते है। यह हृदयके बायें भागमे है। स्त्रियोंके दोनो स्तन्याशयोके स्थान सभी जानते है, इनमे दूध रहता है। गर्भाशय, पित्ताशय और पक्वाशयके बीचमे है।

कफाशय—जिस स्थानपर 'कफ' रहता है, उसे "कफाशय" या कफकी थैली कहते है।

आमाशय—जिस स्थान पर 'आम' यानी कच्चा अन्न-रस रहता है, उसे "आमाशय" या कच्चे अन्न-रसकी थैली कहते है। "चरक"मे लिखा है—नाभिसे स्तनो तक जो अन्तर या दूरी है, उसको ही विद्वान् "आमाशय" कहते है।

पाचकाशय—आमाशयके नीचे और पक्वाशयके ऊपर जो ग्रहणी नाम्नी कला है, उसे ही "पाचकाशय" कहते है।

अग्न्याशय—इसको ही ग्रहणी-स्थान कहते है। अग्न्याशयमें "पाचक-अग्नि" रहती है, यह पाचक अग्नि ही आहारको पचाती है। इस अग्निके

ऊपर तिल यानी प्यासका स्थान है, यहींसे प्यास लगती है। कोई-कोई विद्वान् "तिल" न कहकर, अग्नि-स्थानके ऊपर जलका स्थान कहते हैं। और ऐसा अर्थ लगाते है कि, नीचे अग्नि है, उसके ऊपर जल है, जलके ऊपर अन्न है और अग्निके नीचे पवन है। यही पवन अग्निको तेज करती है, अग्नि जलको गरम करती है, गरम जल अपने ऊपरके अन्नको पचाता या पकाता है। नीचेका चित्र देखिये:—
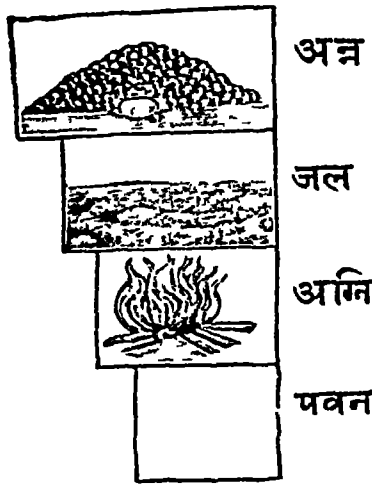
पवनाशय या वाताशय—पवनाशय पवनके रहनेके स्थान या हवाकी थैलीको कहते है।

मलाशय—मलके रहनेके स्थानको "मलाशय" या "पक्काशय" कहते है।

मूत्राशग—मूत्र या पेशावके रहनेके स्थान या पेशावकी थैलीको "मूत्राशय" कहते है। इसे "वस्ति" भी कहते है।

सात धातु।

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात "धातु" कहलाती है। ये सातो धातुएँ पित्तके तेजसे पक-पककर, क्रमसे एकसे एक, पैदा होती है। आहारसे रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र बनता है।

अन्नके पचनेसे रस बनता है और असार भाग जो रह जाता है, वही विष्ठा और मूत्र है।

रस पित्ताग्निसे पकता है। पकनेसे स्थूल भाग रस, सूक्ष्म भाग रक्त और मैलमें "कफ"—ये तीन तैयार होते हैं।

रक्त पकता है। पकनेपर स्थूल भाग रक्त, सूक्ष्म भाग मांस और मलमें "पित्त"—ये तीन तैयार होते हैं।

मांस पकता है। पकनेपर स्थूल भाग मांस, सूक्ष्म भाग मेद और मैलमें "नाक कानका मैल"—ये तीन तैयार होते हैं।

मेद पकता है। पकनेपर स्थूल भाग मेद, सूक्ष्म भाग अस्थि और मलमें "पसीना"—ये तीन तैयार होते हैं।

अस्थि पकती है। पकनेपर स्थूल भाग अस्थि, सूक्ष्म भाग मज्जा और मैलमें "केश रोम" प्रभृति—ये तीन तैयार होते हैं।

मज्जा पकती है। पकनेपर स्थूल भाग मज्जा, सूक्ष्म भाग वीर्य्य और मैलमें "नेत्रोंका मैल और मुखकी चिकनाई"—ये तीन तैयार होते हैं।

शुक्र पकता है, किन्तु जिस तरह हजार बार गलानेपर भी सोना मैल नहीं छोड़ता, उसी तरह वीर्य्य भी मल नहीं छोड़ता। स्थूल भाग शुक्र और सूक्ष्म भाग "ओज" है।

इस तरह एक दूसरेसे ये सातों धातुएँ तैयार होती जाती हैं, और इनके मैल छूटते जाते हैं।

सात धातुओंके मैल।

धातु	मैल
रस ...	... जीभ और नेत्रोंका जल प्रभृति।
रक्त ...	... रञ्जक पित्त।
मांस ...	... कानका मैल।
मेद ...	... जीभ, दाँत, बगल और लिङ्गका मैल।
अस्थि ...	... नाखून, बाल, रोम प्रभृति।

मज्जा	आँखोंकी कीचड़, मुखकी चिकनाई।
शुक्र	मुँहासे, डाढ़ी, मूँछ।

नोट—उधर कफको रस धातुका मैल कह आये हैं, यहाँ जीभ और आँखोंका जल लिख दिया है, इससे भ्रम होगा। जीभका मैल कफसे सम्बन्ध रखता है; इससे रस धातुका मैल "कफ" ही समझो।

मेदका मैल उधर "पसीना" लिखा है, किन्तु यहाँ जीभ, दाँत और बगल तथा लिंगेन्द्रियके मलको मेद धातुका मैल लिखा है। इसका कारण यह है कि, शार्ङ्गधर आचार्य "पसीने"को उपधातुओंमें मानते हैं, किन्तु अन्य आचार्य ऐसा नहीं करते।

कोई-कोई विद्वान् शुक्र धातुका मैल ही नहीं मानते। मुँहासे और मुखकी चिकनाईको तथा नेत्र-मलको मज्जा धातुका मैल कहते हैं। इन्हीं दो तीन बातोंमें मतभेद है, सो इन नोटोंमें हमने खोल दिया है।

सात उपधातु।

धातु	उपधातु
रस	दूध
रक्त	रज (मासिक ख़ून)
मांस	वसा
मेद	पसीना
अस्थि	दाँत
मज्जा	बाल
शुक्र	ओज

इस तरह रससे दूध पैदा होता है और वह रसकी उपधातु कहलाता है। स्त्रियोंका माहवारी ख़ून, रक्त (ख़ून) धातुसे पैदा होता है और वह रक्तकी उपधातु कहलाता है। दूध और मासिक रक्त, ये दोनों उपधातु तथा रोमराजि (बाल और रोएँ) ये तीनों ही औरतोंके समय पाकर पैदा होते हैं और समय आनेपर, पहले दोनों, नाश भी हो जाते हैं। पचास सालसे अधिक उम्र होनेपर, मासिक धर्म नहीं होता, इसलिए गर्भ नहीं रहता, गर्भ न रहनेसे स्तनोंमें दूध नहीं आता।

इस तरह शुद्ध मांससे वसा पैदा होती है और मांसकी उपधातु कहलाती है। स्वेद या पसीना मेद धातुकी उपधातु; दाँत अस्थिकी उपधातु; केश (बाल) मज्जाके उपधातु और "ओज"* शुक्र धातुकी उपधातु है।

सात त्वचा।

१—पहली त्वचा अवभासिनी है, यह सिध्मकुष्ठकी जगह है।

२—दूसरी लोहिता है, यह तिलकालक या तिलकी जगह है।

३—तीसरी श्वेता है, यह चर्मदल-कुष्ठकी जगह है।

४—चौथी ताम्रा है, यह किलासकुष्ठकी जगह है।

५—पाँचवी वेदनी है, यह सब कोढोंकी जगह है।

६—छठी रोहिणी है, यह गाँठ, गण्डमाला, अपची प्रभृतिकी जगह है।

७—सातवी स्थूला है, यह विद्रधि, अर्श, भगन्दर आदिकी जगह है।

पहली त्वचामे सिध्मकुष्ट, परमकण्टक आदि रोग पैदा होते है। दूसरीमे तिल, तीसरीमें चर्मदल कोढ़, चौथीमे किलासकुष्ट (लाल कोढ़), पाँचवीमे कोढ़, छठीमें गाँठ वगैरः और सातवीमे बवासीर विद्रधि प्रभृति रोग पैदा होते है।

पहली त्वचा जौके अठारहवे भागके बराबर मोटी है, दूसरी जौके सोलहवे, तीसरी जौके बारहवें, चौथी जौके आठवे, पाँचवी जौके पाँचवें भागके समान और सातवी एक जौ-भर मोटी है। सातो चमड़ी मिलाकर दो जौ मोटी है। यह प्रमाण पुष्ट स्थानोमे है, ललाट और छोटी उँगली प्रभृतिमे नही है। इन चमड़ियोके सम्बन्धमे ज्ञान रखनेसे, इनपर होनेवाले कोढ, गाँठ, गण्डमाला, विद्रधि, बवासीर वगैरःकी चिकित्सामे सुभीता होता है।

---

*ओज़—सारे शरीरमें रहता है। यह सोमात्मक, शीतल, चिकना और शरीरकी बलपुष्टि करनेवाला है। ओजके सम्बन्धमे धातुओंकी चय-वृद्धि जहाँ लिखी है, वहाँ कुछ अधिक लिखा है। असलमें ओज सर्वप्रधान है, तेज है, सारका सार है।

तीन दोष ।

वात, पित्त और कफ—ये तीन दोष हैं। इनके सम्बन्धमे हम आगे विस्तारसे लिखेंगे।

नौ सौ स्नायु ।

स्नायु एक प्रकारकी नसे हैं। ये फैलनेवाली, गोल और अन्दरसे पोली हैं। गिन्तीमे कुल नौ सौ हैं। इनमेंसे ६०० बड़ी हैं और हाथ पैर वगैरःमे कमलकी डण्डीके तन्तुओकी तरह फैल रही है। २३० मोटी और छेदवाली कोठोंमे हैं तथा ७० गर्दनमे है। ये भी पोली है। इन्हीं ६०० स्नायुओसे शरीर बँधा हुआ है।

दो सौ दस सन्धि ।

शरीरमे हाथ, पैर, कन्धे, घोंटू, कोहनी प्रभृति जहाँ मिलते है, उन स्थानोको "सन्धि" या जोड़ कहते है। उन सन्धि या जोड़ोंमे कफके समान चिकना पदार्थ भरा हुआ हैं। सारे शरीरमे २१० सन्धि या जोड़ है।

दो सौ अस्थियाँ।

शरीरमे हड्डियाँ ही सार और आधार है। इनपर ही शरीररूपी ढाँचा ठहरा हुआ है। यह पाँच प्रकारकी होती हैः—(१) कपाल, (२) रुचक, (३) वलय, (४) तरुण और (५) नलक।

एक सौ सात मर्म ।

देहमे मर्म प्रायः आत्माके आधारभूत है। इनमें चोट लगनेसे प्राणी तत्काल मर जाता है। जीवका वास इनमे समझा जाता है। "भावप्रकाश'मे लिखा है,—शिरा, स्नायु, सन्धि, मांस और हड्डियाँ ये सात जहाँ इकट्ठे होकर एक जगह मिलते है, उसी स्थानको "मर्म-स्थल" या "मर्मस्थान" कहते है। इन मर्म्मस्थानोमे विशेषकरके प्राण रहते है।

कुल मर्म १०७ हैं। मर्म पाँच प्रकारके हैं—(१) मांस-मर्म ११ (२) शिरा-मर्म ४१ (३) स्नायु-मर्म २७ (४) अस्थि-मर्म ८ (५) सन्धि-मर्म २० ।

दोनों पाँवोंमें २२, दोनों हाथोंमें २२, छाती और कोखमें १२, पीठमें १४, गर्दन और उसके ऊपरके हिस्सेमें ३७; कुल १०७ ।

इनमेंसे १९ मर्म तत्काल प्राण हरते हैं, ३३ कालान्तरमें प्राण हरण करते हैं, ४४ विकलता उत्पन्न करते हैं ८ पीड़ा करते हैं और ३ विशल्य नाशक हैं ।

तत्काल प्राणनाशक मर्म ।

शृङ्गाटक, अधिपति, शंख, कण्ठशिरा, गुदा, हृदय, वस्ति और नाभि—यदि इनमें चोट लग जाय तो तत्काल प्राण नाश हो जाय ।

शृङ्गाटक—नाक, कान, आँख और जीभ इन चारों इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली शिराओं—नसों—का जो मस्तकमें संयोग—मेल हुआ है, उसको "शृङ्गाटक" कहते हैं। उसमें चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु होती है।

अधिपति—मस्तकके भीतर नसोंकी जहाँ सन्धि हुई है, उसके ऊपर रोमोंका आवर्त्त है। यह भी एक मारक मर्म है ।

शंख—कनपटियोंमें दो अस्थि-मर्म हैं, उन्हें "शंख" कहते हैं। ये भी मारक हैं ।

कण्ठशिरा—गर्दनके ऊपर दोनों तरफ चार-चार नसें हैं। ये आठों शिरायें अथवा नसें मर्मस्थान हैं। इनमें चोट लगनेसे भी तत्काल मृत्यु होती है ।

गुदा—वायु और विष्ठाको त्यागनेवाली स्थूल आँतोंसे गुदा बँधी हुई है। यह मांस-मर्म है। इसमें चोट लगनेसे भी तत्काल मौत होती है।

हृदय—दोनों स्तनोंके बीचमें छाती है। वह सत्व, रज और तमका अधिष्ठान है। वहीं हृदय नामक शिरा-मर्म है। उसमें चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु होती है ।

वस्ति—पेट, कमर, गुदा, पेड़ू और लिङ्ग इनके वीचमे वस्ति है। यह मूत्रकी थैली है। इसका चमडा पतला है और इसमे दरवाजा है, जिसका मुँह नीचेकी ओर है। वस्ति शिरा-मर्म है और चोट लगनेसे शीघ्र ही प्राण नाश करती है।

नाभि—इसे सभी जानते है। यह चार अंगुलका शिरा-मर्म है। यह पक्वाशय और आमाशयके वीचमे है। यह भी चोट लगनेसे तत्काल प्राण नाश करती है।

कालान्तरमें प्राणनाशक मर्म।

वक्षस्थलके मर्म, सीमन्त, तल, क्षिप्र, इन्द्रवस्ति, वृहती, पसलियोकी सन्धि, कटीकतरुण और नितम्ब—इन स्थानोके मर्म कालान्तरमे प्राण हरण करते हैं।

वक्षस्थलके मर्मोंमे स्तनोके ऊपर नीचेके चार मर्म, कन्धेकी हड्डीके नीचे और पसलियोंके ऊपरके दो मर्म, छातीके दोनो ओरके दो मर्म शामिल है। इनमेसे कोई कफसे, कोई रुधिरसे और कोई वायुसे भरे हुए है। इस कारण ये कालान्तरमें मारते है।

सीमन्त—सिरके सन्धि-मर्मको कहते हैं। ये उन्माद, भय, मूर्च्छा प्रभृति उत्पन्न करके मारते हैं।

तल—विचली उँगली, हथेलियो और पाँवके तलवोके मर्मको कहते हैं। ये जल-मर्म कहलाते है। इनमे पीड़ा होनेसे कालान्तरमे प्राण निकलते है।

क्षिप्र—अँगूठा और उङ्गलियोके मर्म हैं। ये आक्षेपक नामका वायु रोग पैदा करके कालान्तरमे मारते है।

इन्द्रवस्ति—दोनो वाजू और दोनो जाँघोमे चार मांस-मर्म है। ये रुधिर क्षय होनेसे कालान्तरमे मारते हैं।

वृहती—स्तनोकी जड़के दोनों ओरसे लेकर पीठके बाँसों पर्य्यन्त शिरा-मर्म हैं। रुधिरके वहुत निकलनेसे ये कालान्तरमें मारते हैं।

पार्श्व सन्धि—जाँघोकी दोनो पसलियोकी सन्धिमे शिरा-मर्म है । ये कालान्तरमे प्राण हरण करते हैं ।

कटीकतरुण—त्रिक या रीढ़के पासकी तीन हड्डियोके पास अस्थि-मर्म है । ये रुधिरके क्षयसे पीलिया प्रभृति करके कालान्तरमे प्राण नाश करते है ।

नितम्ब—दोनो चूतड, ये दोनो प्रसिद्ध अस्थिमर्म है । शरीरके नीचेका भाग सूखनेसे तथा दुर्बलता होनेसे कालान्तरमे प्राण नाश करते है ।

भयानक हानि करनेवाले अथवा तत्काल या कालान्तरमे प्राण नाश करनेवाले मर्मोका हमने वर्णन कर दिया, शेष मर्म इतने भयानक नहीं । उन सबके लिखनेसे ग्रन्थ बढ़नेका भय है और पढ़नेवालोको आफतके समान भी दीखेगे । तत्काल प्राणनाशक मर्म अवश्य जानने चाहिएँ, शेषके जाननेकी जिन्हे जरूरत हो, वे "भावप्रकाश" प्रभृति ग्रन्थोमे देख ले ।

सात सौ शिरायें ।

शिरा एक प्रकारकी नसे है । ये सन्धियोके बन्धनोको बाँधनेवाली और वात आदि दोष और रस आदि धातुओको बहानेवाली है ।

चौबीस धमनियाँ ।

धमनी नामकी २४ नाड़ियाँ है । ये नाभिस्थानसे प्रकट होकर, दश नीचेकी ओर गई है, जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्त्तव आदि और अन्न, जल, रस इनको वहाती है । दश ऊपरको गई है, जो शब्द, रूप रस, गन्ध, श्वासोच्छ्वास, जँभाई, भूख, हँसना, बोलना, रोना प्रभृतिको बहाकर देहको धारण करती है । उनके सिवा तिरछी जानेवाली चार धमनियाँ और है । उन चारोसे अनगिन्ती धमनियाँ पैदा हुई है । उनसे यह शरीर जालकी तरह ढका हुआ है । उनके मुँह रोमकूपों या शरीरके अनन्त छेदोसे बँधे हुए है । उबटन, स्नान, तेल प्रभृतिका

वीर्य उन्हींके द्वारा भीतर पहुँचता है। यही २४ रसवाहिनी नाड़ी कहलाती हैं।

पाँच सौ मांसपेशियाँ ।

मांसपेशियोंसे देहमें बल होता है और उन्हींके बलसे शरीर सीधा खड़ा रहता है।

सोलह कण्डरा ।

कण्डरा बड़ी स्नायुओंको कहते हैं। ये गिन्तीमें सोलह हैं। इनसे ही हाथ पैर आदि अङ्गोंके फैलाने और सुकेड़नेमें सहायता मिलती है।

दश छिद्र ।

नाकमें दो, कानोंमें दो, लिंगमें एक, मुखमें एक, गुदामें एक तथा मस्तकमें एक छिद्र है, जिसे "ब्रह्मरन्ध्र" कहते हैं। इस तरह दश छिद्र हैं। पुरुषोंके नौ छेद खुले हुए हैं, मस्तकका छेद ढका हुआ है। स्त्रियोंके गर्भ-मार्गमें एक छेद और दोनों स्तनोंमें दो छेद—ये तीन जियादा हैं।

प्लीहा ।

हृदयके बायें भागमें प्लीहा या तिल्ली अथवा स्प्लीन (Spleen) है। यह रक्तवाहिनी शिराओंकी जड़ है और रक्तसे पैदा हुई है।

फेंफड़े ।

फेफड़ोंको फुसफुस भी कहते हैं। अँगरेजीमें इन्हें "लंग्ज़" (Lungs) और अरबीमें "रिया" कहते हैं। ये रुधिरके झागोंसे प्रकट होकर हृदय-नाड़ीसे लगे हुए हैं। इन्हींसे श्वासका काम होता है। श्वाससे ही देहकी चेष्टा होती है।

यकृत ।

हृदयके दाहिने भागमें यकृत या कलेजा है। इसे ही "लिवर" (Liver) कहते हैं। यकृत—रञ्जक पित्त और रुधिरका स्थान है।

तिल या क्लोम ।

दाहिनी तरफ, यकृतके पास, तिल या क्लोम नामकी एक जगह है। यह तिल .खूनके कीटसे पैदा हुआ है। यह जल वहानेवाली नाड़ियोका मूल है। यहींसे प्यास लगती है।

वृक्क ।

वृक्कोको कुक्षिगोलक भी कहते है। अँगरेजीमे "किडनी" (Kidney) और हिकमतमे "गुर्दे" कहते है। ये दोनो मूत्रपिण्ड कमरके दोनो ओर रहते है। ये मूत्रको अलग करके मूत्राशय या वस्तिमे पहुँचाते है।

वृषण ।

वृषण आँड या फोतोको कहते है। ये मास, कफ और मेदके सारांशसे पैदा होते है, और वीर्य-वाहिनी नाड़ियोके आधार है, अतएव पुरुषार्थदाता है।

हृदय ।

कमलकी कलीके समान, किसी कदर खिला हुआ, नीचेकी तरफ मुँह किये हुए "हृदय" है। यह चैतन्यताका स्थान और ओज यानी सब धातुओका सार है। यो तो सारा शरीर ही चेतनाका स्थान है, पर हृदय या दिल अथवा "हार्ट" (Heart) विशेषकरके चेतनाका मुख्य स्थान है।

शिरा और धमनियोंका काम ।

नाभिस्थानमे रहनेवाली शिरा और धमनी, सारे शरीरमे व्याप्त होकर, रात-दिन, वायुके सयोगसे, रसादि धातुओको शरीरमें ले जाकर, शरीरका पोषण करती है। ये तरुणोको पुष्ट करती और वृद्धोका पालन करती है।

त्रिदोष-विचार ।

तीन दोष ।

वात, पित्त और कफ—इन तीनोंको "दोष" कहते हैं और "धातु" भी कहते हैं। धातु और मल इन तीनोंसे दूषित होते हैं, इसलिये इनको "दोष" कहते हैं और ये देहको धारण करते हैं, इसलिये इनको "धातु" कहते हैं।

वायु ।

"वायु" अन्य दोषों और रस, रक्त, मांस, मेद आदि धातुओंको दूसरी जगह पहुँचानेवाला, जल्दी चलनेवाला, रजोगुणयुक्त, सूक्ष्म, हलका, रूखा और चंचल है। श्वासका लेना और छोड़ना, इसीसे होता है। वायु—धातु और इन्द्रियोंकी चतुराईसे रक्षा करता है; हृदय, इन्द्रियों और चित्तको धारण करता है। शीतल है, नर्म और योगवाही है, यानी जिसके साथ मिलता है, उसीकेसे गुण प्रकाश करता है, सूरजके साथ मिलता है, तो दाह पैदा करता है और चन्द्रमाके साथ मिलता है, तो शीतलता करता है, पित्तके साथ मिलकर पित्तकेसे काम करता है और कफके साथ मिलकर कफकेसे काम करता है।

सब दोषोंमें वायु ही प्रधान है। बिना वायुके प्राणी क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकते। देह-धारियोंके लिये बाहरी और भीतरी दोनों वायुओंकी जरूरत है। बाहरी वायु प्राणियोंको जीवित और चैतन्य रखता है। भीतरी वायु शरीरके भीतर काम करता रहता है। कहीं रसको, कहीं रक्तको, कहीं वीर्यको और कहीं भोजनको पहुँचाता है। यही शरीरमें सफाई करता और मल-मूत्रको निकालकर बाहर फैंकता

है । इसके अनेक काम है । जितने दोष और धातु है, सब लँगड़े है, वायु उन्हे जहाँ ले जाता है, वही चले जाते हैं। जिस तरह वायु (हवा) बादलोको इधरसे उधर और उधरसे इधर ले जाता और लाता है, उसी तरह शरीरके भीतर भी वायु काम करता है । कहा है:—

पित्त पंगु कफः पंगु, पगवो मलधातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते, तत्र गच्छान्ति मेघवत् ॥

पित्त लँगडा है, कफ लँगडा है और सब मल तथा धातु लँगड़े है। वायु इन्हे जहाँ ले जाता है, वही ये बादलोकी तरह चले जाते है। "हारीत-संहिता" मे लिखा है:—

रक्षणीय गजे पित्त, श्लेष्मा वाजिषु सर्वदा ।
पवनोऽथ मनुष्याणा, प्रायो रक्षेत् सर्वदा ॥

वैद्यको सदा हाथीमे पित्तकी, घोड़ेमे कफकी और मनुष्योमें सदा "वायु"की रक्षा करनी चाहिये ।

वायुके रहनेके स्थान ।

कण्ठ, हृदय, कोठेकी आग, मलाशय और सारा शरीर—ये पाँच स्थान वायुके रहनेके हैं। कण्ठमें उदानवायु, हृदयमे प्राणवायु, कोठेकी अग्निके नीचे नाभिमे समानवायु, मलाशयमे अपानवायु और सारे शरीरमे व्यानवायु रहता है ।

पाँचों वायुओंके काम ।

उदानवायु—यह गलेमे घूमती है, इसीकी शक्तिसे यह प्राणी बोलता और गीत आदि गाता है । जब यह वायु कुपित होती है, तब कण्ठके रोग करती हैं ।

प्राणवायु—यह वायु प्राणोको धारण करती और सदैव मुँहमे चलती है । यह भोजनके अन्नको भीतर प्रवेश कराती और प्राणोकी रक्षक है । यह कुपित होकर हिचकी और श्वास आदि रोग पैदा करती है ।

समानवायु—यह वायु आमाशय और पक्काशयमे विचरती और जठराग्निसे मिलकर अन्नको पचाती और अन्नसे उत्पन्न हुए मल-मूत्र आदिको अलग-अलग करती है। यह कुपित होकर मन्दाग्नि, अतिसार और वायुगोला प्रभृति रोगोको पैदा करती है।

अपानवायु—यह वायु पक्काशयमे रहती है। मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्तव इनको निकालकर बाहर फेकती हे। यह वायु कुपित होकर, मूत्राशय और गुदाके रोग करती एवं शुक्रदोष, प्रमेह तथा व्यान और अपानके कोपसे होनेवाले रोग पैदा करती हे।

व्यानवायु—यह वायु सारे शरीरमे विचरती है। यह रस, पसीना और ख़ूनको बहाती है। जाना, नीचेको डालना, ऊपरको फेकना, आँख मीचना और आँख खोलना—ये क्रियाएँ इसीके अधीन है। यह जब कुपित होती है, सब शरीरके रोगोको प्रकट करती है।

जब ये पाँचो वायु एक साथ कुपित हो जाती है, तब निस्सन्देह शरीरका नाश कर देती है, यानी प्राणीको मार डालती है।

वायु-कोपके लक्षण।

अङ्ग-भेद, अनिवार्य्य तृषा, मर्दनकीसी पीडा, कम्प, सुई चुभानेकी-सी पीड़ा, रस्सीसे बाँधनेकी-सी पीडा, मलकी कठोरता, लाल रंग हो जाना, कसैला स्वाद, साँस न आना, शरीर सूखना, शूल, शरीरका सो जाना, शरीरका सिकुड़ना, शरीरका रह जाना प्रभृति लक्षण "चरकके सूत्रस्थान" मे वायु-कोपके लिखे है। मामूली तौरपर वायुका कोप होनेसे शरीरमे थकानसी मालूम होने लगती है, दिशा-पेशाब कम होते है, आँखोमे नशा-सा जान पड़ता है, नींद नही आती, पेट फूल जाता है, जोडोमे दर्द होता है, पीठका बाँसा दुखने लगता है, सिरमे दर्द होता है, कमर, छाती और कनपटीमे वेदना होती है।

वायु-कोपके कारण।

"चरक" मे लिखा है—रूखे, हलके और शीतल पदार्थोंके सेवन, जियादा मिहनत, जियादा वमन होना, जियादा जुलाब होना, आस्था-

पनका अतियोग, मल, मूत्र, छींक, जँभाई आदि वेगोका रोकना, उपवास, चोट लगना, अति स्त्री-सम्भोग करना, घवराहट, चिन्ता-फिक्रकी अधिकता, .खूनका निकालना, रातमे जागना, शरीरको बेकायदे टेढ़ा-तिर्छा करना—ये सब कारण वायु-कोपके है ।

"हारीत-संहिता"मे लिखा है—कसैले और शीतल पदार्थोका सेवन, बहुत खाना, बहुत चलना, अधिक बोलना, अति भय करना, रूखी, कड़वी और चरपरी चीजोको जियादा सेवन करना, ऊँट, घोड़ा, हाथी, रथ, पालकी प्रभृतिकी अधिक सवारी करना, शीतल दिनोमे, वादलोसे घिरे दिनमें और दोपहरके बाद स्नान करना, मसूर, मटर, मोठ, चौला, ज्वार, जौ, मोटे चॉवल, काला अन्न, शीतल अन्न, कागनी, लाल अन्न, गुड़ियानीका पकाया भात, वथुआ, प्याज, गाजर प्रभृति अन्न और शाकोका अधिक खाना—ये सब यदि अधिकतासे सेवन किये जायँ, तो वायुको कुपित करते है । मनुष्यको वायुके कोपसे सदा बचना परमावश्यक है, अतः इन सब कारणोसे वचना चाहिये, यानी इनको अधिकतासे भूलकर भी न करना चाहिये । विशेपकर, वात प्रकृति-वालोको रूखे, कड़वे, कसैले, चरपरे पदार्थो, वासी भोजन, शीतल भात, व्रत-उपवास, अति स्त्री-प्रसंग और अति तैरना आदिसे बचना भला है । मौसम बरसात और जब किसी भी मौसममे वादल हो रहे हो, वायुका कोप होता है, क्योकि ये वायु-कोपके समय है । इसलिये ऐसे समयमे कम नहाना, गर्म कपड़े पहनना और गर्म खाना अच्छा है ।

वायुकी शान्तिके उपाय ।

वैद्यको मीठे, खट्टे, खारी, चिकने और गर्म द्रव्यो द्वारा वायु-रोगकी चिकित्सा करनी चाहिये । पसीना दिलाना, तेलकी मालिश कराना, कम हवा आती हो ऐसे स्थानमे सोना, भारी भोजन करना, गोता मारके नहाना, शिरमे तेल लगाना, गुनगुना जल, गेँहूँ, मूँग, घी, नवीन उर्द, लहसन, मुनक्का, मीठा अनार, पके आम, आँवले, कैथ,

गोमूत्र, हरड़, पका ताड़ फल, मिश्री, चीनी, गायका दूध और सैंधा-नोन प्रभृति वायु-कोपको शान्त करनेवाले है।

वायु-क्षयके लक्षण।

मन्द चेष्टा, शरीरमे शिथिलता, उदासी, थोड़ा बोलना, थोड़ी प्रसन्नता, स्मरण-शक्तिका कम हो जाना,—ये लक्षण उस समय होते है, जब मनुष्यके शरीरमे वायु कम हो जाता है। यह "सुश्रुत" की बात है। "चरकके सूत्रस्थान" मे लिखा है—वायुके क्षीण होनेसे कुपित पित्त यदि कफकी चालको रोक दे, तो तन्द्रा, भारीपन और ज्वर होता है। एक जगह लिखा है:—

प्रलापो गुरुता तन्द्रा निद्रा स्यात्तु मरुत्क्षये।
ष्ठीवन पित्तकफष्योखादीनां च पातम्॥

वायुके क्षीण होनेपर प्रलाप, भारीपन, तन्द्रा, निद्रा, थूकमे कफ और पित्तका आना और नाखून गिरना—ये लक्षण होते है।

वायुकी वृद्धिके लक्षण।

जिस तरह वायुकी कमी होती है, उसी तरह वृद्धि भी होती है। चमड़ेकी कठोरता, दुवलापन, शरीरका फड़कना, गर्मीकी इच्छा, नींदका न आना, कमजोरी, मलका सूख जाना और मलका कम होना,—ये लक्षण वायु-वृद्धिके हैं।

वायुका समय।

वृद्धावस्थामे वायुका जोर होता है, इसलिए इस अवस्थामे प्रायः वायुका कोप होता है। जो सावधान रहते है, वायु-कोपकारी आहार-विहारोसे वचते है और वायु-शमनकारी आहार-विहारोका सेवन करते है, वे सुखी रहते है।

दिनका अन्त और रातका अन्त, यानी दिनके २ बजे बाद और रातके २ बजे बाद वायुका समय होता है। इसी तरह भोजन पत्र चुकनेके बाद भी वायुका समय होता है।

बरसात वायु-कोपका प्रधान समय है। हेमन्त और शिशिर ऋतुमे भी वायुका कोप होता है और साथ ही शरीरमे रूखापन होता है।

हारीतने लिखा है—कातिक, अगहन, माघ, आषाढ़ तथा हेमन्त ऋतु और छहों ऋतुओंकी सन्धि* के समय वायु सविप यानी जहरीला होता है।

पित्तका स्वरूप ।

पित्त एक तरहका पतला द्रव्य है। यह गरम है। आमसे मिले हुए पित्तका रङ्ग नीला और आमसे अलग पित्तका रंग पीला होता है। यह दस्तावर, चरपरा, हलका, चिकना और तीक्ष्ण होता है। पाकके समय इसका स्वाद खट्टा हो जाता है।

पित्तके पाँच प्रकार ।

वायुकी तरह पित्त भी नाम, स्थान और क्रियाओंके भेदसे पाँच तरहका होता है—(१) पाचक, (२) रंजक, (३) साधक, (४) आलोचक और (५) भ्राजक।

पित्तके रहनेके स्थान ।

अग्न्याशय, यकृत, प्लीहा, हृदय, दोनो नेत्र, सम्पूर्ण देह और त्वचा (चमड़ा) में पित्त निवास करता है। अग्न्याशयमें पाचक पित्त, यकृत और तिल्लीमे रंजक पित्त, हृदयमे साधक पित्त, दोनो नेत्रोमे आलोचक पित्त, सारे शरीर और चमडेमे भ्राजक पित्त रहता है।

पाँच पित्तोंके काम ।

पाचक पित्त—यह आमाशय और पक्वाशयमे रहकर, छै प्रकारके आहारोको पचाता और शेषाग्निके बलको बढ़ाता है तथा रस, मूत्र, मल प्रभृतिको रोज अलग-अलग करता है। मुख्यतासे वही स्थित हुआ अर्थात् आमाशय और पक्वाशयमे रहकर ही, अपनी शक्तिसे, शरीरके शेष यकृत, त्वचा, नेत्र आदि स्थानो और समस्त देहका पोषण करता है। इसी पित्तको "जठराग्नि" अथवा "पाचक अग्नि" कहते है। यह अग्नि कॉचके पात्रमे दीपकके समान है। यही अनेक प्रकारके व्यञ्जनोको पचाती है। बड़े शरीरवाले जीवोमे यह अग्नि जौके प्रमाण,

* एक ऋतुका अन्त हो और दूसरीका आरम्भ हो, उसको "ऋतु सन्धि" कहते हैं।

छोटे शरीरवालोंमे तिलके प्रमाण और छोटे-छोटे कीट-पतङ्गोंमे बालके बराबर होती है।

रञ्जक पित्त—इसका काम रसका रक्त यानी ख़ून बनाना है।

साधक पित्त—बृद्धि, धृति यानी मेधा और स्मरण-शक्तिको बढ़ाता है। "सुश्रुत"मे लिखा है, इसकी साधक नाम अग्नि संज्ञा है। यह वाञ्छित मनोरथका साधन करनेवाला है।

आलोचक पित्त—इसका काम रूप ग्रहण करना है। इसीके कारणसे प्राणियोंको दीखता है।

भ्राजक पित्त—यह पित्त कान्ति करता है और लेप, तेलकी मालिश और स्नान आदिको पचाता यानी सुखाता है।

पित्त-क्षयके लक्षण।

जिस तरह वायुकी घटती-बढ़ती होती है, उसी तरह पित्तकी भी घटती-बढ़ती होती है। जब पित्त कम हो जाता है, तब अग्निमन्द, शरीरकी गरमी कम और शरीरकी रौनक मारी जाती है।

पित्त-वृद्धिके लक्षण।

जब पित्त बढ़ जाता है, तब शरीर पीला हो जाता है, सन्ताप होता है, शीतल चीजोंकी इच्छा होती है, यानी सर्दीकी चाहना होती है, नींद कम आती है, बेहोशी होती है, बलकी हानि होती है, इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती है, पेशाब जर्द होता है, और आँखे पीली हो जाती है।

पित्त-कोपके लक्षण।

आगसे जलेके समान जलनसा हो, ऐसा मालूम हो मानो धक-धक आग जल रही है, धूआँसा निकलता मालूम हो, खट्टी डकारे आवें, अन्तर्दाह हो, गरमी बहुत लगे, अत्यन्त पसीने आवे, शरीरसें बदबू आवे, अंग और अवयव फटे, चमड़ा जले, लाल-लाल चकत्ते हो, लाल-लाल फोड़े हो, बगलमे कखलाई हो, मुँहमे कड़वापन, अधिक प्यास, आँखोंके सामने अँधेरा, हरे या हल्दीके रंगका चमडा हो

जाना, मल, मूत्र और नेत्र हरे या पीले हो जायँ, दस्तका पतला होना, आनतान बकना इत्यादि लक्षण पित्तके कुपित होनेसे होते है ।

पित्त-कोपके कारण ।

"सुश्रुत" मे लिखा है—क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, उपवास, जले हुए पदार्थ, मैथुन, दौड़ना, चरपरे, खट्टे और नमकीन पदार्थ, गरम, हलके और दाह करनेवाले पदार्थ, तिल, तेल, कुलथी, सरसो, अलसी, हरी तरकारी, गोह, मछली, बकरी और भेड़का मांस, खट्टा दही, खट्टी छाछ, दहीका तोड़, काँजी, हर तरहकी शराव, खट्टे फल और धूप आदिसे पित्तका कोप होता है ।

"हारीत-सहिता"मे लिखा है—बहुत गरम तथा रूखे, चरपरे और खट्टे पदार्थोंका सेवन, दाहमे सीधू तथा मदिराका सेवन, गरमीमें क्रोध या पसीनोमे सम्भोग करना—ये पित्त-प्रकोपके कारण है । कुलथी, अरहरका यूष, मूली, सहँजना, कचूर, सरसो, राईका शाक खाना, वर्षाऋतुमे रातके समय जागना, युद्ध करना और परिश्रम करना,—इन कारणोसे शरद ऋतुमे पित्त कुपित होता है ।

पित्त-कोपका समय ।

गरमीका समय, शरद ऋतु, मध्याह्नकाल, आधीरात और भोजन पचते समय पित्त विशेषकर कुपित होता है। जवानीमे पित्तका जोर रहता है।

पित्तकी शान्तिके उपाय ।

वैद्यको पित्तकी मधुर, कड़वे, कसैले और शीतल द्रव्यो, पित्तनाशक स्नेह (घी, तेल), जुलाब, प्रलेपन, अभ्यंग और अवगाहनसे, मात्रा और कालका विचार करके, चिकित्सा करनी चाहिये । पित्तकी जितनी चिकित्सा है, उनमें विरेचन यानी जुलाब सर्वोपरि माना जाता है, क्योकि विरेचन-औषधि आमाशयमे घुसकर विकारकर्त्ता पित्तके मूलको पूर्णरूपसे छेदन कर देती है । (चरक)

उपरोक्त चिकित्सा-विधिके सिवा, नीचे लिखे आहार-विहार भी पित्तकी शान्तिमे अच्छे हैं—मुनक्का, केला, आँवला, अनार, परवल,

छुहारा, ककड़ी, खीरा, करेला, कुम्हड़ा, ताड़के फल, पुराने चाँवल, गेहूँ, मिश्री, चीनी, घी, दूध, मक्खन, अरहर, जौ, चना, मूँग, धानकी खील, मसूर तथा कुटकी, निशोथ, पित्तपापड़ा, त्रिफला, शतावरी, चन्दन एवं सुन्दर बाग, केले और कमलके पत्तोंकी सेज, सफेद चन्दनका लेप, मित्र-मिलन, मीठी बातें, मनोहर गाना, नाच, शीतल-मन्द पवन, फव्वारे, चाँदनी और छिड़काव प्रभृति शीतल आहार-विहार पित्त-विकारवालोंके लिये पथ्य है।

कफका स्वरूप।

सफेद, भारी, चिकना, चिलमिलासा, शीतल, तमोगुण-युक्त और स्वादु (मधुर) है, विदग्ध होनेसे खारी हो जाता है। कफ भी नाम, स्थान और कर्म-भेदोंसे पाँच प्रकारका होता है।

कफके पाँच प्रकार।

कफ पाँच तरहका होता है:—(१) क्लेदन, (२) अवलम्बन, (३) रसन, (४) स्नेहन और (५) श्लेष्मण।

कफके रहनेके स्थान।

आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और सन्धि (शरीरके जोड़)—इनमें पाँचों प्रकारके कफ रहते हैं। आमाशयमें क्लेदन, हृदयमें अवलम्बन, कण्ठमें रसन, शिरमें स्नेहन और सन्धियोंमें श्लेष्मण कफ रहता है।

कफके काम।

क्लेदन कफ—अन्नको गीला करता है और अपनी शक्तिसे कफके दूसरे स्थानोंको भी जल-कर्म द्वारा सहायता देता है। मतलब यह है—क्लेदन कफ अन्नको भिगोता है, इसलिये इकट्ठा हुआ अन्न अलग-अलग हो जाता है। कफ हृदय आदि अन्य स्थानोंमें जाकर, उन-उन स्थानोंमें हृदयका अवलम्बन करना, त्रिक-संधारण, रस ग्रहण करना, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका तृप्त करना और सन्धियोंको जोड़ना इत्यादिमें जल-कर्मोंसे सहायता करता है।

अवलम्बन कफ—रसयुक्त वीर्यसे हृदयके भागका अवलम्बन, और त्रिक* नामक हड्डीको संधारण करता है।

---

* त्रिक-हड्डी—मस्तक और दोनों भुजाओंकी सन्धिको 'त्रिक' कहते हैं।

रसन कफ—रसना और रसन-कफ—ये दोनो सौम्यगुण-युक्त है । दोनो पास रहते है । इस कारण रसना—जीभ और रसन* कफ—ये दोनो रसको जानते है ।

स्नेहन कफ—यह चिकनाई देकर सारी इन्द्रियोको तृप्त करता है ।

श्लेष्मण कफ—सब सन्धियो यानी जोडोको अच्छी तरह जोडता है ।

कफ-कोपके लक्षण ।

बिना खाये ही पेट भरा-सा जान पड़े, ऊँघ और नींद अधिक आवे, देह भारी रहे, आलस्य मालूम हो, मुँहका स्वाद मीठा रहे, मुँहमेसे पानी गिरे, बारम्बार कफ थूके, डकार आवे, पाखाना अधिक हो, गला कफसे लिहसासा मालूम हो, मन्दाग्नि हो, शरीर सफेद हो, मल-मूत्र और नेत्र सफेद रङ्गके हो, जाडासा लगे तथा दस्त गाढा हो और ढेर हो—ये लक्षण कफ-कोपके है ।

कफ-क्षयके लक्षण ।

शरीरमे कफकी कमी होनेपर शरीरमे रूखापन हो, भीतर जलन हो, सिर सूना हो, शरीरकी सन्धियाँ ढीली हो जायँ, प्यास लगे, शरीर दुर्बल हो और नीद न आवे—ऐसे लक्षण होते है ।

कफ-वृद्धिके लक्षण ।

शरीरमे कफ बढ़नेपर मल, मूत्र, नेत्र और सारे शरीरका सफेद होना, जाडा लगना, भारीपन, अवसाद, तन्द्रा, निद्रा और सन्धियोका ढीलापन प्रभृति लक्षण होते है ।

कफके कोपका समय ।

कफ शीतल पदार्थोसे शीतकालमे—खासकर वसन्तमें, दिनके पहले भाग और रातके पहले भाग यानी सवेरे और रातके आरम्भमें तथा भोजन करते ही कुपित हो जाता है । बालकपन भी कफका समय है, यानी बचपनमें कफका जोर रहता है ।

---

* रसन कफ—कण्ठमे रहता है ।

कफ-कोपके कारण ।

दिनमे सोना, विना मिहनत किये हर समय बैठे रहना, आलस्य करना, मीठा, खट्टा और नमकीन रस अधिक सेवन करना, शीतल, चिकने, भारी और अभिष्यन्दी* पदार्थोंका सेवन, चाँवल, उड़द, गेहूँ, तिल, मिट्टीके पदार्थ, दही, दूध, तिल और चाँवलोंकी खिचड़ी, खीर, ईखके पदार्थ, जल-जीवोंका मांस, चर्बी, कमलकी डण्डी, कसेरू, सिंघाड़े, अमरूद आदि मीठे फल, ककड़ी प्रभृति लताओंसे पैदा होनेवाले फल खाना, और एक भोजन पचे विना दूसरा भोजन करना, इत्यादि कफ-कोपके कारण हैं। (सुश्रुत)

"हारीत-संहिता" मे लिखा है—रातको जागना, दिनमें अधिक सोना, शीतल जलका सेवन, शीतल देशका निवास, दूध, नई ब्याई गायका दूध, ईख, तिल, गाजर, कन्दोंके साग, मछलियोंका सदा खाना, दही खाना, उड़द खाना, कफकारी और भारी पदार्थोंका सेवन, घी-तेल आदि चिकने पदार्थोंका सेवन—वसन्त ऋतुमे दुष्ट कफको कुपित करता है। दिनके अन्तमे, प्रभात समय, रातके अन्तमे और खाये हुए अन्नके पचनेके पहले, कफका कोप होता है। अगर ऐसे समयमे कफका कोप हो, तो उसे कष्टसाध्य समझो। शीतल देशमें, शीतल समयमे, रातके अन्त और भोजनके जीर्ण न होनेमें कफका कोप होता है, यह बुद्धिमानोंने कहा है।

कफकी शान्तिके उपाय ।

"चरक" मे लिखा है—"वैद्यको चरपरे, कसैले, तीक्ष्ण, गरम और रूखे पदार्थोंसे कफकी चिकित्सा करनी चाहिये। कफनाशक पसीना, वमन, शिरोविरेचन (सिरका जुलाब), कसरत, मिहनत, प्रभृति क्रिया द्वारा, काल और मात्राका विचार करके, कफका इलाज करना चाहिये। कफ-नाशक जितनी चिकित्सा है, उनमें "वमन" यानी कय कराना सबसे

* जो पदार्थ अपने गाढ़ेपन और भारीपनके कारण रसके बहानेवाली नाड़ियोंको रोक दे।

अच्छा समझा गया है; क्योंकि वमनकारक औषधि पहले ही आमाशय-में घुसकर, विकार करनेवाले कफकी जड़को खींच लाती है। जब कफकी जड़ ही नष्ट हो जायगी, तब कफके विकार भी शान्त हो जायँगे।" और स्थानोंमें लिखा है—अधिक परिश्रम, गरम दूध, स्त्री-प्रसङ्ग, गरम कपड़े पहनना, गरम पदार्थोंका अधिक खाना, हाथी-घोड़ेकी सवारी, कम जल पीना, आँखोंमें अञ्जन लगाना, नस्य सूँघना, वमन करना, शरीरसे तेल और उबटन लगाना, जियादा देर तक दाँतुन और कुल्ले करना, जल मिला-कर शहद पीना, गरम जल पीना, गरम घरमें रहना, त्रिफलेका सेवन करना, साँठी चाँवल, चना, मूँग, लहसुन, प्याज, बैंगन नीम, निशोथ और कुटकी प्रभृति आहार-विहार कफके कुपित होनेपर पथ्य हैं।

दोष और धातुओंसे लाभ और उनकी क्षय-वृद्धि।

शरीरके मूल।

वात, पित्त और कफ—ये तीन दोष, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात धातु और ग्यारहवाँ मल ये सब शरीरके मूल हैं।

दोषोंसे लाभ।

वात, पित्त और कफ—ये तीनों, पाँच प्रकारोंमें विभक्त होकर, शरीरका धारण करना, भोजन पचाना और सन्धियोंको जोड़ना प्रभृति कर्म करते हैं। दोषोंके सम्बन्धमें हम पीछे विस्तार-पूर्वक लिख आये हैं, वहींसे जानकारी हासिल करनी चाहिये।

धातुओंसे लाभ।

रस तृप्ति और रुधिरकी पुष्टि करता है। रुधिर वर्णको श्रेष्ठ करता और मासकी पुष्टि करता तथा जिलाता है। मांस शरीरको पुष्ट करता और मेदका पोषण करता है। मेद यानी चरबी चिकनाहट करती, पसीना लाती, दृढता करती और हड्डियोंका पोषण करती है। हड्डियाँ देहको धारण करती और मज्जाको पुष्ट करती हैं। मज्जा प्रसन्नता, चिकनाहट, बल और वीर्य पैदा करती तथा वीर्यकी पुष्टि और अस्थियोंको पूर्ण करती है। वीर्य—शुक्र धीरता करता, स्खलित होता, आनन्द देता, शरीरमे बल करता और सन्तान पैदा करनेके लिये मैथुनमें हर्ष उत्पन्न करता है।

मल-मूत्रादिसे लाभ।

मल—रुकावट करता, अपानवायु और पक्काशयकी अग्निको धारण करता है। मूत्र—वस्ति यानी पेशाबकी थैलीको भरता और गीली करता तथा पसीने लाता और चमड़ेको गीला तथा नर्म करता है। स्त्रियोका आर्त्तव—ख़ूनके जैसा होता है और गर्भ रखता है। दूध—कुचोको मोटी करता और सन्तानकी जीवन-रक्षा करता है। इन सबकी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिये। ठीक-ठीक रक्षा न करनेसे, ये सब क्षीणता अथवा वृद्धिको प्राप्त होते है, अर्थात् घट-बढ़ जाते है। उस वक्त मनुष्यको अनेक उपद्रव कष्ट देते हैं।

दोष और धातुओंके क्षय होनेके कारण।

अत्यन्त संशोधन—वमन-विरेचन आदि करने, मल-मूत्र आदि वेगोको रोकने, संयोग-विरुद्ध भोजन करने, मनको संताप होने, सख्त मिहनत या बहुत ही कसरत-कुश्ती करने, बहुत लंघन और अति मैथुन करने प्रभृति कारणोसे वातादिक दोष और रस रक्त आदि धातुओ तथा मल-समूह और ओज धातुका क्षय होता है।

वायु-क्षयके लक्षण।

वायुके क्षय होनेसे चेष्टा मन्द हो जाती है, शरीर ढीला-सा हो जाता है, चित्त उदास रहता है, कामको जी नही चाहता, बहुत बोलना और बहुत हँसना अच्छा नही लगता। प्राणी थोड़ा बोलता है, थोड़ा हर्ष करता है, मूढ़-सञ्ज्ञा हो जाती है और कोई बात याद नही रहती।

पित्त-क्षयके लक्षण।

पित्तका क्षय होनेपर स्वल्प गरमी और मन्दाग्नि होती और कान्ति घट जाती है।

कफ-क्षयके लक्षण।

कफका क्षय होनेपर रूखापन, अन्तर्दाह, आमाशय तथा दूसरे आशयो और शिरमे सूनापन, जोड़ोमे ढीलापन, प्यास, निर्बलता और निद्रा-नाश यानी नीद न आना,—ये लक्षण होते है।

रस-क्षयके लक्षण।

रसका क्षय होनेपर हृदयमे पीड़ा, कम्प, शून्यता और प्यास ये लक्षण होते है। "चरक" मे लिखा है—हृदय विलोयासा हो जाता है, जोरकी आवाज अच्छी नही लगती, कलेजा धक-धक करता है और सूना-सा मालूम होता है, जरा भी मिहनत करनेसे आँखोके आगे अँधेरा आ जाता है।

रुधिर-क्षयके लक्षण।

रुधिरका क्षय होनेपर चमड़ा खुरदरा-सा हो जाता है, खटाई खानेको मन चलता है, ठण्डकी इच्छा होती है और नसोंमें ढीलापन होता है।

मांस-क्षयके लक्षण।

मांसका क्षय होनेपर कमर, गाल, होठ, लिङ्ग, जाँघ, छाती, काँख, पिण्डली, पेट और गलेमे खुश्की, रूखापन और दर्द होता है, अङ्ग-प्रत्यङ्गमे थकान और धमनी नाड़ियोमे शिथिलता होती है।

मेद-क्षयके लक्षण।

मेदका क्षय होनेपर तिल्लीका बढ़ना, जोड़ोमे सूनापन और रूखापन होता है। "चरक" मे लिखा है—सन्धियोका फटना, दोनो नेत्रोमे ग्लानि, थकान और पेटकी कृशता होती है। वाग्भट्टने—कमरका सोना, तिल्लीका बढ़ना और अङ्गोकी कृशता लिखी है।

अस्थि-क्षयके लक्षण।

हड्डियोका क्षय होनेपर हड्डियोमे दर्द, नाखून और दाँतोका टूटना और रूखापन होता है। वाग्भट्टने लिखा है—हड्डियोमे चक्के चलते है, दाँत, बाल और नाखून आदि गिरते है। "चरक" मे लिखा है—बिना अवस्थाके केश, लोम, नाखून, मूँछ, हड्डी और दाँत गिरते है, भ्रम और जोडामे ढीलापन होता है।

मज्जा-क्षयके लक्षण।

मज्जाका क्षय होनेपर वीर्यकी कमी, जोड़ोमे दर्द और हाड़ोमे पीड़ा

तथा सूनापन होता है । "चरक" मे लिखा है—हड्डियाँ गिरने लगती हैं और दुर्बल तथा हलकी हो जाती है । मज्जा-क्षयवालेको सदा वायुका रोग बना रहता है । वाग्भट्टने भ्रम और अँधेरेका होना अधिक लिखा है ।

शुक्र-क्षयके लक्षण ।

शुक्र यानी वीर्यके क्षय होनेसे लिङ्ग और फोतोंमे दर्दसा, स्त्री-प्रसंगकी सामर्थ्यका न होना, कभी देरसे वीर्य निकलना, सुर्खीमाइल थोड़े वीर्यका निकलना,—ये लक्षण होते है । "चरक" मे लिखा है—शुक्र क्षीण होनेसे कमजोरी, मुँह सूखना, पीलियासा, अवसाद, ग्लानि, नपुंसकता और मैथुनके अन्तमे वीर्यका न निकलना,—ये लक्षण होते है ।

विष्ठा या मल-क्षयके लक्षण ।

मलकी क्षीणता होनेसे हृदय और पसवाड़ोमे दर्द होता है, आवाज करता हुआ वायु ऊपरको जाता है, कोखोमे घूमता है । "चरक" मे लिखा है—वायु आँतोको पीड़ित करता है, रोगी रूखा हो जाता है और वायु कोखको ऊँची करके तिरछेपनसे ऊपर-नीचे घूमता है ।

मूत्र-क्षयके लक्षण ।

मूत्र-क्षय होनेपर वस्तिस्थान यानी पेड़ू या पेशाबकी थैलीमे दर्द या जलन होती है और पेशाब थोड़ा होता है । "चरक" मे लिखा है—मूत्र-कृच्छ्र यानी पेशावका जलकर थोडा-थोड़ा उतरना, मूत्रका रंग खराव होना, प्यासका लगना और मुँह सूखना—ये लक्षण होते हैं तथा मल-मार्ग मल-हीन होनेके कारण सूने, हलके और सूखेसे मालूम होते हैं ।

स्वेद-क्षयके लक्षण ।

स्वेदकी क्षीणता यानी पसीनोकी कमी होनेपर रोमोकी जड़ कड़ी हो जाती है, चमड़ेमे खुश्की आ जाती है, छूनेसे मालूम नहीं होता कि, कोई छूता है और पसीने नहीं आते ।

आर्त्तव-क्षयके लक्षण ।

स्त्रियोका आर्त्तव (मासिक खून) क्षीण होनेसे, समयपर रजो-

दर्शन नहीं होता, अथवा देर-अबेरसे होता है, .खून कम गिरता और योनिमें पीड़ा होती है।

दुग्ध-क्षयके लक्षण।

दूधके क्षय होनेसे स्तन मुर्झा जाते हैं और उनमें दूध नहीं आता।

गर्भ-क्षीणके लक्षण।

गर्भके क्षीण होनेपर गर्भ नहीं फिरता या कम फिरता है और कूख ऊँची नहीं होती।

ओज।

"सुश्रुत"में लिखा है—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात धातु हैं—इन सातोंके सार यानी तेजको "ओज" कहते हैं, उसे ही शास्त्रके सिद्धान्तसे "बल" कहते हैं। "ओज" सोमात्मक, चिकना, सफेद, शीतल, स्थिर और सर यानी फैलनेवाला, रसादि धातुओंसे अलग, कोमल, प्रशस्त और प्राणोंका उत्तम आधार है। "चरक"में लिखा है—हृदयमें जो किसी कदर पीले रङ्गका शुद्ध रुधिर—.खून दीखता है, उसीको "ओज" कहते हैं। उसके नाश होनेसे शरीरका भी नाश हो जाता है।

"सुश्रुत"में लिखा है—ओज रूपी बलसे ही मांसका सञ्चय और स्थिरता होती है। उसीसे सब चेष्टाओंमें स्वच्छन्दता, स्वर, वर्ण, प्रसन्नता तथा बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंमें और मनमें अपने-अपने कामकी उत्कण्ठा होती है, यानी ओज-बलकी शक्तिसे ही आँख देखनेका, कान सुननेका, जीभ चखनेका, गुदा मल त्याग करनेका काम करती है, इसी तरह शेष और इन्द्रियाँ भी अपने-अपने काम करती हैं। शरीरके प्रत्येक अवयवमें यह "ओज" व्याप्त है। इसके व्याप्त न होनेसे, मनुष्योंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जर्जरीभूत हो जाते हैं।

ओज-क्षयके कारण।

चोट लगनेसे, क्षीणतासे, क्रोधसे, शोकसे, ध्यानसे, परिश्रम और क्षुधासे ओजका क्षय होता है। क्षीण हुआ ओज मनुष्योंकी धातु प्रभृतिको नष्ट करता है।

ओज-क्षयके लक्षण।

"चरक"मे लिखा है—ओजका क्षय होनेसे प्राणी सदैव भयभीत रहता है, शरीर कमजोर हो जाता है, हर समय चिन्ता बनी रहती है, सारी इन्द्रियॉ व्यथित हो जाती है, शरीर कान्तिहीन, रूखा और क्षीण हो जाता है।

"सुश्रुत"मे लिखा है—ओजकी विकृतिके तीन रूप होते हैः—(१) पतन, (२) बिगड जाना और (३) क्षय हो जाना।

जब ओजका पतन होता है, तब जोडोमे विश्लेप, अङ्गोका थक जाना, दोषोका च्यवन और क्रियाओका अवरोध,—ये लक्षण होते है। जब ओज बिगड जाता है,—तब शरीरका रुकना, भारी होना, वायुकी सूजन, वर्ण यानी रङ्गका बदल जाना, ग्लानि, तन्द्रा और निद्रा,—ये लक्षण होते है। जब ओजका क्षय होता है,—तब मूर्च्छा, मास-क्षय, मोह, प्रलाप और मृत्यु,—ये लक्षण होते है।

वायुकी वृद्धिके लक्षण।

चमड़ेमे सख्ती, दुबलापन, कालापन, अङ्गोका फडकना, गरम आहार-विहारकी इच्छा, निद्राका नाश, बलकी कमी और मलका कड़ापन—ये लक्षण वायु-वृद्धिके है।

पित्तकी वृद्धिके लक्षण।

प्रत्येक चीजका पीला दिखाई देना, सन्ताप, शीतल आहार-विहारकी इच्छा, थोड़ी नीद, मूर्च्छा, बलकी हानि, हड्डियोकी कमजोरी तथा मल, मूत्र और ऑखोका पीला होना—ये लक्षण पित्त-वृद्धिके है।

कफ-वृद्धिके लक्षण।

सब चीजोका सफेद दीखना, शीतलता, स्थिरता, भारीपन, आलस्य, ऑखोका झिपना और नींद आना—ये लक्षण कफ-वृद्धिके है।

रस-वृद्धिके लक्षण।

रसकी वृद्धि होनेसे जी मिचलाता और मुॅहमे ढेर पानी गिरता एव लार बहती है।

रक्त-वृद्धिके लक्षण।

रक्त यानी ख़ूनकी वृद्धि होनेसे शरीर और आँखोंमें सुर्खी छा जाती है और ख़ूनसे नसें भर जाती है।

मांस-वृद्धिके लक्षण।

मासकी वृद्धि होनेसे कमर, कन्धे, गाल, होठ, लिङ्ग, जानु, भुजा और जाँघ—ये अङ्ग मोटे हो जाते हैं और शरीर भारी हो जाता है।

मेद-वृद्धिके लक्षण।

मेद या चरबीकी वृद्धिसे शरीर चिकना हो जाता है, पेट और पसवाड़े बढ़ जाते हैं, श्वास और खाँसीके रोग हो जाते हैं, एवं शरीरसे बदबू निकलती है।

अस्थि-वृद्धिके लक्षण।

अस्थि या हड्डियों के बढ़नेसे अधिक हाड़ और दाँत पैदा होते हैं।

मज्जा-वृद्धिके लक्षण।

मज्जाके बढ़नेसे सारे शरीर और आँखोंमें भारीपन होता है।

शुक्र-वृद्धिके लक्षण।

शुक्र या वीर्यके बढ़नेसे वीर्यकी पथरी हो जाती है तथा मैथुनके बाद अधिक वीर्य गिरता है।

विष्ठा-वृद्धिके लक्षण।

विष्ठा या मलके बढ़नेसे पेटमें अफारा, भारीपन होता है और नलोंमें शूल चलता है।

मूत्र-वृद्धिके लक्षण।

पेशाबके बढ़नेसे बार-बार पेशाब होता है, पेड़ूमें दर्द और अफारा होता है।

पसीनोंकी वृद्धिके लक्षण।

पसीनोंके बढ़नेसे चमड़ेमें बदबू आती और खुजली होती है।

आर्त्तवकी वृद्धिके लक्षण।

स्त्रियोंके मासिक ख़ूनके बढ़नेसे शरीर टूटता, ख़ून जियादा गिरता और कमजोरी होती है।

दुग्धकी वृद्धिके लक्षण ।

दूधके बढ़नेसे कुचायें मोटी हो जाती हैं, दूध अपने-आप टपकता और तनावका-सा दर्द होता है ।

गर्भकी वृद्धिके लक्षण ।

गर्भके जियादा बढ़नेसे पेट बहुत बढ़ जाता और शरीरपर सूजन चढ़ आती है ।

धातुओंकी क्षय-वृद्धि जाननेका उपाय ।

रस कितना घटा है, वीर्य्य कितना बढ़ा है, वायुकी कितनी वृद्धि हुई है, पित्त कितना क्षीण हुआ है, इन सवालोंके हल करनेका यानी धात्वादिकोंकी घटती-बढ़तीका ठीक परिमाण जाननेका कोई सहज उपाय नहीं है । इनकी समता जाननेका आरोग्यताके सिवा और कोई उपाय नहीं है, अर्थात् जब कि मनुष्य स्वस्थ हो, शास्त्रानुसार स्वस्थता-आरोग्यताके लक्षण मिलते हों, तब हमे समझ लेना चाहिये कि, वातादि दोष, धातु और मल समान हैं, कोई घटा-बढ़ा नहीं है और जब कि मनुष्य रोगी हो, तब बुद्धिको तकलीफ देकर, अनुमानसे पता लगाना चाहिये कि, क्या घटा और क्या बढ़ा है । "सुश्रुत"मे कहा है—

दोषादीनां त्वं समतामनुमानेन लक्षयेत् ।
अप्रसन्नेन्द्रिय वीक्ष्य, पुरुष कुशलोभिषक् ॥

अप्रसन्न इन्द्रियोंवाले पुरुषोंको देखकर, चतुर वैद्यको अनुमानसे, दोषों, धातुओं और मल-समूहकी समानताका पता लगाना चाहिये । सीधे शब्दोंमे इस तरह समझिये,—चतुर वैद्यको रोगीको देखकर अनुमानसे वातादि दोषों, रस रक्तादि धातुओं और मलोंकी घटती-बढ़तीका पता लगाना चाहिये । जौनसा दोष या धातु या मल घटा हुआ दीखे, वैद्य उसके बढ़ानेका उपाय करे और जो बढ़ा हुआ दीखे, उसके घटानेकी चेष्टा करे । जब तक घटे-बढे दोषादि समान न हो जायँ, तब तक उपाय करता रहे । जब दोषादि समान हो जायँगे, तब मनुष्य स्वस्थ हो जायगा ।

जब मनुष्य स्वस्थ यानी नीरोग होता है, तब वात, पित्त और कफ ये तीनो दोष, रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सातों धातु और मल-मूत्र आदि समान होते हैं, जठराग्नि भी सम होती है, विषम, तीक्ष्ण या मन्द नहीं होती। हाजमेकी शिकायत नहीं रहती, भोजन पच जाता है, पाखाना-पेशाब ठीक होता है। दस्तकब्ज या पतले दस्त वगैरःकी शिकायत नहीं रहती। पेशाब जलकर या थोड़ा-थोड़ा अथवा बहुत जियादा नहीं होता। शरीरमें आलस्य या अति चंचलता नहीं होती। आत्मा, इन्द्रियाँ और मन—ये सब प्रसन्न रहते हैं।

धात्वादिकोंके घटाने-बढ़ानेके लिये इशारे।

(१) अगर आप किसी दोषको घटा हुआ देखें, तो जिसको घटा हुआ देखें, उसीके बढ़ानेवाले आहार-विहार आदि रोगीको बतावें।

(२) अगर आप रस रक्त आदि किसी धातुको घटी हुई देखें, तो जिसको घटी हुई देखें, उसीके बढ़ानेके उपाय रोगीको बतावें।

(३) स्वेद या पसीनोंकी क्षीणता देखें, तो आप तेल उबटन लगवावें और स्वेद-कर्मकी व्यवस्था करें। आर्त्तवकी क्षीणतामें शोधन करें और गरम पदार्थोंको काममें लावें। अगर छातियोंमें दूध कम हो गया हो, तो कफ बढ़ानेवाले पदार्थ सेवन करावें। अगर गर्भ क्षीण हो, तो आप चिकने और स्वाद भोजन बतावें और हो सके तो गर्भाशयमें दूधकी वस्तिका प्रयोग करें यानी दूधकी पिचकारी लगावें।

(४) दोषों और धातुओं तथा मलोंकी वृद्धि देखें, तो जिसकी वृद्धि देखें, जिसको बढ़ा हुआ देखें उसे आप यथाविधि शोधन करके इस तरकीबसे घटावें कि, जितना बढ़ा हो उतना घट जाय, ऐसा न हो कि, बहुत ही घटकर उलटा क्षय हो जाय। बढ़े हुएको घटाना मुनासिब है, क्योंकि पहली-पहली धातु बहुत अधिक बढ़ जानेसे अगली-अगलीको बढ़ाती है। जैसे, रस बहुत बढ़ जाता है, तो रक्तको बढ़ाता है। रक्त बहुत बढ़ जाता है, तो मांसको बढ़ाता है। इसी तरह मांस मेदको, मेद अस्थिको और अस्थि मज्जाको और मज्जा वीर्य्यको बढ़ाती है।

प्रकृति-विचार।

वीर्य, रुधिर, गर्भिणीका किया हुआ भोजन, उसकी चेष्टा और गर्भाशयके भीतर जो दोष अधिक हो, उस दोषके अनुसार समस्त मनुष्योंकी प्रकृतियाँ होती है। मनुष्योकी प्रकृतियाँ सात प्रकारकी होती है।

सात प्रकारकी प्रकृतियाँ।

(१) वात-प्रकृति।

(२) पित्त-प्रकृति।

(३) कफ-प्रकृति।

(४) वातपित्त-प्रकृति।

(५) वातकफ-प्रकृति।

(६) पित्तकफ-प्रकृति।

(७) वातपित्तकफ-प्रकृति।

वात-प्रकृतिके लक्षण।

वात प्रकृतिवाला मनुष्य जागनेवाला, थोडे बालोवाला, फटे हुए हाथ-पॉववाला, दुर्बल, जल्दी चलनेवाला, अधिक बोलनेवाला, रूखे शरीरवाला और स्वप्नमे आकाशमे चलनेवाला होता है, अर्थात् जिसकी प्रकृति वातकी होती है, उसमे उपरोक्त चिह्न होते है। (भावप्रकाश)

"वाग्भट्ट"ने लिखा है—वात-प्रकृतिवाला पुरुष दुष्ट-स्वभाव होता है। उसके बाल धूसर रङ्गके होते है, शरीर फटा हुआ होता है, उसे शीत अच्छा नही लगता, उसकी धृति, स्मृति, बुद्धि और चेष्टा चचल होती है तथा मैत्री, दृष्टि और चालमे भी चंचलता होती है। वह बहुत बोलने-

वाला होता है। इस प्रकृतिवालेमे पित्त कम होता है। वह कमजोर होता है, उम्र कम होती है, नीद कम आती है, हकलाकर बोलता है, नास्तिक होता है, अधिक खानेवाला और विलासी होता है, गाने, हॅसने, शिकार खेलने और झगड़ा करनेमे उसकी रुचि अधिक होती है। मीठे, खट्टे, चरपरे और गरम पदार्थ उसके अनुकूल होते हैं। उसका शरीर दुर्बल और लम्बा होता है। उसके पानी वगैरः पीते समय आवाज होती है। वह मजबूत, जितेन्द्रिय, उत्तम, स्त्रियोका प्यारा और अधिक सन्तानवाला नहीं होता। उसकी ऑखे रुखी, किसी कदर धूमली, गोल और असुन्दर अथवा मुर्देकी-सी होती है, जो सो जानेपर भी खुली रहती हैं। स्वप्नमे वह पहाड़, वृक्ष और आकाशमे चलता है। वह भाग्यहीन और दूसरेको देखकर जलनेवाला और चोर होता है। इस प्रकृतिवालेका स्वर और रूप कुत्ता, गीदड़, ऊँट, गिर्द्ध, चूहा, कव्वा और उल्लूके समान होता है।

"चरक"मे लिखा है—वायुके रुक्ष गुणके कारण इस प्रकृतिवालेका शरीर रूखा और दुर्बल, स्वर रूखा और क्षीण तथा जर्ज्जर होता है। इसे नींद नहीं आती। वायुके लघुत्व गुणके कारण इसकी चाल, चेष्टा, आहार और व्यवहार हलके और चपल होते है। वायुके चलत्व गुणके कारण शरीरके जोड़, हड्डी, भौ, ठोड़ी, होठ, जीभ, मस्तक, कन्धे और हाथ-पैर मजबूत नहीं होते। वायुके बहुत्वसे यह बहुत बोलने-वाला होता है। इसके शरीरपर नस ही नस दिखाई देती हैं। वायुके शीघ्रत्वके कारण इसे क्षोभ, उद्योग और विकार तथा त्रास, रोग और वैराग्य जल्दी होता है। जरासी देरमे ज्ञानवान और जरासी देरमे ज्ञानको भूलकर मूर्ख हो जाता है। वायुके शीतल होनेके कारण सर्दीको बर्दाश्त नहीं कर सकता। शीत, कफ, स्तम्भ जल्दी ही होते है। वायुके कठोर गुणके कारण इसके बाल, मूँछे, रोएँ, नाखून, दॉत और मुँह तथा हाथ-पैर सारे अङ्ग कड़े होते है। सब अङ्ग फटे-से

होते है। चलते समय जोड़ोसे आवाज़ निकलती है। इस प्रकृति-वाला बलहीन, कम-उम्र, कम औलादवाला और दरिद्री होता है।

"हारीत-संहिता" में लिखा है—जिसका रङ्ग काला हो, शरीर बहुत दुबला हो, चपल हो, बाल थोडे हो, बलवान और समर्थ हो, दाँत बहुत ही छोटे-छोटे हो, बहुत बोलनेवाला हो, चलने-फिरनेमे समर्थ हो, बहुत कूदनेवाला हो, लोभी हो, सत्वगुण-रहित हो, खट्टे रसको पसन्द करता हो, पसीनो और मालिशसे जिसे सुख होता हो,—वह वात प्रकृतिवाला होता है।

पित्त-प्रकृतिके लक्षण।

जिसके बाल वेसमय सफेद हो गये हो, शरीरका रंग गोरा हो, स्वभाव क्रोधी हो, पसीने जियादा आते हो, खूब चतुर हो, बहुत खाता हो, आँखें लाल रहती हो, स्वप्नमे आग, बिजली, सूर्य प्रभृति पदार्थोंको देखता हो—ऐसे लक्षणवाला मनुष्य पित्त-प्रकृति होता है। (भावप्रकाश)

जिसको भूख-प्यास बहुत लगती हो, जिसका अंग गोरा और गर्म हो, हाथ पॉव मुँहका रंग लाल हो, बाल पीले और रोएँ थोड़े हो, शूर और अत्यन्त मानी हो, फूल और चन्दनादिके लेपको चाहता हो, पवित्र और अच्छे चाल-चलनवाला हो, अपने अधीन रहनेवालोपर दया करता हो, वैभव, साहस और बुद्धि-बलयुक्त हो, डरे हुए दुश्मनकी भी रक्षा करनेवाला हो, स्मरण-शक्ति पूरी हो, स्त्री-गमन न करता हो, अल्प वीर्य और कामदेववाला, पानीकी चलती हुई लहरके समान कान्तिवाला, मीठे, कड़वे, कसैले और शीतल अन्नमे रुचि रखनेवाला, धर्मसे द्वेष रखनेवाला, बहुत पसीनेवाला, शरीरमे बदबू आती हो, अधिक क्रोधी. अधिक ईर्षावाला, अधिक खानेवाला, अधिक मल त्यागनेवाला, स्वप्नमे कनेर ढाक प्रभृतिके फूल, जलती हुई दिशा, उल्कापात, बिजली, सूर्य और अग्निको देखनेवाला मनुष्य पित्त-प्रकृति होता है। इसकी आँखोंकी पुतलियाँ पीली होती है। इसे सर्दी पसन्द होती है। सूर्यकी चमक, शराब और क्रोधसे इसकी आँखें लाल

हो जाती है। इस प्रकृतिवाला पुरुष विद्वान्, मध्यम आयुवाला, बलवान और क्लेशसे डरनेवाला होता है। पित्त-प्रकृतिवालोका स्वभाव बाघ, रीछ, बन्दर, बिलाव और भेड़िया—इन जानवरोसे मिलता है।

"चरक" मे लिखा है—पित्त-प्रकृतिवालोको गरमी बर्दाश्त नही होती। इनका शरीर कोमल और साफ होता है। शरीरमे झाँई, तिल और खुजलीकी अधिकता होती है। डाढ़ी, मूँछ, रोम और बाल प्रायः नर्म, छोटे और भूरे होते है, इनकी छाती, बगल, मुँह और मस्तक तथा सारे शरीरमे सड़ी-सड़ी दुर्गन्ध आती है। ऐसे पुरुष मध्यबली, मध्यायु और ज्ञानवान तथा धनवान होते है।

"हारीत-संहिता" मे लिखा है—जिसका रंग गोरा हो या पीला रंग सफेदीसे मिला हो, नाजुक हो, प्रीति रखनेवाला हो, शीतल पदार्थोंपर जिसका मन चलता हो, जिसके नेत्र पीले-पीलेसे हो, स्वभाव तेज हो, मगर तेजी थोड़ी देर रहती हो, शरीरपर बाल थोड़े हो, चंचलता अच्छी लगती हो, कडवे रसको खानेवाला हो, अपनी तारीफ चाहनेवाला हो इत्यादि लक्षण जिसमे हो उसे पित्त-प्रकृतिवाला समझो।

कफ-प्रकृतिके लक्षण।

कफका स्वरूप चन्द्रमाके समान है, इसलिये कफ-प्रकृतिवाला मनुष्य सौम्य होता है। इसकी सन्धि, हड्डी और मांस आपसमे मिले हुए, चिकने और गूढ़ होते है। यह भूख, प्यास, दुःख और क्लेशसे घबराता नही तथा बुद्धिमान, सतोगुणी और वचन पालनेवाला होता है। इसके शरीरका रंग प्रियंगू, दूब, मूँज, डाभ, गोरोचन, कमल और सोनेके समान होता है। इसकी भुजाएँ लम्बी, छाती चौडी और पुष्ट तथा कपाल बड़ा होता है। बाल घने और काले होते है, अङ्ग कोमल, शरीर समान और सुन्दर होता है। इसमे ओज यानी सामर्थ्य अधिक होती है। यह शृङ्गार-रसमे मग्न रहता है। इसके पुत्र और नौकर बहुत होते है। यह धर्मात्मा, कठोर वचन न बोलनेवाला, चुपचाप शत्रुके साथ बहुत

दिनो तक बैर रखनेवाला होता है। यह मदोन्मत्त हाथीके समान होता है। इसकी आवाज बादल, समुद्र, मृदङ्ग और शंखके समान होती है। इसकी याददाश्त अच्छी होती है। यह नम्र और उद्योगी होता है तथा बाल्यावस्थामे बहुत कम रोनेवाला और चपलताहीन होता है। कड़वे, कसैले, तीक्ष्ण, गरम, रूखे और अल्प भोजन करनेवाला होता है, तिसपर भी बलवान होता है। आँखोके कोनोमे ललाई होती है। आँखें चिकनी, बडी, लम्बी और स्पष्ट होती है। इसके पलक अधिक और सफेद तथा काले-काले होते है। इसको क्रोध और क्षुधा कम होती है। यह बुद्धिमान, काम करनेमें देर करनेवाला, मनोहर बोलनेवाला, क्षमावान, निद्रालु लोभहीन और पराया ऐहसान माननेवाला होता है। इसका हृदय गम्भीर और छाती चौडी होती है, स्वभाव सरल होता है। यह विद्वान्, लजीला, गुरुभक्त और प्रेमको स्थिर रखनेवाला होता है। यह स्वप्नमें कमल चकवा-चकई पक्षियोके पक्तियुक्त जलाशयोको देखता है। कफ-प्रकृतिवाला विष्णु, इन्द्र, रुद्र, वरुण, गरुड, अग्नि, हंस, हाथी, सिंह, घोड़ा, गाय और बैलके-से स्वभाववाला होता है।

"चरक" में लिखा है—कफ-प्रकृतिवालोका शरीर चिकना, दिखनेमे सुखदाई, नाजुक और साफ होता है। इसके वीर्य बहुत होता है और यह अधिक मैथुन करता है। इसके सन्तान बहुत होती है। इसका शरीर परिपुष्ट होता है, किन्तु आहार और चेष्टा मन्द होते है इत्यादि। यह मनुष्य बलवान, धनवान, विद्वान्, ओजवाला और आयुवाला होता है।

"हारीत-संहिता" मे लिखा है—जिसका रंग सुन्दर चिकना और श्याम हो, नेत्र सफेद हो, बाल सुन्दर हो, रोम और नख लम्बे हो, गम्भीर बोलनेवाला हो, ऊँघना, सोना और पढ़ना-लिखना जिसे अच्छे लगते हों, कड़वा और चरपरा रस खानेवाला हो, शरीरमें मोटा हो, चिकने रसको चाहता हो, गाना-बजाना पसन्द करनेवाला हो, सहनशील, कसरती और भोगी हो—ऐसा मनुष्य कफ-प्रकृतिवाला होता है।

अन्यान्य प्रकृतियोंके लक्षण।

जिसमे वात और पित्त-प्रकृति दोनोके लक्षण हो, वह वात-पित्त प्रकृति और जिसमे वात और कफके लक्षण हो, वह वात-कफ-प्रकृति, इसी तरह जिसमे पित्त और कफके लक्षण हो, वह पित्त-कफ-प्रकृति होता है। इसी तरह जिसमे तीनो दोपोके यानी तीनो प्रकृतियोके लक्षण हो, वह त्रिदोपज-प्रकृति होता है।

वहुतसे आचार्य कहते है, मनुष्योंकी प्रकृति पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी और आकाश—इन पच महाभूतोसे वनी है। पवन वायु है, अग्नि पित्त है, जल कफ है। इस हिसावसे पवन, जल और अग्नि—इन तीन प्रकृतियोका वयान ऊपर कर दिया गया है। पृथ्वी और आकाश-प्रकृतिवाले मनुष्योंके लक्षण सुनिये—

जिनका स्वभाव स्थिर है, जिनका शरीर मजवूत है, जो क्षमाशील है, उनको "पृथ्वी-प्रकृति" कहते है।

जो शुद्ध है और जो वहुत दिन जीते है, वे "आकाश-प्रकृति" है।

"चरक" और "हारीत"मे सम-प्रकृति चौथी लिखी है—जिसमे कई तरहके मिले हुए रंग हो, जो ख़ूवसूरत हो, धीर-गम्भीर हो, स्त्रीको चाहनेवाला हो, वोझको सह सकनेवाला और भोगी हो, जिसमे ये सव लक्षण मिलते हो, उसे "सम-प्रकृतिवाला" कहते है।

शुद्ध वात प्रकृति, शुद्ध पित्त प्रकृति, शुद्ध कफ प्रकृतिवाले आदमी वहुत ही कम मिलते हैं। मिले-जुले लक्षणोवाले लोग वहुत देखनेमे आते है। लक्षणोके मिलानेसे प्रकृतिका ज्ञान हो जाता है। जैसे, किसीमे कुछ वातके और कुछ पित्तके लक्षण मिले, उसे "वात-पित्त प्रकृति" समझ लो।

एक वैद्यराजने अपने रचे हुए ग्रन्थमे लिखा है कि, शरीरका रंग प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोसे पूर्व्वाचार्य्योंके लिखनेके अनुसार नही मिलता, उनकी यह वात ठीक है। चमड़ेकी रङ्गत पृथ्वीपर निर्भर है। यूरोप-

वाले, काश्मीरवाले, शीत देशोंके रहनेवाले गोरे होते है। मदरासी और ऐबीसीनियावाले सभी काले होते है। चीनी और जापानी पीले होते है। जहाँ सभी गोरे और सभी काले होते है, वहाँ प्रकृति-परीक्षाके समय शरीरके रङ्गका विचार करना ही वृथा है। जहाँ सब मेलके आदमी पैदा होते है, वही रङ्गपर ध्यान देना चाहिये।

प्रकृतिकी परीक्षा करना सहज काम नही है, इसीसे आजकल हम तो किसी बड़े-से-बड़े वैद्यको रोगीकी प्रकृतिकी जाँच करते नही देखते। इतनी फुरसत ही नहीं, जो इतनी पूछताछ करे। हमने ऊपर तीन-तीन ग्रन्थोंसे प्रकृति-लक्षण उद्धृत करके लिखे है। किन्तु पूरे लक्षण हमने "वाग्भट्ट"से ही लिखे है। "चरक" और 'हारीत'के हमने वे ही लक्षण लिखे है, जिनपर हमे अपने पाठकोंका डबल ध्यान दिलाना है अथवा जहाँ कुछ मत-भेद है या जो कम-जियादा है। इन लक्षणोंको हृदयस्थ कर लेने और बारबार पहचाननेका अभ्यास करनेसे प्रकृति-परीक्षा आ जायगी। चिकित्सामे इसकी बड़ी जरूरत है। "चरक"मे लिखा है:—

तथाबलवतिबलवद्व्याधिपरिगते स्वल्प
बलमौषधमपरीक्षकप्रयुक्तमसाधक भवति
तस्मादातुरं परीक्षेत, प्रकृतितश्च विकृतितश्च
सारतश्च संहननतश्च सात्म्यतश्च सत्वतश्चाहार
•शक्तिश्च व्यायाम शक्तितश्चे वयस्तश्चेति

जिस तरह हलके रोगवालेको अति बलवान दवा देना अच्छा नहीं, उसी तरह बलवान रोगवालेको कमजोर दवा देना अनिष्टकारक है, इसलिये रोगीकी प्रकृति, विकृति, सार, शरीर, सात्म्य, सत्व, आहार-शक्ति, परिश्रम-शक्ति और अवस्थाकी परीक्षा करनी उचित है।

एक शंका रह गई है, वह यह कि वात, पित्त और कफ प्रकृतिके कारण है। ऐसी दशामे इनमेसे जो दोष प्रकृति-रूपसे अधिक हो, वह अपने द्वारा होनेवाले रोगोंको उत्पन्न क्यों नहीं करते ?

इसका जवाब या समाधान यह है कि, जिस तरह विषसे पैदा हुआ कीड़ा विषसे पीड़ित नहीं होता, उसी तरह प्रकृतिगत दोष उसी प्रकृतिवाले मनुष्योंको पीड़ित नहीं करते। इसका मतलब यह है कि, जिस तरह विषसे कीड़ा मरता नहीं, परन्तु उसे दाह आदि पीड़ा किसी कदर होती है, उसी तरह उस-उस प्रकृतिवाले मनुष्योंको उस-उस प्रकृतिके कारण-रूप दोषोंसे ज्वर वगैरः जोरदार बीमारी नहीं सताती, किन्तु हाथ-पैर फूटना, बहुत पसीने आना, बहुत नींद आना प्रभृति हलकी-हलकी तकलीफें होती रहती हैं। प्रकृतिगत दोषका न कोप होता है न शान्ति होती है और न वह बदलता है। वह तो मृत्युकाल तक प्रकृतिके स्वभावके अनुसार ही बना रहता है।

चिकित्सा बल और देशके प्रमाणकी अपेक्षा करती है। अगर चिकित्सक बलकी परीक्षा किये बिना, दुर्वल रोगीको अति बलवान यानी बहुत तेज दवा दे दे, तो रोगी मर जाय, क्योकि कमजोर रोगी बहुत तेज, जोरदार, बहुत गर्म या बहुत ठण्डी दवाको तथा अग्नि-कर्म और क्षार-कर्मको नहीं सह सकता। बहुत तेज दवा कमजोर रोगीको मार डालती है। इसलिये वैद्यको, दुर्वल रोगी हो तो मुलायम और हलकी दवा देनी चाहिये, ऐसी दवा न देनी चाहिये, जिससे दुःख हो। अगर तेज दवा ही देनेकी जरूरत हो, तो थोड़ी-थोडी देनी चाहिये, जिससे कोई उपद्रव न हो।

जिस तरह दुर्वलको बलवान दवा देना अच्छा नहीं, उसी तरह बलवान रोगीको कमजोर दवा देना भी ठीक नहीं है। इससे अनिष्ट ही होता है, रोग बढ़ जाता है। इसलिए रोगीकी बल-परीक्षा करनी जरूरी है। बिना बलकी परीक्षा किये कैसे जान सकते है कि, रोगी बलवान है या निर्वल, जोरदार दवा सह सकेगा या कमजोर दवा, अग्नि-कर्म या क्षार-कर्म अथवा अस्त्र-चिकित्सा यानी चीरफाड़को बर्दाश्त कर सकेगा या नहीं।

"सुश्रुत" मे लिखा है—बल, ओज और दुर्वलताकी परीक्षा करनी चाहिये, यानी यह देखना चाहिये कि, यह दुर्वलता रोगीके स्वभावसे है या किसी रोगसे हो गई है अथवा बुढ़ापेसे हो गई है, अथवा चिन्ता और फिक्रसे हुई है। क्योकि बलवानको ही दवा और आहार आदि पचते और लाभ पहुँचाते हैं, इसलिए सब आधारोमे बल ही प्रधान है।

बहुतसे दुबले बलवान होते हैं और बहुतसे मोटे निर्बल होते हैं। इसलिए वैद्यको, चित्त स्थिर करके, मिहनतके साथ बलकी परीक्षा करनी चाहिये।

"चरक"में लिखा है, चिकित्सक रोगीका शरीर देखकर धोखा न खावे। रोगीको हृष्ट-पुष्ट समझकर बलवान न समझ ले, दुबला-पतला देखकर दुर्बल न समझ ले, अनेक मोटे निकम्मे और दुबले बलवान देखनेमें आते हैं। चींटी दुबली-पतली और छोटी होती है, मगर अपने शरीरसे दूना बोझ ढो ले जाती है। इससे साबित होता है कि असल चीज सार है, इसलिए सारकी परीक्षा करनी चाहिये।

सार-परीक्षा।

बल-परीक्षा करनेके लिए "चरक"में आठ प्रकारके सारोंकी व्याख्या की है। उन सारोंकी परीक्षा करनेसे बलकी यथार्थ परीक्षा होती है। आठ प्रकारके सार ये हैं:—

(१) त्वचा (चमड़ा), (२) रुधिर (.खून), (३) मांस, (४) मेद, (५) अस्थि (हड्डी), (६) मज्जा, (७) शुक्र (वीर्य्य) और (८) सत्व।

त्वक्-सार

पुरुषका चमड़ा चिकना, पतला, नर्म, प्रसन्न, सूक्ष्म, ना.जुक, रोमांच और कान्तियुक्त होता है। "त्वकसार" एक गुण होनेके कारण, यह प्राणी सुखी, सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य्यवान, भोगी, बुद्धिमान, विद्वान्, नीरोग, मजबूत और दीर्घायु यानी बड़ी उम्रवाला होता है।

रक्त-सार

पुरुषके कान, नेत्र, मुँह, जीभ, नाक, होठ, हाथ-पैरके नाखून, ललाट और लिङ्ग—ये लाल, शोभायुक्त और दीप्तिवान होते हैं। ऐसा पुरुष सुखी और उन्नतिशील होता है तथा मेधावी (चतुर, समझदार, विद्वान्), मनस्वी (दानी, पण्डित), सुकुमार (नाजुक), मध्य बल-वाला और तकलीफ बर्दाश्त करनेकी सामर्थ्यवाला होता है।

मांस-सार

पुरुषकी कनपटी, ललाट, गर्दनका पिछला हिस्सा, नेत्र, गाल, ठोड़ी, गर्दन, कन्धे, बगल, छाती, हाथ-पैर और शरीरके जोड़—ये सब मांसल और मज़बूत होते है। यह पुरुष क्षमावान्, धीरजवान्, निर्लोभी, धनी, विद्वान्, सुखी, नम्र, निरोगी, बली और दीर्घायु होता है।

मेद-सार

पुरुषके वर्ण (रंग), आवाज, नेत्र, बाल, रोम, नाखून, दाँत, होठ, मल और मूत्र ये विशेष करके चिकनाहट लिए हुए होते है। यह पुरुष धनी, ऐश्वर्यशाली, सुख-भोगी, दाता, सरल-स्वभाव और सुशील होता है।

अस्थि-सार

पुरुषकी एड़ी, टखने, घोटू, कलाई, हँसली, मस्तक, सारे जोड, नाखून और दाँत,—ये सब स्थूल होते है। यह पुरुष महा उद्योगी, तरह-तरहके काम करनेवाला, क्लेश सहनेवाला, मजबूत शरीरवाला और आयुवाला होता है।

मज्जा-सार

पुरुषका शरीर पतला और बलवान् होता है। इसका स्वर और वर्ण ये चिकने होते है। इसकी सारी सन्धियाँ स्थूल, लम्बी और गोल होती है। यह दीर्घायु होता है।

शुक्र-सार

पुरुष ज्ञानी, धनी और पुत्रवान होते है, सम्मान-योग्य, सौम्य, सुन्दर और .खूबसूरत होते है। नेत्रोमे दूधसा भरा हुआ दीखता है और उनके अन्दरसे प्रसन्नताकी आभा झलकती है, समान और सुडौल शरीर तथा दन्त-पंक्ति पर्वत-शिखरकी पंक्तिके समान होती है, वर्ण और स्वर प्रसन्न और स्निग्ध होते है, चेहरेपर दीप्ति होती है, चूतड़ भरे हुए होते है, ऐसे पुरुष स्त्रियोके प्यारे, कमनीय और बलवान होते हैं।

सत्व-सार

पुरुष ऐश्वर्य्य-सम्पन्न, आरोग्य, सम्मान-योग्य, सन्तानवाले, स्मरण-शक्ति-सम्पन्न, भक्ति रखनेवाले, कृतज्ञ यानी पराया ऐहसान माननेवाले, विद्वान्, पवित्र, उत्साही, चतुर, धीर, समयपर पराक्रमके साथ युद्ध करनेवाले, विषाद-रहित यानी प्रसन्न-चित्त, गम्भीर-बुद्धि और कल्याण चाहनेवाले होते है ।

सकल-सार

युक्त पुरुष अति बलवान, अति गौरव-युक्त, कष्ट सहनेवाला, सभी कामोको आप कर डालनेकी आशा करनेवाला, कल्याणकारी विषयोमे मन लगानेवाला, मजबूत शरीरवाला और स्थिर गतिवाला होता है । इसका स्वर स्निग्ध—चिकना, गम्भीर, बड़ा और गूँजनेवाला होता है । यह पुरुष सुखी, ऐश्वर्य्यवान्, धनका भोगनेवाला और सम्मानका पात्र होता है । सकलसारवालेको बुढापा देरसे आता है और रोग भी जल्दी-जल्दी नही होते, अगर होते भी है, तो थोड़े होते है । इसकी सन्तान इसीके समान गुणवाली होती है ।

जो इन लक्षणोके विपरीत लक्षणवाला होता है, उसे "असार" कहते है । जिसमे मध्य लक्षण हो, उसे "मध्यसार" कहते है । इस तरह पुरुषोके बलका प्रमाण जाननेके लिए आठ सार कहे हैं ।

शरीरका सुघाट

या गठन देखकर भी बल जाना जा सकता है । जिसकी हड्डियाँ समान हो, जोड़ सब सुबद्ध हो, मांस और ख़ून भरा हुआ हो, उसे सुसंहत शरीरवाला कहते है । ऐसा पुरुष बलवान होता है । इसके विपरीत लक्षणवाला दुर्बल और बीचके लक्षणवाला मध्यबली होता है ।

सत्व-विचार

बहुतसे मनुष्य डील-डौल और गठन वगैरःसे बलवान दीखते है, मगर वह कष्ट ज़रा भी नही सह सकते । ज़रासी चीरफाड़ करने या

मामूली फोड़ेमे नश्तर लगाते समय हाय तोवा करके जमीन-आसमानको एक कर देते है। इसका क्या कारण है? ऐसे लोगोंका शरीर तो मजबूत दीखता है, मगर इनका मन कमजोर होता है। जिनका शरीर दुवला-पतला होता है, किन्तु मन वलवान होता है, वह वडे-वडे कष्टोंको सह लेते है और उफ नहीं करते। इसलिये रोगीके सत्व या मनकी भी वैद्यको परीक्षा करनी चाहिये।

"चरक" मे लिखा है—सत्व "मन" को कहते है। आत्माके साथ मनका सयोग होनेमे "मन" शरीरका पालन-पोपण करता है। सत्व या मन वलभेदके कारणसे तीन प्रकारका होता हैः—(१) उत्तम, (२) मध्यम और (३) अधम।

पवर-सत्ववाला प्राणी निज और आगन्तु कारणोंसे हुई घोर पीड़ाओंमे भी नहीं घवराता, क्योंकि उसमे सत्व गुण होता है। "सुश्रुत"मे लिखा है,—सत्ववान मनुष्य, जिसमे सतोगुणकी अधिकता होती है, अपने मनको कड़ा करके सव सह लेता है।

मध्यम-सत्ववाला (रजोगुण प्रधान मनुष्य) दूसरोंकी देखा-देखी या दूसरोंके साहस दिलाने या सहायता करनेसे पीडाको सह लेता है।

अधम-सत्व या हीन-सत्ववाला (तमोगुण-प्रधान मनुष्य) न तो आप धीरज धरता है और न दूसरोंकी सहायतासे धैर्य्य धरता है। ऐसा मनुष्य किसी तरह भी दुःखको चुपचाप नहीं सहता। ऐसे आदमीका डील-डौल देखनेका ही होता है। भय, शोक, अभिमान, लोभ और मोह ऐसे मनुष्यके साथी होते है। हीन-सत्व मनुष्य युद्धकी वात सुनने-मात्रसे, किसीके शरीरसे ख़ून गिरते देखकर अथवा सिह, व्याघ्र, वनमानुप प्रभृतिको देखकर वेहोश हो जाते है, अथवा उनके चेहरेका रङ्ग उतर जाता है।

सात्म्य-विचार

चिकित्सामे जिस तरह और परीक्षाओंकी जरूरत है, उसी तरह

सात्म्य परीक्षाकी भी जरूरत है। सात्म्य-परीक्षासे हमें रोगीका बला-बल, उसकी प्रकृति तथा और भी अनेक बातें मालूम हो सकती हैं।

"सुश्रुत"में लिखा है—देश, काल, ऋतु, रोग, मिहनत, जल, दिनमें सोना और रस प्रभृति जो रोगीकी प्रकृतिके विरुद्ध न हों, रोगीको नुकसान पहुँचानेवाले न हों, रोगीके मिजाजके मुआफिक हों—उन्हें "सात्म्य" कहते हैं। जिन पदार्थोंके सेवनसे रोगीको सुख हो, वे ही उसके लिए सात्म्य या मुआफिक हैं।

"चरक"में लिखा है, जिसके निरन्तर सेवन करनेसे उपकार मालूम हो, उसको 'सात्म्य' कहते हैं।

जिन प्राणियोंको घी, दूध, तेल, मास-रस और छहों प्रकारके रस सात्म्य यानी सुखकारी होते हैं, वे लोग बलवान, कष्ट सहनेवाले और दीर्घायु होते हैं।

जो लोग सदा रूखे पदार्थ सेवन करते हैं, जिन्हें एक ही रस सात्म्य या मुआफिक होता है, वह प्रायः अल्पबली—कमजोर और तकलीफको न सह सकनेवाले और अल्पायु होते हैं।

जिन लोगोंको अलग-अलग रस सात्म्य न हों, यानी जिन्हें अलग-अलग रसोंके सेवन करनेसे सुख न होता हो, कुछ तकलीफ होती हो, किन्तु मिले हुए रस सात्म्य यानी मुआफिक हों वह मध्यबली होते हैं।

देह-विचार।

देहकी परीक्षामें वैद्यको यह देखना चाहिये कि, शरीर मोटा है या दुबला, यथा-योग्य है या विकृत। जो वैद्य इन बातोंका विचार नहीं करते वे धोखा खाते हैं। मोटे और दुबले दोनों ही सदा रोगग्रस्त रहते हैं किन्तु दुबलेसे तो कहीं-कहीं पार पड जाती है, मगर मोटेके इलाजमें बड़ी हैरानी होती है, विशूचिका जैसे रोगोंमें तो सफलता कोसों दूर भागती है। दुबलेमें बल, पुरुषार्थ और कष्ट सहनेकी क्षमता नहीं होती, उसी तरह मोटे देखनेके ही मोटे होते हैं। मोटेके प्रायः सभी रोग बलवान होते हैं। 'चरक'

मे लिखा है—आठ तरहके पुरुष बुरे समझे जाते है (१) बहुत लम्बा, (२) बहुत ठिगना, (३) बहुत बालवाला, (४) बिल्कुल केश रहित, (५) बहुत काला, (६) बहुत ही गोरा, (७) बहुत मोटा और (८) बहुत दुबला।

मोटा आदमी

"सुश्रुत"मे लिखा है—शरीरका मोटापन और दुबलापन "रस"के कारणसे होता है। जो लोग कफकारक और क्षार-रहित पदार्थ सेवन करते है, एक भोजनके बिना पचे दूसरा भोजन कर लेते है, दिन-रात सोकर या बैठकर गुजारते हैं, मिहनत नहीं करते, और दिनमे सोया करते हैं—ऐसे लोग मोटे हो जाते है।

बहुत ही मोटापन अति तर्पण, भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थोंके सेवन, मिहनत न करने, स्त्री-प्रसग न करने, दिनमे सोने, चिन्ता न करने और पैतृक स्वभाव प्रभृति कारणोंसे होता है।

आयुर्वेदके मतसे बहुत मोटा और बहुत दुबला बुरा समझा जाता है। बहुत मोटे आदमीकी आयु थोड़ी होती है। उसे बे-समयमे बुढ़ापा घेर लेता है। शरीरके छोटे-छोटे छेद रुक जाते है। स्त्री-सङ्ग मे तकलीफ होती है। कमजोरी, बदबू, पसीने, बहुत भूख और प्यास—ये लक्षण होते है। मेद सहसा बढ़कर वात, पित्त और कफके अनेक रोग पैदा करके प्राण नाश करती है। मेद और मांसके बहुत बढ़नेसे चूतड, पेट और स्तन ये हलर-हलर हिलते है।

मेदस्वी या मोटे आदमीकी खाली मेदही बढ़ती है और धातुएँ नहीं बढ़तीं, इसीसे मोटा आदमी जल्दी मर जाता है। शरीरकी शिथिलता सुकुमारता, भारीपन आदिसे मोटेको बुढ़ापा घेर लेता है और रोमछिद्र रुक जाते है। वीर्यकी कमी और चरबी द्वारा मार्ग ढक जानेसे स्त्री-संग में अत्यन्त कष्ट होता है। धातुओंकी समानता न होनेसे कमजोरी, मेदके दोष और स्वभावसे बदबू, कफके संसर्गसे स्थूलता और परिश्रम न सह सकनेके कारण पसीने बहुत आते है। अग्निकी तीक्ष्णता और कोठोकी

वायुकी अधिकतासे भूख और प्यास बहुत लगती है। मेद यानी चरबीसे रोहोंके बन्द हो जानेके कारण, वायु जियादातर कोठेमे ही घूमता है और अग्निको तेज करके आहारको सुखा देता है। इसीसे मेदस्वी या मोटेको जल्दी खाना पच जाता है और वह बारम्बार खाना चाहता है। अगर खाना मिलनेमे जरा भी देर होती है, तो घोर रोगोमे फॅस जाता है। मोटे आदमीके पेटमे आग और हवा उसी तरह ऊधम मचाते है, जैसे दावानल वनमे ऊधम मचाकर वनको भस्म कर देता है।

क्योकि खाये हुए भोजन-पानका रस, विना पके ही, अत्यन्त मीठा होकर शरीरमे चरबी या मेद पैदा करता है। उस मेद या चर्बीके कारणसे ही मनुष्य मोटा या स्थूल हो जाता है।

स्थूल-शरीर या मोटे आदमीको क्षुद्र श्वास, प्यास, क्षुधा, निद्रा, शरीरमें बदबू, कण्ठसे घर-घर शब्द निकलना, अङ्गोमे थकान आना प्रति उपाधियाँ घेर लेती है। मेदकी कोमलताके कारण मोटा आदमी सब कामोंमे अशक्त रहता है। कफ और मेदसे शुक्र-मार्ग रुक जाते हैं; इसलिये मोटा आदमी बहुत ही थोड़ा मैथुन कर सकता है। कफ और मेदसे दूसरे रास्ते भी ढक जाते है; इसलिये अस्थि, मज्जा और शुक्र ये धातु भी नही बढ़ने पाते, इसीलिये मोटे आदमीमे बल नही होता।

बहुत मोटा आदमी प्रमेह, पिड़िका, ज्वर, भगन्दर, विद्रधि अथवा किसी वायु-रोगमे गिरफ्तार होकर यमसदनका राही होता है मोटे आदमीके स्रोत या धातु बहनेके रास्ते मेदसे ढके रहते है, इस कारणसे मोटे आदमीके प्रायः सभी रोग बलवान हो जाते है।

प्रत्येक मनुष्यको ऐसा उपाय करते रहना चाहिये, जिससे शरीर बीचकी अवस्थाका बना रहे, बहुत मोटा या दुर्बल न हो जाय। वैद्यको चाहिये कि मोटे शरीरको "कर्षण* चिकित्सा" द्वारा दुर्बल करे और

* कड़वे, कसैले, चरपरे रसका सेवन, अति स्त्री-प्रसंग, माठा और मधु,—कर्षण करनेवाले हैं।

दुर्बल शरीरको "बृहण* चिकित्सा" द्वारा मोटा करे। "चरक" मे लिखा है, वैद्य लंघन और बृहणसे चिकित्सा करे ।

मोटे आदमियोकी मुटाई कम करनेके लिये शिलाजीत, गूगल, गोमूत्र, त्रिफला, लोहचूर्ण यानी भस्मसार, रसौत, शहद, जौ, मूॅग, कोदो एवं कूटू प्रभृति रूखे और दुबले करनेवाले पदार्थ यथा-विधि सेवन कराने चाहिये। मोटेसे दुबले करनेवाले जितने उपाय है, उनमे कसरत या मिहनत सर्वश्रेष्ठ है। "चरक" मे लिखा है:—वातनाशक, कफमेद-हारक अन्नपान, रूखे उबटन, गिलोय और भद्रमोथेका काढा, त्रिफलेका काढ़ा, छाछ, बायबिडङ्ग, सोठ, जवाखार, मधु, जौ, आमलोका चूर्ण प्रभृति मुटाई नाश करनेमे हितकारी है। जिसे मुटाई नाश करनी हो, वह जागरण, स्त्री-प्रसंग, चिन्ता और परिश्रम आरम्भ करे और धीरे-धीरे बढावे ।

दुबला आदमी ।

"चरक" में लिखा है—रूखा अन्नपान, लघन, अल्प भोजन, अति परिश्रम या अति संशोधन (जुलाब वगैरः), शोक, मलमूत्र आदिका रोकना, जागना, रूखे पदार्थोका उबटन, स्नानका अभ्यास न होना, बुढापा, क्रोध और सदा रोगका बना रहना—ये सब कारण कृशता या दुबलेपनके है ।

मिहनत, बहुत ही पेट भर भोजन, भूख, प्यास, जियादा दवा पीना, अत्यन्त गरमी-सर्दी, अत्यन्त मैथुन—इनको दुबला आदमी बर्दाश्त नही कर सकता। दुबले आदमीको तिल्ली, श्वास, खॉसी, क्षय, गोला, बवासीर और उदर रोग घेर लेते है। दुबलेको संग्रहणीका रोग भी होता है ।

"सुश्रुत"मे लिखा है—जो मनुष्य बादी बढानेवाले आहारोका अधिक सेवन करता है, बहुत जियादा मिहनत या कसरत करता है, अत्यन्त मैथुन करता है, पढ़ने-लिखनेमे जियादा परिश्रम करता है, बहुत डरता या शोच-फिक्र करता है, बहुत ही ध्यान करता या रातको जागता है,

* स्नान, उबटन, नींद, घी, चीनी प्रभृति बृहण करनेवाले हैं ।

भूखा रहता या थोड़ा खाता है अथवा कसैले पदार्थ अधिक खाता है—उसका रस-धातु, कम होनेके कारणसे, धातुओंको तृप्त नहीं करता, यानी उनके बढ़नेमे सहायता नही देता, इससे शरीर अत्यन्त दुबला या कृश हो जाता है ।

बहुत दुबला मनुष्य भूख, प्यास, सर्दी, गरमी, हवा और बरसात इनको बर्दाश्त नही कर सकता तथा बोझा भी नहीं उठा सकता । ऐसा आदमी सभी कामोंमे निकम्मा और वात-रोगोसे पीड़ित रहता है। दुर्बल मनुष्य श्वास, खाँसी, राजयक्ष्मा, सीहा, उदर-रोग (वातोदर प्रभृति), जठराग्निकी निर्बलता (विषमाग्नि या मन्दाग्नि), गुल्म और रक्तपित्त इनमेसे किसी-न-किसी रोगमे गिरफ्तार होकर मर जाता है । दुर्बलताके कारण दुर्बलके भी प्रायः सभी रोग बलवान हो जाते है ।

नीद, हर्ष, बढ़िया पलंग, सन्तोष, शान्ति, बेफिक्री, स्त्रीसे विरक्त यानी अलग रहना, मिहनत न करना, प्यारोसे मिलना, नया अन्न, नयी शराब, दही, घी, दूध, ईख, शालि चाँवल, उड़द, गेहूँ, गुड़के पदार्थ, सदैव तेल लगाना, चिकने उबटन, स्नान, चन्दन लगाना, फूल-माला पहनना, सफेद कपड़े पहनना, यथा समय देहका शोधन, रसायन और वृष्य योगोका सेवन—ये सब अत्यन्त दुबलेको भी परम पुष्ट करते है । सबसे बड़ी बात "बेफिक्री" है । बेफिक्रीसे मनुष्य खूब मोटा होता है । कहा है:—

अचिन्तनाच्च कार्याणां ध्रुवं सन्तर्पणेनच ।
स्वप्नप्रसंगाच्चनरो वराह इव पुष्यति ॥

किसी बातकी फिक्र न करने, सदैव सन्तर्पण करने और सोनेसे आदमी सूअरकी तरह मोटा हो जाता है ।

जो मनुष्य रसको बढ़ानेवाले और रसको कम करनेवाले दोनो तरहके पदार्थ सेवन करता है, अथवा यो समझिये कि, न मोटे करने

वाले और न पतले करनेवाले साधारण आहार-विहारोंको सेवन करता है अथवा बढ़िया-बढ़िया माल खाता और मिहनत (कसरत) करता है, उसका शरीर न मोटा होता है और न दुबला होता है, मध्य शरीर बना रहता है। मध्य-शरीरवाला मनुष्य भूख, प्यास, सर्दी-गरमी, धूप-हवा, वर्षा आदि सबको सह सकता है और सभी काम कर सकता है तथा मजबूत रहता है। मनुष्यको सदा ऐसी ही कोशिश करनी चाहिये, जिससे शरीर न तो बहुत मोटा हो और न दुबला हो। बहुत मोटा और बहुत दुबला दोनों तरहके मनुष्य खराब होते हैं। कहा है:—

अत्यन्त गर्हितावेत्तौ, सदा स्थूलकृशौ नरौ ।
श्रेष्ठौ मध्यशरीरस्तु, कृशः स्थूलात्तु पूजितः ॥

बहुत मोटा और बहुत दुबला दोनों तरहके आदमी निन्दित हैं। मध्य शरीरवाला मनुष्य श्रेष्ठ है। बहुत मोटे आदमीसे तो दुबला ही अच्छा होता है।

"चरक" में लिखा है:—

स्थौल्यकार्श्ये वर कार्श्यं, समोपकरणौ हितौ ।
यद्युभौ व्याधिरागच्छेत, स्थूलमेवाति पीडयेत् ॥

मोटापन और दुबलापन इन दोनोंमें दुबलापन अच्छा है। दोनोंके उपकरण समान होनेपर भी, अगर दोनोंको रोग होता है, तो मोटेको जियादा तकलीफ होती है। अरुणदत्त नामक विद्वान्‌ने लिखा है कि, विशूचिका प्रभृति स्वेदसाध्य-रोग यदि दुबले आदमीके हो, तो साध्य हैं, अगर मोटेको हो तो असाध्य है, क्योंकि मोटेको स्वेदन करना मना है। इसीसे अगर मोटे आदमीके स्वेदसाध्य-रोग हैजा वगैरः हो, तो इलाजमें बड़ी कठिनाई होती है।

अग्नि-विचार ।

श्रुतमें लिखा है, पाचक नामकी जठराग्नि चार तरहकी होती है। एक इनमेंसे निर्दोष और तीन सदोष या विकारवाली होती हैं। जैसेः—

(१) सम, (२) विषम, (३) तीक्ष्ण, और (४) मन्द ।

समाग्नि—वात, पित्त और कफकी समानतासे होती है । विषमाग्नि वायुसे, तीक्ष्णाग्नि पित्तसे और मन्दाग्नि कफसे होती है। "हारीत-संहिता" में लिखा है—वात, पित्त और कफके समान होनेसे समाग्नि होती है, वात, पित्त और कफके विषम (असमान) होनेसे विषमाग्नि होती है, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्णाग्नि होती है और वात-कफकी अधिकतासे मन्दाग्नि होती है।

समाग्नि ।

यह अग्नि स्वभावानुसार समयपर खाये हुए भोजनको पचा देती है। यह सब धातुओंको बढ़ाती और दोष-रहित है। समाग्निवाला सदा प्रसन्न, हृष्ट-पुष्ट और सचेष्ट रहता है। इसके शरीरमें धातु, बल और इन्द्रियाँ समान रहती हैं। इस अग्निकी सदा रक्षा करनी चाहिये, जिससे यह मन्द, विषम, अथवा तीक्ष्ण न हो जाय।

विषमाग्नि ।

यह अग्नि कभी तो भोजनको पचा देती है और कभी नहीं पचाती है। वातसे विषम होकर हैजा यानी विशूचिका, वातादि

रोग, ग्रहणी, अतिसार, प्लीहा, गुल्म, शूल, अफारा और उदावर्त्त पैदा करती है । यह हारीतकी बात है । धन्वन्तरिजी कहते है, जो जठराग्नि कभी तो अन्नको पचा दे और कभी पेटमे दर्द, उदावर्त्त, अतिसार, पेटका भारीपन, आँतोमे गुड़गुड़ाहट, प्रवाहिका आदि पैदा करे और फिर अन्नको पचा दे, उसे "विषमाग्नि" कहते है ।

इस अग्निका चिकने, खट्टे तथा नमकवाले आहारो और औषधियोसे प्रतिकार करना चाहिये । भोजनपर भोजन, असमयके भोजन, भारी पदार्थोंके भोजन, विषम भोजन और मलमूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे बचना चाहिये । अग्निदीपक हलके आहार करने चाहिये ।

तीक्ष्णाग्नि ।

"सुश्रुत"मे लिखा है—जो अधिक खाये-पियेको शीघ्र पचा दे, वह जठराग्नि तीक्ष्ण कहलाती है । और जब यह अग्नि बहुत ही बढ़ जाती है, तब बारम्बार खाये हुए भोजनको चटसे पचा देती है और खानेकी इच्छा बनी रहती है । पच जानेके अन्तमे गले, तालू और होठ सूखते है, दाह और सन्ताप होता है—इस अवस्थाको "भस्मक रोग" कहते है ।

"हारीत" कहते है—जब प्रकृतिसे अधिक खा लेनेपर भी तृप्ति नही होती, नेत्र सदा पीले बने रहते है, दाह होता और बल घट जाता है, तब तीक्ष्ण अग्नि कहते है । जब वात और कफ क्षीण हो जाते है और पित्त तीक्ष्ण हो जाता है, भोजनकी इच्छा बनी ही रहती है, खाया हुआ पच जाता है, तब "भस्माग्नि" या "भस्मक" कहते है ।

भस्मक रोगसे पीलिया, पित्तज अतिसार, राजयक्ष्मा, हलीमक, भ्रम, ग्लानि, यकृत रोग, प्रमेह, शूल, मूर्च्छा, रक्तपित्त, अम्लपित्त और मूत्रकृच्छ्र—ये उपद्रव होते है । शरीर क्षीण हो जाता है । अन्नमे मन लगा रहता है । भस्मक-रोगी यदि काठ और पत्थर भी खा जाय, तो वह भी पच जाते है ।

तीक्ष्णाग्निवालोंको मीठे, चिकने, शीतल आहार-पान देने चाहियें अथवा जुलाब देकर प्रतिकार करना चाहिये । भस्माग्नि या अत्याग्निका भैंसके दूध, दही और घी प्रभृतिसे प्रतिकार करना चाहिये ।

मन्दाग्नि ।

इस अग्निवालेको थोडासा खाया-पिया भी यथार्थ रूपसे नहीं पचता । धन्वन्तरिजी कहते हैं, जो अग्नि बहुत थोड़ेसे खानेको भी बड़ी देरमे पचाती है और पचानेसे पहले पेटमे भारीपन, सिरमे भारीपन, श्वास, खाँसी, राल बहना, ओकी, शरीरमे थकान आदि उपद्रवोंको पैदा करती है, उसे "मन्दाग्नि" कहते है । हारीत कहते है, मन्दाग्निवालेके कफ अधिक होता है और गुल्मोदर रोग पैदा करता है ।

अवस्था तीन प्रकारकी होती है:—

(१) बाल-अवस्था, (२) मध्यावस्था, (३) वृद्धावस्था। सोलह वर्षसे नीचे बालअवस्था, सोलहसे सत्तर वर्ष तक मध्यावस्था और सत्तर सालसे ऊपरकी अवस्थाको वृद्धावस्था कहते है।

बालक तीन प्रकारके होते है:—(१) दूध पीनेवाले, (२) दूध और अन्न दोनो खानेवाले, (३) अन्न खानेवाले। एक वर्षके बालक दूध पीनेवाले, दो वर्षके बालक दूध और अन्न दोनो खानेवाले, और दो सालसे ऊपरके अन्न खानेवाले होते हैं।

मध्यावस्थाके भी चार भेद है:—(१) बढ़ावकी अवस्था, (२) यौवनावस्था, (३) परिपूर्णताकी अवस्था, (४) घटावकी अवस्था।

बीस वर्ष तक बढ़ावकी अवस्था होती है, यानी बीस वर्ष तक मनुष्य बढ़ता है। तीस वर्ष तक यौवनावस्था यानी जवानी रहती है। चालीस वर्ष तक सब धातु-उपधातुओ, सब इन्द्रियो और बलकी पूर्णता होती है। इसके बाद, इकतालीसवें वर्षसे सत्तर वर्ष तक कुछ न कुछ घटता रहता है। कोई-कोई कहते है, बीससे साठ वर्ष तक शरीरकी वृद्धि होती है, तीससे साठ वर्ष तक जवानी रहती है और चालीससे साठ वर्ष तक सब धातुओ, इन्द्रियो और बल-वीर्यकी सम्पूर्णता होती है। इसके बाद घटाव आरम्भ होता है। सत्तर वर्षके बाद सब धातुओ, इन्द्रियो, बल-वीर्य्य और उत्साहमे कमी होने लगती है, शरीरमे सलवटे और झुर्रियॉ पड़ने लगती है। सारे बाल सफेद—सफेद ही नहीं, पीले हो जाते और उड़ जाते है। श्वास और

खाँसी, प्रभृति रोग घेर लेते है। इन रोगोके मारे मनुष्य विल्कुल असमर्थ हो जाता है। ऐसी हालत हो जाती है, जैसे मेहसे पुराने मकानकी हो जाती है। ऐसी अवस्था होनेपर, मनुष्यको "वृद्ध" कहते है। इस अवस्थामे वात या वादीका वहुत ही जोर हो जाता है।

"चरक"मे लिखा है—स्थूल-भेदसे अवस्था तीन होती है:—(१) बाल्य, (२) मध्यम और (३) वृद्ध। वाल्यकालमे सभी धातुएँ कच्ची रहती है, मूँछ, डाढ़ी आदि नही निकलती हैं। इस अवस्थावालेका वल, क्लेश सहने-योग्य नही होता और अधूरा रहता है। वाल्यावस्थामें "कफ" प्रधान होता है, यानी इस उम्रमे कफका जोर रहता है। सोलह वर्ष तक वाल्यावस्था रहती है। तीस वर्ष तक सव धातुएँ वढ़ती है और चित्त चंचल या डॉवाडोल रहना है। इस मध्यमावस्थामे वल, वीर्य, पुरुपार्थ, पराक्रम, स्मरण, वचन और विज्ञान आदि सब धातुएँ उत्तम रहती है। साठ वर्ष तक मध्यमावस्था कहलाती है-इसके वाद मनुष्यकी धातु, इन्द्रियें, वल, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण, स्मरण, वचन और विज्ञान, ये घटने लगते है, धातुएँ खराव हो जाती है। इस अवस्थामे "वायु" वढ़ जाती है। इस तरह इकसठसे सौ वर्ष तक वृद्धावस्था कहलाती है। अनेक लोग सौ वर्षसे भी अधिक जीते हुए देखनेमे आते है।

कौनसी अवस्था किस दोषका समय है ?

बाल्यावस्था—कफका समय है।
मध्यमावस्था—पित्तका समय है।
वृद्धावस्था—वायुका समय है।

वाल्यादि दश पदार्थोंका ह्रास।

शार्ङ्गधर महोदयने लिखा है—जन्म होनेके दश वर्ष वाद बालकपन नही रहता, वीस वर्षके वाद शरीरका वढ़ना वन्द हो जाता है। तीस वर्षके वाद शरीर मोटा नही होता अथवा रौनक मारी जाती है। चालीस साल वाद स्मरण रखने यानी याद रखनेकी सामर्थ्य नही रहती। पचास साल वाद शरीर ढीला-सा हो जाता है। साठ साल वाद नजर कम

हो जाती है । सत्तर साल बाद वीर्य नही रहता। अस्सी वर्षके बाद परा-क्रम नही रहता । नव्वे वर्षके बाद अक्ल मारी जाती है। सौ वर्षके बाद कर्मेन्द्रियाँ बेकाम हो जाती है । एक सौ बीस वर्ष बाद प्राणी चोलेको छोड़ देता है । इस तरह हर दस सालमे एक-एक चीज़ घटती जाती है ।

बाल्यावस्थामे "कफ"का सचय होता है, जवानीमे "पित्त" बढ़ा हुआ रहता है और बुढ़ापेमे "वायु" बढ़ा हुआ रहता है । वैद्यको इस बातका विचार करके दवा तजवीज करनी चाहिये। बालक और वृद्धको अग्नि-कर्म (दागना वगैरः), क्षार-कर्म, विरेचन—जुलाब और स्वेदादि (पसीने निकालना प्रभृति)से बचाना चाहिये, अर्थात् बूढ़े और बालकको जुलाब वगैरः न देना चाहिये । यदि ऐसी ही जरूरत हो, जुलाब देने और दागने वगैरः बिना काम होता न दीखे, तो बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता कदम-कदमपर सोच-समझकर जुलाब वगैरः हलके देने चाहिये । अवस्था-विचारसे ये तो वैद्यका एक काम हुआ ।

दूसरा काम अवस्थाके विचारसे मात्रा तजवीज करना है। अवस्थाके बढ़नेपर उत्तरोत्तर दवाकी मात्रा जवानी तक बढ़ती है । उसी तरह बुढ़ापेमे पहलेकी अपेक्षा यथाक्रम मात्रा घटा-घटाकर दी जाती है । मान लो, एक मासके बालकको एक रत्ती दवा, दो मासकेको दो रत्ती, तीन मासकेको तीन रत्ती, एक वर्षके बालकको एक माशे, दो वर्षकेको दो माशे, इसी तरह सोलह वर्ष तक माशे-माशे बढाकर १६ × १ = १६ माशे तक ले जावे। सोलह वर्षके बाद बढानेकी जरूरत नही है। सोलह वर्षसे सत्तर वर्ष तक सोलह माशेका ही प्रमाण रहेगा । सत्तर वर्षके बाद जैसे बालककी मात्रा बढ़ाई थी, घटाते चले जाओ । बालक और बूढ़ेकी चिकित्सा समान है । कल्क, चूर्ण और काढ़ेकी मात्रा बूढ़ेको बालकसे चौगुनी देनी चाहिये ।

नोट—हमने ऊपर जो १ रत्ती, २ रत्ती या १६ माशेकी मात्रा लिखी है, उसे सब दवाओंकी मात्रा न समझ लेना । कितनी ही दवाएँ १, २ चाँवल जवानोंको

दी जाती हैं। बालकोंको तो वही बाजरे-बराबर दी जाती हैं। हमने एक रत्ती, दो रत्तीकी मात्रा लिखकर दवाकी मात्रा तजवीज करनेका रास्ता समझाया है। हाँ, अनेक दवायें इसी परिमाणमें बालकों और जवानों तथा बूढ़ोंको दी जा सकती हैं।

हाँ, अवस्थाका विचार करते समय सुश्रुत-चरकके लेखनानुसार आप साठ वर्षके मनुष्यको जवान समझकर चिकित्सा न कीजियेगा, यदि ऐसा कीजियेगा, तो धोखा खाइयेगा। आजकल पचास सालके बाद वृद्धावस्थाका आरम्भ हो जाता है। अच्छा हो, यदि आप अवस्थाके लक्षण देखकर, आयुका परिमाण ग्रहण करें। यही सफलताकी कुञ्जी है।

बालक और वृद्धकी चिकित्साके सम्बन्धमें कुछ उपयोगी नियम।

१—बालककी आँखोंमे काजल प्रभृति लगाना, उबटन लगाना, लोई करना, तेल लगाना, स्नान कराना, वमन कराना, निरूहण वस्तिका प्रयोग कराना (गुदामे पिचकारी लगाना) प्रभृति कर्म—बालकके हकमे जन्मसे ही हितकारी है, अर्थात् बालकके पैदा होते ही, यदि उपरोक्त काम किये जायँ, तो बालक सदा सुखी और आरोग्य रहेगा।

२—वैद्यको चाहिये कि, पाँच वर्षकी उम्र होनेके बाद बालकको कवल या गण्डूष आदि धारण करावे, यानी मुखमे कुछ दवा डालकर कुल्ले करावे, आठ वर्षके बाद बालकको सूँघने या नाकमे चढ़ानेकी दवा देवे, सोलह वर्षकी अवस्था हो जानेके बाद जुलाब देवे और बीस वर्षकी उम्रके बाद स्त्री-सम्भोगकी सलाह दे।

३—दूध पीते बालकको दवाकी मात्रा खूब कम देनी चाहिए। ऐसी दवा देनी उचित है, जो मौलादमे थोड़ी ही खूब लाभदायक हो। अच्छा हो, यदि बालकके बजाय माता या दूध पिलानेवाली धायको दवा दी जाय।

४—बालक और वृद्धको वमन विरेचन न कराना चाहिये। यदि सख्त जरूरत हो, तो हल्की दवा देनी चाहिए।

५—छोटे बालकोंको पहले महीनेमें माँके दूध, शहद, चीनी या गायके घीमे दवा देनी चाहिए।

चिकित्सकको चिकित्सा-कर्म करते समय देशकी परीक्षा करनी पड़ती है। रोगीका जन्म किस देशमे हुआ है, रोगी किस देशमे बड़ा हुआ है, रोग किस देशमे हुआ है, उस देश या इस देशकी आब-हवा कैसी है, इस देशमे किस दोपका कोप रहता है, यह देश कफ-प्रधान है या वात-प्रधान अथवा पित्त-प्रधान, इस देशके प्राणियोके आहार-विहार कैसे है, अथवा बल, सत्व, सात्म्य, दोषभृति कैसे है इत्यादि बातोके जाननेकी वैद्यको जरूरत होती है और इनके जाननेके लिये ही देश-परीक्षा की जाती है।

देश तीन तरहके होते है.—

(१) आनूप, (२) जागल और (३) साधारण।

आनूप देश ।

जहाँ बहुतसे तालाब, झरने, झील प्रभृति जलाशय हो, जहाँ ऊँचे नीचे नदी-नाले हो, बहुत ही वर्षा होती हो, कोमल शीतल पवन चलती हो, अनेक पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष हो, कोमल सुन्दर स्वरूप वाले पुरुष जहाँ अधिक हो और जहाँ कफ और वातके रोग अधिकतासे होते हो, उसे "आनूपदेश" कहते है। "वाग्भट्ट" ने लिखा है, आनूपदेश कफ-प्रधान देश है। इस देशके जीव, औषधियाँ और अन्न-जल प्रभृति सभी कफ-प्रधान होते है।

"हारीत-संहिता" मे लिखा है—जहाँकी पृथ्वी हरी-हरी घाससे शोभायमान हो, चॉवलोके खेतोसे पृथ्वी रमणीक हो रही हो, जहाँ भारी और मधुर रसवाली ईख बारहो महीने होती हो, अनेक तरहके

चॉवल और गेहूँ पैदा होते हो, मधुर रसके खानेसे वात और कफका कोप होता हो, उसे "आनूप देश" कहते है। इन लक्षणोंवाला देश "बंगाल प्रान्त" है। बंगालमे जलाशय बहुत है, वर्षा भी बहुत होती है, चॉवल भी बहुत पैदा होते है, वृक्ष भी बहुत है, जहाँ देखो हरियाली ही हरियाली है। ईख बारहो मास होती है।

जाँगल देश।

"सुश्रुत"मे लिखा है—जो आकाशकी तरह ऊँचाई-निचाई रहित हो यानी एकसा हो, जहॉ दूर-दूरपर और कही-कही पास-पास कॉटेदार वृक्ष हो, वर्षा थोड़ी होती हो, जलाशय कम हो, गरम और तेज हवा चलती हो, कही-कही छोटे-छोटे पहाड़ हो, गठीले और पतले शरीरवाले पुरुष अधिक हो, जहॉ वात और पित्तके रोग अधिकतासे होते हो, उसे "जांगल देश" कहते है। हारीतमे लिखा है—जहॉ कॉटोदार वृक्ष हो, मृग-तृष्णा हो, यानी जल तो न हो मगर हिरनोको जल मालूम हो, जहॉ पत्र-हीन वृक्ष हो, जहॉकी जमीन रेतीली हो और सूरजकी किरणोंसे तप रही हो, जहॉ कूओंका जल घटता जाय, जहॉ चॉवल और ईख पैदा न होते हो, जहॉ रक्त और पित्त जल्दी कुपित होते हो—उस देशको "जांगल देश" कहते है। "वाग्भट्ट" ने जांगल देशके जीव-जन्तु और अन्न आदिको वायु-प्रधान कहा है। ऐसा देश राजपूताना प्रान्तमे "मारवाड" है। मारवाड़की जमीन रेतीली है। वर्षा वहॉ कम होती है। जलाशय कम है। चॉवल और ईखकी खेती वहॉ नही होती। वहॉ गरम हवा चलती है और कॉटेदार वृक्ष भी वहाँ बहुत होते है।

साधारण देश।

जिस देशमे आनूप और जागल दोनोके लक्षण अधिकतासे हो, जहॉ न बहुत रूखापन हो और न चिकनापन हो, जहॉ न बहुत जाड़ा हो न बहुत गरमी हो, साधारण जल हो, न बहुत वर्षा होती हो, न मारवाड़ की तरह सूखा ही रहता हो, हरियाली हो मगर बंगालकी तरह

न हो—ऐसे देशको "साधारण देश" कहते है । ऐसा देश 'युक्तप्रान्त' मालूम होता है, क्योकि वहाँ बङ्गदेशकी तरह थोड़ी-बहुत हरियाली है और कही-कही मारवाड़की तरह सूखे मैदान भी है । वहाँ वर्षा बंगालसे कम और मारवाड़से अधिक होती है । चाँवल और ईखकी खेती होती है । मारवाड़मे पैदा होनेवाले बाजरा, टेटी और ग्वारकी फली प्रभृति पदार्थ भी पैदा होते है, गरमीमे गरम हवा या लूएँ भी चलती है, कुएँ, बावड़ी, तालाब और नदियोकी कमी नही है, मगर बंगालकी तरह अधिकता भी नही है । साधारण देश वाग्भट्टके मतसे समदोष-युक्त होता है । इसके जीव-जन्तु और औषधियाँ भी समदोष-युक्त होती है ।

ऋतु-विचार।

छै ऋतुएँ।

एक वर्षमे बारह महीने होते है। बारह महीनोमे, दो-दो महीनोंकी छै ऋतुएँ होती हैं। जैसे :—

१—शिशिर = माघ, फाल्गुन।

२—वसन्त = चैत्र, वैशाख।

३—ग्रीष्म = ज्येष्ठ, आषाढ़।

४—वर्षा = श्रावण, भाद्रपद।

५—शरद = आश्विन, कार्त्तिक।

६—हेमन्त = मार्गशिर, पौष।

दक्षिणायन और उत्तरायण।

चन्द्रमा और सूर्यको काल-विभाजक मानकर, वर्षको दो भागोमे बॉटते है:—(१) दक्षिणायन और (२) उत्तरायण। इन छै ऋतुओमेसे वर्षा, शरद् और हेमन्तका दक्षिणायन, और शिशिर, वसन्त और ग्रीष्मका उत्तरायण होता है।

वर्षा, शरद, हेमन्त = दक्षिणायन

शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म = उत्तरायण

प्राणियोंके बलके घटने-बढ़नेके कारण ।

दक्षिणायनकी तीन ऋतुओंमे चन्द्रमा बलवान होता है और उत्तरायणकी तीन ऋतुओंमे सूर्य बलवान होता है। चन्द्रमाके समयमे खट्टे, नमकीन और मीठे रस क्रमसे बलवान होते है तथा उत्तरोत्तर प्राणियोका बल बढ़ता है। सूर्यके बलिष्ठ होनेपर, कड़वा, कसैला और चरपरा ये रस क्रमसे बलवान होते है और उत्तरोत्तर प्राणियोंका बल घटता जाता है। चन्द्रमा पृथ्वीको तर करता है, सूर्य सुखाता है और वायु प्रजाका पालन करता है।

दोषोंके सञ्चय कोप प्रभृतिके अनुसार ऋतु-विभाग ।

दोषोके सञ्चय, कोप और शान्तिके कारणसे, विद्वान् वैद्योने छै ऋतुओंका विभाग इस तरह किया है:—

१—ग्रीष्म = वैशाख, ज्येष्ठ ।

२—प्रावृट् = आषाढ़, श्रावण ।

३—वर्षा = भाद्रपद, आश्विन ।

४—शरद् = कार्तिक, मार्गशिर ।

५—हेमन्त = पौष, माघ ।

६—वसन्त = फाल्गुन, चैत्र ।

दोषोंका सञ्चय, कोप और शान्ति ।

वात—ग्रीष्म-ऋतुमे सञ्चय होता, प्रावृट्मे कोप करता और शरद्-ऋतुमे शान्त हो जाता है।

पित्त—वर्षा-ऋतुमे सञ्चय होता, शरद्-ऋतुमे कुपित होता और वसन्त-ऋतुमे शान्त हो जाता है।

कफ—हेमन्तमे सञ्चय होता, वसन्तमे कुपित होता और प्रावृट्-ऋतुमे शान्त हो जाता है। यह माधवनिदान-कर्ताने लिखा है।

"सुश्रुत" मे लिखा है, पित्त-कोप-जनित यानी पित्तके कुपित होनेसे होनेवाले रोगोकी शान्ति हेमन्त-ऋतुमे स्वयं हो जाती है; कफके रोगोकी

शान्ति स्वयं ग्रीष्म-ऋतुमे हो जाती है, और बादीके रोगोकी शान्ति स्वयं शरद्-ऋतुमे हो जाती है।

वङ्गसेन महोदयने लिखा है—वर्षा-ऋतुमे वायु कुपित होता है, शरद्-ऋतुमे पित्त कुपित होता है और वसन्तमे कफ कुपित होता है—और फिर हेमन्तमे वायु कुपित होता है, रुक्षता बढ़ती है तथा शिशिरमे वायु कुपित होता है और ग्रीष्ममे पित्त कुपित होता है। नीचे और भी अच्छी तरह समझियेः—

वायु—वर्षा, हेमन्त और शिशिरमे कुपित होता है।

पित्त—शरद् और ग्रीष्म-ऋतुमे कुपित होता है।

कफ—वसन्त-ऋतुमे कुपित होता है।

दिन-रातमें ऋतु-विभाग।

दिनका पहला पहर	··वसन्त··	·कफ-कोपका समय है।
,, दूसरा ,,	···ग्रीष्म	
,, तीसरा ,,	·· प्रावृट् ·	वायु-कोपका समय है।
,, चौथा ,,	·· वर्षा	
आधी रात	···शरद्	·पित्त-कोपका समय है।
पिछली रात	···हेमन्त	

आवश्यक सूचना।

"चिकित्सा-चन्द्रोदय" के दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे और सातवे भाग भी तैयार हैं। दूसरे भागका अजिल्दका मूल्य ५) सजिल्दका ५॥), तीसरेका अजिल्दका ४।) और सजिल्दके ५) हैं। इसी तरह चौथेका दाम ४।) और ५), पाँचवेंका ५) और ५॥), छठेका ३॥) और ४) तथा सातवेका १०॥) ११।) है। दूसरे भागमे ज्वर, खाँसी, श्वास, हिचकी और बालकोंके रोगोंकी चिकित्सा है। तीसरेमें अतिसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि, बवासीर, पाण्डुरोग, कमला, कृमिरोग एवं गरमी और सोज़ाककी चिकित्सा लिखी है। इसी तरह आगेके भागोंमें बाकीके रोगोंकी चिकित्सा लिखी है।

वर्षकी छहों ऋतुओं और दिन-रातमें दोषोंका संचय, कोप और शान्ति बतानेवाला नक़शा ।

	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्म दिनका दूसरा पहर वैशाख—ज्येष्ठ	वर्षा दिनका चौथा पहर भादो—क्वार	हेमन्त पिछली रात पौष—माघ
कोप	प्रावृट् दिनका तीसरा पहर आषाढ़—श्रावण	शरद् आधीरात कार्त्तिक—अगहन	वसन्त दिनका पहला पहर फाल्गुन—चैत्र
शान्ति	शरद् आधी रात कार्त्तिक—अगहन	वसन्त दिनका पहला पहर फाल्गुन—चैत्र	प्रावृट् दिनका तीसरा पहर आषाढ़—श्रावण

बङ्गसेनके मतसे दिन-रातमें दोषोंका समय।

दिनका प्रथम भाग ·· कफका समय।
„ मध्य „ ·· पित्तका समय।
„ अन्तिम „ ···वायुका समय।
रातका प्रथम „ ···कफका समय।
„ मध्य „ ···पित्तका समय।
„ अन्तिम „ वायुका समय।

अथवा।

यों समझिये कि, सवेरे ६ बजेसे १० बजे तक सदा वसन्त-ऋतु रहती है, इसलिये वह कफके कुपित होनेका समय है। दिनके दस बजेसे २ बजे तक सदा गरमीकी-सी ऋतु रहती है, इसलिये वह पित्तके कुपित होनेका समय है। दिनके २ बजेसे संध्याके ६ बजे तक वर्षाकाल-सा मालूम होता है, इसलिये वह वायुके कुपित होनेका समय है। इसी तरह रातके तीनों भागोंको कफ, पित्त और वायुका समय समझ लीजिये। हमारी समझमे यह विभाग सीधा और बहुत कामका है।

ऋतुओंमें मनुष्योंकी अग्नि और बलाबल।

वर्षा और ग्रीष्म ऋतुमे मनुष्य आदिकोंमे दुर्बलता होती है, शरद् और वसन्तमे मनुष्योंकी देहमे मध्यम बल होता है, हेमन्त और शिशिर-ऋतुमे पूर्ण बल रहता है।

शीतकाल यानी जाड़ेमें शीतल वायुके संस्पर्शसे शरीरके भीतर रुककर बलिष्ठ प्राणियोंकी अग्नि बलवान होती है, इससे शीत-कालमें मनुष्यकी अग्नि गुरु मात्रा और गुरु द्रव्यको पचा सकती है। मतलब यह है कि, जाड़ेमे अग्नि तेज रहती है, इसलिये इस मौसममें अधिक और देरमे पचनेवाली भारी चीज भी आसानीसे पच जाती है। यदि जाड़ेमे बलवान अग्निको यथेष्ट आहार या ईंधन नहीं

मिलता है, तो वह प्राणीकी देहके रसको सुखाती है। रसके सूख जानेसे शरीर रूखा हो जाता है, तब शरीरका वायु कुपित हो जाता है। इसलिये जाडेमे मनुष्योको चिकने, खट्टे और नमकीन रस, शराब, मांस और मधु प्रभृति विधि-पूर्व्वक सेवन करने चाहिये।

वसन्तमे हेमन्तकालका संचित कफ सूर्यकी गरमीसे इधर-उधर चलकर शरीरकी अग्निको नष्ट कर देता है, इसीसे इस ऋतुमे अनेक प्रकारके रोग होते है।

ग्रीष्म-ऋतुमे सूर्य्यकी तेजी और भयानक गरमीके कारण मनुष्यो-की देह दुर्बल और जठराग्नि कमजोर हो जाती है।

वर्षाकालमे, गरमीके मौसमकी कमजोर हुई अग्नि, बरसातकी खराब हवा वगैरःसे और भी दुर्बल हो जाती है। बरसातमे पानी बरसता है, जमीनसे भाफ निकलती है और जलका पाक खट्टा होता है, इससे अग्नि-बलके कम होनेसे त्रिदोष कुपित होता है।

शरद-ऋतुमे, बरसातकी सर्दी खानेके पीछे, सूर्यकी गर्मीसे संचित हुआ पित्त कुपित होता है।

ऋतुओंमें पथ्यापथ्य।

हेमन्त।

हेमन्त ऋतुमे-बादी नाश करनेवाले सुगन्धित तेलोकी मालिश कराना, उबटन लगाना, सिरमे तेल डालना, गरम जलसे नहाना, गरम मकानमे रहना, ढकी सवारीमे सैर करना, कसरत-कुश्ती करना, रेशमी और ऊनी तथा रुईके वस्त्रोको पहनना-ओढना और बिछाना, अगर-चन्दनका लेप करना, रातको ऊँचे-ऊँचे और पुष्ट स्तनोवाली, स्त्रियो जिनके अगरका लेप हो रहा है, जो कामदेवके मनको भी मथनेवाली है, उनके साथ सुन्दर गुदगुदे पलॅगपर सोना और मदोन्मत्त होकर इच्छानुसार मैथुन करना, ये सब पथ्य है। इस शीत-ऋतुमे, ऊपर कह आये है, शीतल हवाके लगनेसे मनुष्यकी गरमी बाहर नही निक-

लती है, इसलिये बलवान मनुष्योकी "पाचक-अग्नि" अत्यन्त प्रबल होकर बहुतसे भोजन और भारी पदार्थोंको भी पचानेकी सामर्थ्य रखती है, इस कारण इस मौसममे शराब पीनेवाले शराब पीवें, मधु पान करे, दूध पीवे, गरम जल पीवे, चॉवलोका भात खाये तथा अन्यान्य चिकने और पुष्टिकारक पदार्थ खायँ, हुक्का-तमाखू पीवे, अच्छी-अच्छी रसालाओंका सेवन करें, मांस खानेवाले उत्तम प्रकारके मांस खायँ। इस मौसममे बर्फ, सत्तू, अत्यन्त थोड़ा भोजन, बहुत हवा और कड़वे, कसैले, चरपरे, रूखे और बादी करनेवाले आहार-विहारोसे बचे। हेमन्त और शिशिरमे कोई बड़ा भेद नहीं, इसलिये हेमन्तमे लिखे हुए आहार-विहार ही शिशिरमे पथ्य और अपथ्य समझने चाहिएँ। शिशिर-ऋतुमे रूखापन और सर्दी,—हवा और बादलोके कारणसे अधिक हो जाती है, इसलिये इस ऋतुमे कड़वे, कसैले, चरपरे, हलके और शीतल आहार-विहारोसे और भी अधिक बचना चाहिये। गरम घरमें रहना, गरम जलसे नहाना और गरम जल पीना, इन बातोपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। गरम जल पीनेवालेकी आयु नहीं घटती, इस बातको याद रखना चाहिये।

वसन्त।

वसन्त-ऋतुमे हेमन्तका जमा हुआ कफ सूरजकी गरमीसे चलायमान होकर कुपित होता और अनेक रोग पैदा करता है, इसलिये इस मौसममे कय करना, जुलाब लेना, लंघन करना, प्रधमन करना, कसरत करना, कुल्ले करना, कवल मुखमे रखना, उबटन लगाना, मिहनत करना, हाथी-घोडेकी सवारी करना, चन्दन, केसर, अगर और कपूरका लेपन करना, अञ्जन लगाना, अदरख, मूली, पोई, पेठा, पका खीरा, कचनार, चौलाई, जमीकन्द, करेला, परवल, बैगन और अन्यान्य कड़वे साग खाना, जौ, सॉठी और शाली चॉवल, कोदो तथा लवा प्रभृति का मांस खाना एवं त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल, असगन्ध, अड़ूसे

और भॉगका सेवन,—ये सब पथ्य यानी हितकारी हैं। जिस स्त्रीने चन्दन और अगरसे अपने शरीरको सुवासित कर रक्खा है, जिसने साफ-सफेद कपड़े पहन रक्खे हैं, जिसकी छातियाँ कडी और ऊँची-ऊँची हैं, जिसकी दोनो जॉघे पुष्ट हैं, जिसने अनेक प्रकारके जेवर पहन रखे है, जो रूप और यौवनके नशेसे मतवाली हो रही है, ऐसी स्त्रीको बाग-बगीचोमे लेजाकर, उसके साथ आनन्द करना यह भी हितकारी है।

ग्रीष्म ।

ग्रीष्म-ऋतुमे सूर्य अपनी तेजीसे जगत्‌के सार यानी तरीको सोख लेता है, इसलिये इस ऋतुमे पतले और शीतल द्रव्य तथा चिकने अन्न-पानका सेवन करना अच्छा है। इस मौसममे शर्करोदक, चीनी मिला हुआ पतला सत्तू, हिरन प्रभृति जङ्गली जानवरोका मास, घी और दूधमे मिले शाली चॉवल इनको खानेवाला गरमीसे दुःखित नहीं होता। शराबका इस मौसममे न पीना ही अच्छा है, यदि पिये बिना न रहा जाय, तो थोडी और अधिक पानी मिलाकर पीनी चाहिये। दिनमे शीतल घरमे रहना, रातको चन्द्रमाकी चॉदनीमे छतपर सोना, चन्दन कपूर आदिका लेप करना, खसकी टट्टियाँ लगवाकर खसके या कपड़ेके पंखेकी हवा आती हो ऐसे स्थानमें दोपहरी काटना, रातको चन्दनके जलसे भीगे पंखेकी हवा सेवन करना, शीतल जल पीना, शीतल सुगन्धिवाले फूलोको सूँघना और उनकी माला पहनना, हीरा मोती प्रभृति सुन्दर रत्नोका पहनना, दोपहरके समय नीले. लाल या सफेद कमलके पत्तोकी सेजपर सोना, स्त्रियो या मित्रोके साथ जल-विहार करना, कपूरके गहने पहनना, चमेलीके फूलोकी माला पहनना, मनहरण करनेवाली प्रौढ़ा स्त्रियोंके साथ सुन्दर छाया-दार बागमे घूमना, फव्वारोकी बहार देखना, मलमल प्रभृति महीन और बारीक वस्त्रोको पहनना तथा पुराने जौ, गेहूँ, बढ़िया सफेद चॉवल, खूब सफेद चीनी, मूँग, शिखरन, मिश्री मिला हुआ दूध, गाय

या भैसका मक्खन, घी, खटाई, केलेकी गहर, दाख, कटहल और आम—ये सब आहार और विहार गरमीके मौसममे मनुष्यके लिए रोगोसे बचानेवाले, सुख देनेवाले और परम पथ्य है। इस ऋतुमे सन्ध्या-समय बहुत ही थोड़ी एक या दो रत्ती भॉगको सौफ, कासनी, गुलाबके फूल, इलायची, खीरे-ककड़ीके बीज और गोलमिर्च प्रभृतिके साथ घोटकर पीनेसे हैजेका भय नहीं रहता और खाया-पिया चट पच जाता है, मगर अधिक भॉग पीना हानिकारक है।

इस मौसममे कसरत-कुश्ती, अधिक मिहनत, सूरजकी धूप, राह चलना, कडवे, खट्टे, चरपरे और नमकीन पदार्थोका सेवन, स्त्री-प्रसग, गरम और रूखे पदार्थ, चिन्ता-फिक्र प्रभृति तथा गरम और दाह करनेवाले एव गरमी बढ़ानेवाले आहार-विहारोंसे बचना चाहिये।

वर्षा-काल।

इस मौसममे अग्निवलके क्षीण होनेसे त्रिदोष कुपित होते है, इसलिये वर्षा-कालमे त्रिदोष-नाशक विधियोका अनुष्ठान करना चाहिये। जिस दिन जोरसे हवा चल रही हो, पानी बरस रहा हो, सर्दीका जोर हो, उस दिन अत्यन्त खट्टे, नमकीन और हलवा प्रभृति चिकने पदार्थ खाने चाहिएँ। ऐसा करनेसे वर्षाकालकी वायु शान्त रहती है। वर्षाका जल, गरम करके शीतल किया जल, कुएँ या तालाबका पानी पीना चाहिये। जगली जानवरोका मांस, थोड़ी शराब, अरिष्ट, शहद-मिले भोजनके पदार्थ, पुराना शहद, पुराने गेहूँ, काला नोन, खुशबूदार महीन कपड़े, सुगन्धिवाले फूलोकी माला, बौछार न आती हो ऐसा घर, सूखे कपड़े और जूते पहनकर फिरना,—ये सब आहार-विहार मनुष्यके लिये सुखकारी और हितकारी है।

इस मौसममे परिश्रम, धूप, तालाबका जल, नदीका जल, कुहरा, ओस, दिनमे सोना, मैथुन, शीतल पवन, शीतल और रूखे पदार्थ, कसरत, पानीमे नंगे पैरो फिरना, गीले वस्त्र पहनना और वर्षामे भीगना

—ये सब मनुष्यको दुःखदायी या अपथ्य हैं, अतः इनसे बचना परमावश्यक है ।

शरद्-ऋतु ।

इस मौसममें पित्तका कोप होता है, इसलिये इस मौसममें मीठे, हलके, शीतल, किसी कदर कडवे, पित्त-नाशक पदार्थ, भूख लगनेपर, परिमाणके साथ, सेवन करने चाहिएँ । लवा, सफेद तीतर, हिरन, मेढ़ा, बारहसिगा और खरगोशका मांस, शाली चाँवल, जौ, गेहूँ, घृत-पान, नदीका जल, शहद, दूध, आँवले, परवल, चीनी, ईख, कपूर, सरोवरका जल, शीतल जल, हंसोदक, चन्दन, चाँदनी, महीन वस्त्र, सुगन्धित फूलोंकी माला, मोतियोंका हार, गीत सुनना और नाच देखना—ये सब आहार-विहार शरद्-ऋतुमे पथ्य हैं। इस मौसममे वर्षा-कालके सञ्चित पित्तको जुलाब देकर निकालना जरूरी और लाभदायक है । फस्द खुलवाना भी अच्छा है ।

इस मौसममे चरबी, तेल, ओस, जलके और अनूपदेशके जानवरोंका मास, क्षार, दही, दिनमे सोना, पूरबकी हवा, तेज हवा, अत्यन्त भोजन, धूप, काँजी, मदिरा, कुएँका जल, उड़द, तिल, चरपरे और रूखे पदार्थ, इन सब आहार-विहारोंसे परहेज करना चाहिये ।

किस मौसममें किस दिशाकी हवा अच्छी होती है ।

१—शिशिर अर्थात् माघ-फागुनमे पूरबकी हवा अच्छी है ।

२—हेमन्त यानी अगहन-पौषमे आग्नेय दिशाकी हवा अच्छी है ।

३—वसन्त यानी चैत-वैशाखमें दक्खनकी हवा अच्छी है ।

४—ग्रीष्म यानी जेठ-आषाढ़मे नैऋत्यकी हवा अच्छी है ।

५—शरद् यानी क्वार-कार्तिकमे वायव्यकी हवा अच्छी है ।

६—वर्षा यानी सावन-भादोंमे पच्छिमकी हवा अच्छी है ।

नोट—शिशिर और वसन्त यानी माघ-फागुन और चैत-वैशाखमें उत्तरकी हवा भी अच्छी होती है ।

ज़हरीली हवाका समय।

अगहन, पौष, कार्तिक, माघ और आषाढ़मे तथा मौसमोके मेलके समय हवा विषैली यानी जहरीली होती है।

जब किसी नगर, गॉव या देशकी हवा जहरीली हो जाती है, तब गायोको तिलक-रोग, मनुष्योको राज-रोग, हाथियोको पावक रोग और घोड़ोको वेद्य रोग-होता है।

वैद्यको सदा हाथियोके पित्तकी, घोड़ोके कफकी और मनुष्योके वायुकी रक्षा करनी चाहिये।

ऋतु-विपर्य्यय।

जब प्रत्येक ऋतु ठीक होती है, यानी गरमीमे गरमी, सर्दीमे सर्दी और वर्षाकालमे वर्षा ठीक होती है, तब अन्न, शाक प्रभृति औषधियॉ और जल ठीक रहते हैं। ऐसे अन्न-जलके सेवन करनेसे मनुष्योंकी आयु और उनका बल-पराक्रम प्रभृति ठीक रहते हैं। किन्तु यदि हेमन्त-ऋतुमें सर्दी नही पड़ती, ग्रीष्ममे गरमी नही पड़ती, वर्षामे पानी नही बरसता, तब अन्न जल आदि बिगड़ जाते है। प्राणी उन्हींको खाते-पीते हैं, इससे उनको अनेक रोग होते हैं अथवा महामारी (प्लेग), हैज़ा प्रभृतिसे मृत्युकारक समय उपस्थित हो जाता है। यह बात धन्वन्तरि भगवान्ने सुश्रुतसे कही है। आजकल ऋतुएँ ठीक नही होतीं, इसीसे इस देशमे प्लेग और हैजा प्रभृति प्राणनाशक रोग ऊधम मचाये रहते हैं।

ऋतु-सन्धि।

दो-दो ऋतुओंके आदिके और अन्तके सात दिनोको "ऋतु-सन्धि" कहते हैं। जैसे, ग्रीष्म-ऋतुके खतम होनेमे सात दिन बाकी रहे, तब गरमीके सात दिन और आगे आनेवाली वर्षा-ऋतुके शुरूके सात दिन—इनको "ऋतु-सन्धि" कहते हैं। इस ऋतु-सन्धिके चौदह दिनोंमे, आगे आनेवाली ऋतुकी विधि सेवन करनी चाहिये, यानी गरमीकी ऋतुके अन्तके सात दिनोको वर्षा-ऋतु समझकर, वर्षा-ऋतुमें लिखे हुए आहार-विहार सेवन करने अथवा त्यागने चाहिएँ।

प्राणनाशक समय ।

कार्तिकके अन्तके आठ दिन और अगहनके आरम्भके आठ दिन; यानी कार्तिक सुदी अष्टमीसे अगहन वदी अष्टमी तकके सोलह दिनोको "यमदंष्ट्रा" अथवा यमकी दाढ़ें कहते है। इन सोलह दिनोमे जो लोग थोड़ा खाते है, वह आरोग्य रहते है। जो बहुत खाते है या हेमन्त-ऋतुमे लिखे हुए पथ्य-अपथ्यका खयाल नही रखते (क्योकि ऋतु-सन्धि हो जाती है, कार्तिक शुक्ल पक्षकी अष्टमीको हेमन्त-ऋतु आरम्भ हो जाती है), वे भयानक रोगोमे गिरफ्तार होकर दुःख भोगते और अनेक तो इस जगत्से ही चल बसते है।

वमन-विरेचन योग्य ऋतुएँ ।

शरद्-ऋतुमे जुलाब देकर पित्तको निकाल देना चाहिये, वसन्तमे कय कराना और जुलाब देना जरूरी है। शरद्-ऋतु फस्द खुलवाने या ख़ून निकालनेके लिए अच्छी है।

निदान-पञ्चक।

निदान-पञ्चक—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति—इन पाँचोंसे रोग जाना जाता है अथवा यों कह सकते हैं कि, ये पाँचों रोग जाननेके कारण हैं।

निदान।

(१) निदान—जिन आहार-विहारोंसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है तथा वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी क्षय और वृद्धि होती है, उन्हींको रोगका "निदान" या "कारण" कहते हैं। निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण—ये निदानके पर्य्याय-वाचक शब्द हैं, यानी ये निदानके दूसरे नाम हैं। इन छहोंमेंसे शास्त्रमें कोई शब्द आवे, उसे निदान-वाचक ही समझना चाहिये। मिट्टी खानेसे पीलिया रोग होता है, इसलिये "मिट्टी" पीलियेका "निदान" यानी "कारण" है।

पूर्वरूप।

(२) पूर्वरूप—जिस लक्षणसे उत्पन्न होनेवाले रोगका ज्ञान हो जाय, उसे "पूर्वरूप" कहते हैं। जैसे, ज्वरके पहले थकान-सी मालूम हो, मुँहका जायका बिगड़ जाय, आँखोंमें जल भर-भर आवे, कभी हवा अच्छी लगे और कभी बुरी लगे इत्यादि लक्षणोंसे ज्वर होगा, ऐसा समझना ही "पूर्वरूप" है। आँखें जलने लगें और हम समझ लें कि पित्त-ज्वर होगा, तो "आँखोंका जलना" पित्त-ज्वरका पूर्वरूप है। आकाशमें बादल घिर आनेसे हम समझते हैं कि, मेह बरसेगा, इसलिये बादलोंका जमा होना, मेह बरसनेका पूर्वरूप है।

रूप।

(३) रूप—जब रोगके सारे लक्षण दीखने लगें, तब उन्हें "रूप"

कहते है । पूर्वरूप तो व्याधिके आरम्भ करनेवाले दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है, किन्तु रूप सारे चिह्नोका प्रकट हो जाना है । जैसे, नेत्रोमे दाह होना, यह पित्त-ज्वर होनेका पूर्वरूप है । इस लक्षणसे हम समझ सकते है कि, हमे पित्त-ज्वर होगा, किन्तु जब जोरसे बुखार चढ़ आवे, दस्त पतला हो जाय, नींद कम आवे, वमन हो, पसीने आने लगे, कण्ठ, होठ, मुख और नाक ये पक जायँ, इत्यादि लक्षण नजर आने लगे तो हमे समझना चाहिये कि, पित्त-ज्वर हो गया और ऊपर कहे हुए लक्षणोको पित्त-ज्वरका "रूप" समझना चाहिये ।

संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न और आकृति—ये रूपके नामान्तर है, यानी रूपके पर्य्याय-वाचक शब्द या उसके दूसरे नाम है ।

उपशय ।

(४) उपशय—औषधि, अन्न और विहार—इन तीनोका रोगीकी प्रकृत्यानुसार सुखकारी प्रयोग हो, उसको "उपशय" और उसीको "सात्म्य" कहते है । उपशयका अर्थ है—औषधि, अन्न वा विहार द्वारा रोगका पहचानना । जो औषधि अन्न या विहार रोगीके रोगको घटावे और उसके पक्षमे सुखकारी हो, वही "उपशय" है । उपशय या सात्म्य एक ही बात है । इससे रोगकी पहचान इस तरह होती है:—किसी रोगीको कोई रोग है । वैद्य पूछे, क्योजी ! आपको कौन-कौन चीजे माफिक होती है या कौन-कौन चीजोसे सुख होता है ? रोगी कहे,—मुझे नारङ्गी, अनार, ईख, खीरे, ककड़ी खाने और शीतल जलमे स्नान करने, शीतल तैल मर्दन करानेसे लाभ होता है और गर्म चीजें खाने और लगानेसे तकलीफ होती है, तो वैद्यको समझ लेना चाहिये कि रोगीको शीतल आहार-विहार सुख देते है, शीतल पदार्थ उसको मुआफिक है । इस दशामे उसे रोग गरमीसे हुआ समझना चाहिये । क्योंकि गरमीसे पैदा हुए रोग ही शीतल आहार-विहारोसे शान्त होते है ।

एक बार एक पत्र-सम्पादकने हमको लिखा कि, मेरी माँकी कमरमे बहुत दिनोसे दर्द रहता है, मुझे कोई उत्तम दवा भेज दो। हमारे मैनेजरने उस दर्दको वात-कफ या सर्दीसे पैदा हुआ समझकर "नारायण तैल" भेज दिया। ज्यो-ज्यो तेल लगाया जाने लगा, दर्द बढ़ने लगा। हमारे पास शिकायत आई। हमने समझ लिया कि जब गर्म "नारायण तैल" रोगीको सुखकारी नही है, तो अवश्य रोगी गरमीसे है। हमने अपने यहाँका सुप्रसिद्ध "कृष्णविजय तैल" भेज दिया। तैल लगाते ही रोगिणीको आराम मालूम हुआ। फिर तो उक्त तैलके चन्द रोजके लगातार इस्तेमालसे वह रोग समूल नाश हो गया। बस, इसी तरह उपशय और अनुपशयसे रोग पहचाना जाता है।

उपशयकी क़िस्में।

उपशय छै प्रकारके होते है:—

(१) हेतु-विपरीत।

(२) व्याधि-विपरीत।

(३) हेतु-व्याधि-विपरीत।

(४) हेतु-विपर्यस्त अर्थकारी।

(५) व्याधि-विपर्यस्तार्थकारी।

(६) हेतु-व्याधि-विपर्यस्त अर्थकारी।

हेतु-विपरीत यानी जिस कारणसे व्याधि उत्पन्न हुई हो, उसके विपरीत औषधि, अन्न और विहारका उपयोग "सुखकारक उपशय" है। जैसे शीत-ज्वरमे "सोठ" हेतु-विपरीत औषधि है। क्योकि शीत-ज्वरका हेतु या कारण सर्दी है। सर्दीके खिलाफ या विपरीत दवा "सोठ" है। रोगका कारण शीत यानी सर्दी है और कारणके ख़िलाफ सोठ गरम दवा है। इसी तरह हेतु-विपरीत अन्नको समझो। जैसे, किसीको थकाई और बादीसे ज्वर हुआ। ज्वरका कारण थकान और बादी है। थकान और बादीके विपरीत अर्थात् थकान

और वादीका नाश करनेवाला पथ्य क्या है? थकान और बादीके नाशक-पथ्य मांसरस और चॉवल हैं। इसलिये मांसरस और भात ये हेतु-विपरीत यानी रोगके कारणको नाश करनेवाले या रोगकी शान्ति करनेवाले हुए। इसी तरह हेतु-विपरीत विहारको समझो। दिनके सोनेसे किसीका कफ कुपित हो गया। उससे सिरमे दर्द और जुकाम हो गया। अब यह सोचना चाहिये कि कफके कुपित होनेका कारण क्या है? कफ कुपित होनेका कारण है—दिनमे सोना। दिनमे सोनेके विपरीत आचरण क्या है? रातमें जागना। रातमें जागनेसे कफ शान्त हो गया और रोगीको सुख हुआ। इसलिये "रातमे जागना" हेतु-विपरीत विहार या आचरण हुआ।

<u>व्याधि-विपरीत</u>—व्याधि-विपरीत यानी रोगके खिलाफ औषधि, अन्न और विहारका उपयोग "सुखकारक उपशय" है। किसीको अति-सार या दस्तोका रोग हुआ। हमने व्याधिके विपरीत दस्त बन्द करनेवाली दवा "बेलगिरि" या पाठा दे दी। रोगीको सुख हुआ, तो "बेलगिरि" व्याधि-विपरीत औषधि हुई। किसीको आमातिसार हो गया। हमने उसे दही भात और मिश्री खानेको बता दिया। रोगीको उस पथ्यसे सुख हुआ, तो "दही भात और मिश्री" व्याधि-विपरीत पथ्य हुआ। किसीको ज्वरमे घोर दाह हुआ। हमने कहा, भाई! रूप-वती षोड़शी स्त्रीके सर्वाङ्गमे चन्दन लगवाकर उसे आलिङ्गन करो। इस तरह करनेसे उसका दाह शान्त हो गया, तो वह "स्त्रीका आलिङ्गन करना" व्याधि-विपरीत विहार हुआ।

<u>हेतु-व्याधि-विपरीत</u>—बादीकी सूजनमे "दशमूलका काढ़ा" बादी और सूजन दोनोको नाश करता है, इसलिये "दशमूलका काथ" हेतु-व्याधि-विपरीत यानी रोग और रोगके कारण दोनोके विपरीत औषधि हुई।

<u>हेतुविपर्यस्तार्थकारी</u>—पित्त-प्रधान व्रणकी सूजनमे पित्तकारक गरमा-गरम पुल्टिश बॉधना। गरमी हीसे सूजन है और गरम ही दवाकी गई।

व्याधिविपर्यस्तार्थकारी—किसीको कय होनेका रोग है। उसको हमने गलेमें उँगली डालकर कय करनेकी सलाह दी। रोगीने वैसा ही किया। उसे आराम मालूम हुआ, तो यह व्याधिविपर्यस्तार्थकारी "आचरण" हुआ।

हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी—कोई आगसे जल गया। हमने कहा, "अगर" प्रभृति द्रव्योंका गर्म-गर्म लेप करो। लेप करनेसे रोगीको सुख हुआ, तो यह हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी औषधि हुई।

(६) अनुपशय—उपशयके विपरीत जिस औषधि, अन्न और विहारसे रोगीको उल्टा दुःख हो, वही "अनुपशय" या "व्याधि "असात्म्य" है।

सम्प्राप्ति।

सम्प्राप्ति—वातादि दोष दुष्ट होकर, अपने-अपने स्थानको छोड़कर, ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर शरीरमें विस्तृत होकर विचरण करते हैं और उनके विचरनेसे जो रोगकी उत्पत्ति होती है, उसे "सम्प्राप्ति" कहते हैं। मतलब यह है कि वात, पित्त और कफ ये दोष बढ़कर, जिस तरह रोग प्रकट करते हैं, उसे "सम्प्राप्ति" कहते है। जैसे—मिथ्या आहार विहारके कारणसे वात पित्त और कफ कुपित होकर, आमाशयमें प्रवेश करते है और उस स्थानमें इधर-उधर घूमते हुए रस-वाहिनी नसोंके रास्तोंको रोककर, पकाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहर निकाल देते है। उसी जठराग्निसे सारा शरीर जलने लगता है—यही "ज्वर" है और ऐसा निश्चय करना ही "ज्वरकी सम्प्राप्ति" है।

सम्प्राप्ति पाँच प्रकारकी होती है:—

(१) संख्यारूप सम्प्राप्ति।
(२) विकल्परूप सम्प्राप्ति।
(३) प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति।
(४) बलरूप सम्प्राप्ति।
(५) कालरूप सम्प्राप्ति।

(१) संख्यारूप सम्प्राप्ति—रोगोंकी गिन्तीको "संख्यारूप सम्प्राप्ति"

कहते हैं । जैसे, ज्वर आठ प्रकारके होते हैं, खाँसी पाँच प्रकारकी होती है ।

(२) विकल्परूप सम्प्राप्ति—मिले हुए पित्त और कफके अंशांशके अनुमान करनेको "विकल्परूप सम्प्राप्ति" कहते हैं । जैसे, इसमे इतने अंश वात है, इतने अंश पित्त और इतने कफ ।

(३) प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति—रोगकी स्वतन्त्रतासे व्याधिकी प्रधानता और अप्रधानता जाननेको "प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति" कहते है । जैसे, स्वतन्त्र ज्वर प्रधान रोग है और उसके अधीन श्वास-खाँसी प्रभृति रोग अप्रधान हैं ।

(४) वलरूप सम्प्राप्ति—जिस रोगमे रोगके पूर्वरूप, रूप इत्यादि सारे लक्षण मिलते हो, उस रोगको वलवान समझना और जिसमे कम लक्षण मिलते हो, उसे निर्वल समझना ।

(५) कालरूप सम्प्राप्ति—रात-दिन, ऋतु और आहार—इनके अंशोसे वातादि-जनित रोगोंके वढ़ने-घटनेका काल या समय जानना ।

रोगोंके घटने-वढ़नेका समय जाननेके लिये रात-दिनके तीन भाग करते हैं । पहला, दूसरा और तीसरा । रातका और दिनका पहला भाग कफका समय है । दूसरा भाग पित्तका और तीसरा या अन्तका भाग वातका समय है ।

इसी तरह ऋतुओंके भी तीन भाग करने चाहिये । वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा । वसन्तमे कफ कुपित होता है, गरमीमे पित्त कुपित होता है और वर्षा मे वायु कुपित होता है ।

इसी तरह भोजनके समयका भी विभाग करना चाहिये । भोजन करनेके समय कफका काल है, भोजन पचते समय पित्तका और भोजन पच जानेपर वातका काल है ।

इसके जाननेसे वड़ा लाभ है । जिस-जिस दोष (वात पित्त कफ) का जो-जो समय वताया है, उसके जाननेसे काममें कठिनाई नहीं होती और चिकित्सामे वड़ा सुभीता होता है ।

रोग-परीक्षा ।

वैद्यका पहला काम रोग जानना है ।

चिकित्सा-मन्दिरमें प्रवेश करते ही पहला काम रोग-परीक्षा या मर्जकी तशखीस करना है । रोगके जान जानेपर चिकित्सा-कार्य आरम्भ होता है । जो वैद्य रोगको बिना समझे दवा दे देते हैं, वे धूलमें लट्ठ मारते हैं । उन्हें कभी-कभी सिद्धि हो जाती है, पर अनेक बार असफलताका ही सामना करना पड़ता है । हम इस मौकेके पाँच-सात श्लोक इस स्थानपर वैद्यकी जानकारीके लिये लिखे देते हैं:—

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्मभिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्व समाचरेत् ॥
यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् ।
अप्यौषधिविधानज्ञस्तस्यासिद्धिर्यदृच्छया ॥
यस्तु रोग विशेषज्ञः सर्व भैषज्य कोविदः ।
देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥
अविज्ञाय रुजं सम्यङ्, मोहादारभते क्रियाः ।
विधानज्ञोऽथ शास्त्रज्ञो न तत् सिद्धिः प्रजायते ॥
निदान रोग विज्ञान भेषजानां गुणागुणम् ।
विज्ञाय कुरुते यस्तु तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥
आदावेव रुजा ज्ञानं साध्यासाध्यं विचक्षणः ।
याप्यं सर्वरुजान्चैव ततः कुर्य्यात् प्रतिक्रियाम् ॥

पहले वैद्य रोगकी परीक्षा करे, पीछे औषधिकी परीक्षा करे। जब रोग और औषधिकी परीक्षा हो जाय, तब वैद्य ज्ञान-पूर्वक चिकित्सा आरम्भ करे।

जो वैद्य रोगके समझे बिना ही काम शुरू कर देते है, उनके औषधि-प्रयोगमे प्रवीण होनेपर भी, सिद्धि होती भी है और नही भी होती है।

जो रोगोंके भेदोको जानता है, जो सब तरहकी दवाओके जाननेमे कुशल होता है, जो देश, काल और मात्राके प्रमाणको जानता है, उसकी सिद्धि निश्चय ही होती है।

हारीत मुनि कहते है—जो वैद्य रोगको बिना जाने क्रिया—चिकित्साका आरम्भ कर देता है, वह विधान और शास्त्रका जानने-वाला होनेपर भी, सिद्धि प्राप्त नही करता ।

निदान और रोग, औषधियोके गुण और दोष—इनको समझकर, जो वैद्य चिकित्सा करता है, उसकी सिद्धि शीघ्र होती है।

सबसे पहले वैद्यको रोग और रोगके साध्यासाध्यत्वको जानना चाहिये। इनके जान लेनेके बाद चिकित्सा करनी चाहिये।

रोग-परीक्षा किस तरह होती है ?

किसीने रोग-परीक्षा करनेकी कोई तरकीब लिखी है, किसीने कोई, पर घूम-घामकर सबका मतलब एक ही है। प्रत्येक आचार्यका मत जाननेसे जानकारी जियादा बढ़ती है, कठिनाइयाॅ हल हो जाती है, इसलिये हम नीचे तीन-चार ऋषियोका मत लिखते है:—

"चरक" मे लिखा है.—

त्रिविध खलु रोगविशेष ज्ञानं भवति ।
तद्यथा आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानञ्चेति ॥

आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान,—इन तीन प्रकारके उपायोसे अलग-अलग रोगोका ज्ञान होता है।

हारीतने कहा है—

दर्शन स्पर्शन प्रश्नै रोगज्ञानं त्रिधामतम्।
मुखाक्षिदर्शनात् स्पर्शाच्छीतादि प्रश्नतः परम्॥

देखने, छूने और पूछने, इन तीन उपायोसे रोगका ज्ञान होता है। मुँह और आँखोके देखनेसे, गर्म और ठण्डा छूकर जाननेसे और रोगीसे रोगकी बाते पूछनेसे रोगका ज्ञान होता है।

धन्वन्तरिजी सुश्रुतसे कहते है:—

......आतुर गृहमभिगम्योपविश्यातुरमभि
पश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच, त्रिभिरेतैर्वैज्ञानोपाये रोगा:

" बहुतसे आचार्योंका यह मत है कि, रोगीके घर जाकर वैद्य बैठे, रोगीको देखे, हाथसे छुए और रोगका हाल पूछे। इन तीन उपायोसे रोगका ज्ञान हो जाता है, परन्तु मेरे मतमें यह बात ठीक नहीं है। वह कहते है, मेरी रायमे—

षडविधोहि रोगाणां विज्ञानोपाय·।
तद्यथा पंचाभि· श्रोत्रादिभिः प्रश्नेनचेति॥

रोगोंके जाननेके छै उपाय हैं। कान, नाक, जीभ, आँख और त्वचा (चमड़ा),—इन पॉच इन्द्रियो तथा पूछनेसे रोगोका ज्ञान होता है।

"वाग्भट्टजी" कहते है—

दर्शनस्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणाम।
रोगं निदान प्राग्रूप लक्षणोपशयाप्तिभिः॥

वैद्य देखने, छूने और पूछनेसे रोगियोंकी परीक्षा करे तथा निदान, पूर्वरूप,रूप, उपशय और सम्प्राप्तिसे रोगोकी परीक्षा करे।

पाठक! देख लिया सबका मत। निदान-पंचकसे रोग जाननेकी विधिको हम विस्तार-पूर्वक अभी पीछे ही लिख आये है। यहाँ हम "चरक" और "सुश्रुत"में लिखी हुई तरकीबोसे रोग-परीक्षाको अच्छी तरह समझाते हैं। "सुश्रुत"मे लिखी हुई छै प्रकारकी परीक्षायें,

"चरक"में लिखे हुए अनुमान और प्रत्यक्षके अन्तर्गत है और "चरक" के आप्तोपदेशके अन्तर्गत निदान-पञ्चक है ।

"माधव-निदान"मे लिखा है:—

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञान रोगाणा पञ्चधा स्मृतम् ॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति—इन पाँचोके द्वारा रोगोका ज्ञान होता है ।

बस, इस "निदान-पञ्चक" को ही आप "आप्तोपदेश" अर्थात् त्रिकालज्ञ महात्माओका उपदेश समझिये । इन पाँचोसे रोगोका ज्ञान हो सकता है, मगर प्रत्यक्ष और अनुमानकी सहायता बिना कुछ भी ज्ञान नही हो सकता ।

हम शास्त्रोपदेशसे जानते है कि ज्वरमे शरीर तपने लगता है, मगर बिना शरीरको छूए, हमे शरीरके गरम होनेका निश्चय कैसे हो सकता है ? हम जानते हैं कि पीलियेमे रोगीके नेत्र-नखादि पीले हो जाते है, किन्तु बिना आँखोसे देखे, हमे कैसे मालूम हो सकता है कि रोगीके नेत्र, नख, मूत्र प्रभृति पीले हो गये है ? हम शास्त्रोपदेशसे जानते है कि, अमुक रोगमे आँतें गूँजती है, मगर बिना कानोसे सुने हमें पक्का निश्चय कैसे हो सकता है ? हम शास्त्र पढ़नेसे जानते है कि, चेचक अथवा मोती-ज्वरमे रोगीके शरीरमे एक प्रकारकी बदबू आया करती है, पर बिना नाकसे सूँघे हमे इस बातका पक्का निश्चय कैसे हो सकता है ? हम जानते है कि, रक्तपित्त-रोगमे रोगीका रक्त अशुद्ध हो जाता है। रोगीका .खून खराब हुआ है या नही, इसका निश्चय तभी हो, जब हम जीभसे चखकर देखें। वैद्य ऐसा कर नही सकता, इसलिये सन्देह होनेपर रोगीका खून कव्वो या कुत्तोके आगे डाला जाता है। अगर कुत्ते या कव्वे उस .खूनको पी जाते है, तो .खून शुद्ध समझा जाता है, यदि नही पीते है, तो अशुद्ध समझा जाता है। यहाँ हमे अपनी नही तो कुत्तो और कव्वोकी जीभसे

काम लेना ही पड़ा। इस तरह कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा, इन पाँचो इन्द्रियोंसे काम लेना पड़ता है।

अब रहा "पूछना"। ज्वरमे रोगीके मुखका स्वाद कड़वा या फीका हो जाता है। इस बातको हम शास्त्रज्ञान होनेसे जानते तो है, मगर अमुक रोगीके मुखका स्वाद कैसा है? उसे भूख लगती है या नहीं? इन बातोका हमें रोगीसे पूछे विना कैसे ज्ञान हो सकता है? मतलब यह है कि, रोगका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हमें पाँचो इन्द्रियोंसे काम लेना होता है और जिस विषयका ज्ञान हमे हमारी पाँचो इन्द्रियोंसे नहीं हो सकता, उसका ज्ञान पूछने या प्रश्न करनेसे होता है। "सुश्रुत"में रोग जाननेके यही छै उपाय लिखे हैं।

एक तरहसे तो हम इन छहोंको ऊपर समझा चुके है, किन्तु दूसरे तौरपर फिर समझाते हैं, जिससे मन्दवुद्धि भी आसानीसे इस जरूरी विषयको समझ जायँ।

१—कान।

कानोंसे सुनकर ही हम जान सकते हैं कि, रोगीको डकारें आ रही है, आँतोमे वायु गड़गड़ शब्द कर रहा है, रोगी आन-तान वक रहा है, कण्ठमे घरघर-घरघर कफ वोल रहा है और स्वर भङ्ग हो गया है इत्यादि।

२—नाक।

नाकसे ही हमे दुर्गन्ध और सुगन्धका ज्ञान होता है। नाकसे सूँघते है, तव मालूम होता है कि, रोगीके शरीरमें एक अपूर्व सुगन्ध या दुर्गन्ध आ रही है। यह गन्ध अरिष्ट-सूचक है या स्वाभाविक है। इसके जाननेके लिये अथवा जख्मोंकी वदबू वगैरः जाननेके लिये नाकसे ही काम लेना होता है।

३—जीभ।

जीभसे रक्त-पित्तके रोगीके रुधिरका हाल तथा प्रमेह-रोगीके पेशाव-का हाल मालूम होता है। रक्तपित्तवालेके रक्तको यदि कव्वे या कुत्ते न चाटे, तो निश्चय ही खराव है, ऐसा समझते हैं। मधु-मेहीके पेशावपर

चींटियाँ लगें, तो पेशाब मीठा है, ऐसा समझते है। ऐसे-ऐसे रोगोंमें जिह्वासे ही रोगका ज्ञान होता है।

४—आँख ।

आँखोंसे देखनेपर ही मालूम होता है कि, रोगीका शरीर मोटा है या दुबला है, आकृति अच्छी है या बुरी, सूजन मुखपर है या पैरोंपर, आँखे भीतर घुस गई है या नहीं, आँखे सफेद है या पीली, शरीरका रङ्ग कैसा है, नाकका बाँसा मोटा हो गया है या सूख गया है। इत्यादि।

५—त्वचा ।

त्वचा या चमडेसे छूकर ही हम जानते है कि, रोगीका बदन गर्म है या ठण्डा, शरीर चिकना है या खरदरा, कड़ा है या नर्म, सूजन शीतल है या गर्म इत्यादि।

६—प्रश्न ।

प्रश्न करने या पूछनेसे ही मालूम होता है कि, मुँहका जायका कैसा है? भूख लगती है या नहीं? कहाँ दर्द होता है? पेटमे दर्द भोजन पचनेके बाद या पचते समय अथवा खाते ही होता है? चारपाईसे उठकर पाखाने तक जा सकते हो या नहीं? मासिक-धर्म ठीक होता है या नहीं? पाखाना साफ होता है या नहीं? कितने दिनोंसे रोग है? इत्यादि।

अनुमान ।

"सुश्रुत"मे कही हुई छहो रोग जाननेकी तरकीबे ऊपर बता चुके। अब रहा 'चरक'का अनुमान, उसे भी समझिये।

युक्ति सापेक्ष तर्कको "अनुमान" कहते है, अथवा तर्क-वितर्क द्वारा अक्लके जोरसे जो अन्दाज लगाया जाता है, उसे "अनुमान" कहते है। रोगीके शरीरके रसका स्वाद इन्द्रियोका विषय है, तो भी उसका पता अनुमानसे ही लगाया जाता है, क्योकि रसका ज्ञान प्रत्यक्ष कदापि नही हो सकता। शरीरपर जूएँ चलती देखकर अक्लसे समझ लिया जाता है कि, शरीरका रस बिगड़ गया है। स्नान करने

या चन्दन लगानेपर भी मक्खियोंको शरीरपर बैठते देखकर अनुमान कर लिया जाता है कि, शरीरका रस मीठा हो गया है, इसलिये यह अरिष्ट-सूचक है, प्राणी मर जायगा। पेशाबपर चीटियोंको लगते देखकर मधुमेह होनेका अनुमान कर लिया जाता है। आकाशमें बादल देखकर वर्षा होनेका अनुमान कर लिया जाता है।

ये नीचे लिखे हुए विषय और अन्यान्य विषय, अनुमान द्वारा, परीक्षा करनेसे जाने जाते है—परिपाक-शक्तिसे जठराग्निका, परिश्रमसे बलका, मूर्खतासे मोहका, दूसरेको सतानेसे क्रोधका, दीनतासे शोकका, प्रसन्नतासे हर्षका, सन्तोषसे प्रीतिका, दुःखसे भयका, अविषादसे धीरजका, उत्साहसे पराक्रमका, सङ्कोचसे लज्जाका, विनयसे शीलका, मनके चलायमान न होनेसे विज्ञानका, उपशय और अनुपशयसे छिपे लक्षणोंवाले रोगोंका, अरिष्ट-चिह्नोंसे आयु-क्षयका और शुभकर्मोंमे मन लगानेसे होनेवाले मङ्गलका अनुमान किया जाता है।

आठ प्रकारकी रोग-परीक्षा ।

गदाक्रान्तस्य देहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत् ।
नाड़ी मूत्र मल जिह्वां शब्द स्पर्श दृगाकृतिम् ॥

रोगीके शरीरके आठ स्थानोंकी परीक्षा करनी चाहियेः—

(१) नाड़ी, (२) मूत्र, (३) मल, (४) जिह्वा, (५) शब्द, (६) स्पर्श, (७) नेत्र और (८) आकृति ।

नाड़ी-परीक्षा ।

यद्यपि चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट और हारीत-संहिता प्रभृति ऋषि-मुनि-प्रणीत ग्रन्थोंमे कहीं भी नाड़ी-परीक्षाका जिक्र नहीं है, तो भी आजकल इसकी ऐसी चाल हो गई है कि, जिस रोगीको देखिये वही वैद्यके सामने पहले अपना हाथ कर देता है । यदि वैद्य महाशय नाड़ी-ज्ञानमे कुछ समझते है, रोगीके रोगका हाल नाडी देखकर बता देते है, तब तो रोगीकी श्रद्धा वैद्य महाशयमे हो जाती है, और यदि वे नाड़ी छूकर कुछ न बता सकें, तो रोगी उनको वैद्य नहीं समझता । इसलिये प्रत्येक वैद्यको कुछ न कुछ नाडी-परीक्षा अवश्य सीखनी चाहिये ।

नाड़ी-परीक्षासे वात, पित्त और कफ यानी सर्दी, गर्मी तथा साध्य-असाध्यका ज्ञान होता है, मगर इससे सारे ही रोगोंका ज्ञान हो जाय, यह मिथ्या बात है । हाँ, नाड़ी-ज्ञानवालेको रोगीकी मृत्युकी

अवधि खूब अच्छी तरह मालूम हो जाती है। यूनानी इलाज करने-वाले हकीम लोग भी नाड़ी यानी नब्ज़ देखा करते हैं। नाड़ी-ज्ञान पूर्ण होनेपर भी, केवल नाड़ी-परीक्षापर निर्भर रहना ठीक नहीं है, क्योंकि यदि इस परीक्षामें भूल हो गई, तो रोगीके प्राणनाशकी सम्भावना हो जायगी।

इसलिये पहले "निदान-पञ्चक" से रोगकी परीक्षा करके नाड़ी-परीक्षा करनी चाहिये। आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा रोगका ज्ञान हो जानेपर, यदि इनमें कोई भूल होगी तो नाडीसे मालूम हो जायगी और यदि नाड़ी-परीक्षामें कोई भूल होगी, तो उक्त तीन तरहकी परीक्षाओंसे मालूम हो जायगी। इसीलिये "वैद्यविनोद" में कहा है:—

रोगज्ञानाय कर्त्तव्यं नाडीमूत्रपरीक्षणम् ॥

रोगके जाननेके लिये वैद्य नाड़ी और मूत्रकी परीक्षा करे। "वैद्य-विनोद" के कर्त्ताका यह आशय है, कि निदान आदि पाँच प्रकारसे रोगका ज्ञान होनेपर, वैद्य नाड़ी और मूत्र-परीक्षा करे, क्योंकि उन्होंने "निदान-पञ्चक" लिखकर पीछे इसी ढँगसे इसको लिखा है। "योग-चिन्तामणि" के लेखकने लिखा है:—

नाड्यामूत्रस्य जिह्वाया, लक्षणं यो न विंदते ।
मारयत्याशु वै जन्तून स वैद्यो न यशो लभेत् ॥

जो वैद्य नाडी, मूत्र और जीभकी परीक्षा नहीं जानता, वह मनुष्योंका तत्काल नाश करता है, ऐसे वैद्यको यश नहीं मिलता।

स्त्रीके बाएँ और पुरुषके दाहिने हाथकी नाड़ी देखी जाती है।

स्त्रियोंकी बायें हाथकी नाड़ी और पुरुषोंके दाहिने हाथकी नाड़ी देखनी चाहिये। इसका कारण यह है कि, स्त्रियोंकी नाभिमें कूर्म नाड़ीका मुख ऊपर और पुरुषकी का नीचे है। इसीसे स्त्रियोंकी बायें

हाथकी और पुरुषोंके दाहिने हाथकी नाड़ी द्वारा शरीरमे दुःख-सुखका ज्ञान होता है।

नाड़ी देखनेमें नियम।

सोते हुएकी, कसरत करके आये हुएकी, तेल मर्दन कराकर चुका हो उसकी, भूखेकी, प्यासेकी, आगके सामनेसे उठा हो उसकी, भोजन-पर बैठता हो उसकी, भोजन करके चुका हो उसकी, धूपमेंसे आया हो उसकी, अथवा किसी प्रकारकी मिहनत करके चुका हो उसकी, नाड़ी न देखनी चाहिये। यदि इन नियमोंके विरुद्ध नाड़ी देखी जाती है, तो रोगका ठीक हाल मालूम नहीं होता।

तीन बार नाड़ीपर हाथ रख-रखकर वैद्य छोड़ दे, यानी तीन बार नाड़ी देखनी चाहिये, तब रोगका पक्का निश्चय करना चाहिये।

नाड़ीसे क्या-क्या मालूम होता है?

वात, पित्त, कफ, द्वन्द्वज, त्रिदोष, सन्निपात और साध्य-असाध्य ये सब नाड़ीसे मालूम होते हैं।

कहाँ-कहाँकी नाड़ियाँ देखी जाती हैं?

स्त्रीके बाये हाथकी और पुरुषके दाहिने हाथकी नाड़ी देखी जाती है, किन्तु जब रोगी मरणासन्न होता है, हाथकी नाड़ी हाथ नहीं आती या उससे साफ पता नहीं चलता, तब पैरोंके टखने, नाक, कण्ठ, तथा लिंगेन्द्रियकी नाडी भी देखी जाती है।

नाड़ी देखनेको रीति।

वैद्य और रोगीको नाड़ी देखते और दिखाते समय किस तरह बैठना-उठना प्रभृति काम करने चाहियें, इस विषयमे भी "योग-चिन्तामणि"मे लिखा है:—

स्थिरचितः प्रसन्नात्मा मनसा च विशारदः।
स्पृशेदंगुलिभिर्नाडीं जानीयाद दक्षिणे करे॥

त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः ।
अन्तजानुकरस्यापि सम्यक् नाड़ीं परीक्षयेत् ॥

वैद्य स्थिरचित्त और प्रसन्न होकर, तीन अँगुलियोसे दाहिने हाथकी नाड़ी देखे ।

जो रोगी मल-मूत्र त्याग कर चुका हो, सुखसे बैठा हो, दोनो जानुओके बीचमे जिसने अपना हाथ रख रक्खा हो, उसकी नाड़ीको वैद्य अच्छी तरह देखे ।

एक और पुस्तकमे लिखा है,—वैद्यको चाहिये कि, आप मल-मूत्र आदि जरूरी कामोसे फारिग होकर, चित्तको ठिकाने करके, सुखसे अपने आसनपर बैठकर रोगीकी नाड़ी देखे । वैद्य यदि शौचादिकसे निपटा हुआ न होगा, वैद्यका चित्त और कहीं होगा तथा रोगी पाखाने पेशाबको रोके हुए होगा, अथवा भूखा-प्यासा, चलकर आया हुआ, कसरत या मिहनत करके उठा होगा, तो हजार नाड़ी देखनेपर भी कुछ न मालूम होगा, क्योंकि नाड़ी योगका विषय है । यह चित्तकी एकाग्रता (*Concentration of mind*) चाहती है और भूखे-प्यासे, थके हुए, आगके पाससे उठकर आये हुए रोगीकी नाड़ी विकृत हो जाती है, यानी जो चाल होनी चाहिये, उससे विपरीत हो जाती है ।

जबकि वैद्य और रोगी दोनो ऊपर लिखे हुए नियमानुसार हो, तब वैद्य अपने बाये हाथसे रोगीका पहुँचा या कलाई दबाकर, दाहिने हाथकी तीन अँगुलियोसे, अँगूठेकी जडमे वायुकी नाड़ीको देखे, क्योंकि हाथके अँगूठेके नीचे धमनी नाड़ी जीवकी साक्षी देनेवाली है । उसी धमनीकी चेष्टासे विद्वान्, मनुष्यके सुख-दुःखको जान जाते है । किसीने यह भी कहा है, दाहिने हाथकी तर्जनी, मध्यमा और अनामिका उँगलियोको पहुँचेपर रखकर, बाये हाथसे रोगीके उसी हाथकी कुहनीकी नाडीको दबाना चाहिये । याद रखना चाहिये, पहुँचेमे तर्जनीके नीचे वायुकी नाड़ी, उससे दूसरी पित्तकी और तीसरी कफकी नाड़ी है ।

होनहार रोगोंके जाननेके लिये स्वस्थ मनुष्यकी नाड़ी-परीक्षा करनी चाहिये। प्रथम पित्तकी, बीचमें कफकी और अन्तमें बादीकी नाडी चलती है। रावणकृत पुस्तकमें लिखा है:—

आदौ वातवहा नाडी मध्ये वहति पित्तला।
अन्ते श्लेष्मविकारेण नाड़िकेति त्रिधा मता॥

आदिमें बातकी नाड़ी, बीचमें पित्तकी नाड़ी और अन्तमें कफकी नाड़ी—ये तीन प्रकारकी नाड़ी मानी गई है।

रोगीके वात अधिक हो, तो वैद्यकी तर्जनी अँगुलीके नीचे नाड़ी फड़कती है, पित्त अधिक हो, तो मध्यमा अँगुलीके नीचे, अगर कफ अधिक हो, तो अनामिकाके नीचे नाड़ी फड़कती है। अगर वात-पित्तका जोर हो, तो तर्जनी और मध्यमाके बीचमें, वात-कफका जोर हो, तो मध्यमा और अनामिकाके बीचमें नाडी फड़कती है। अगर सन्निपात हो, तो तीनों अँगुलियोंके नीचे नाड़ी मालूम होती है।

नोट—हाथकी नाडियोंका हाल जाननेके लिये, उधर दिये हुए चित्रमें हाथकी नाडियोंको देखो और समझो।

नाड़ीकी चाल।

वातका कोप होनेसे नाड़ी जोंक और सर्पकी चालसे चलती है। पित्तका कोप होनेसे कुलिङ्ग, कव्वा और मेंडककी चालसे चलती है, कफका कोप होनेसे नाड़ी हंस और कबूतरकी चालसे चलती है। किसीने लिखा है—वायुके कोपसे नाड़ीकी चाल टेढ़ी होती है, पित्त-कोपसे नाड़ी तेज चलती है और कफके कोपसे नाड़ी मन्दी चलती है। किसीने लिखा है—वायुका जोर होनेसे टेढ़ी, पित्तका जोर होनेसे चंचल और कफका जोर होनेसे स्थिर चालसे नाड़ी चलती है। अच्छी तरहसे समझमें आ जानेके लिये हमने एक ही बात तीन तरह लिखी है। तीनों बातोंका आशय प्रायः एक ही है।

दो दोषोंकी अधिकतामें और चाल हो जाती है। वात और पित्तका जोर होनेसे नाड़ी कभी सर्पकी-सी चालसे चलती है, कभी मेंडककी चालसे, वायु और कफका जोर होनेसे नाड़ी कभी सर्पकी-सी और कभी हंसकी-सी होती है। इस तरह पित्त और कफका कोप होनेसे नाड़ी कभी मेंडककी तरह फुदक-फुदककर चलती है और कभी हंस या मोरकी तरह धीरे-धीरे कदम उठाती हुई चलती है।

त्रिदोषकी नाड़ी।

तीनों दोषोंकी अधिकता या जोर होनेपर नाड़ी लवा, तीतर और बटेरकी-सी चालसे चलती है, अथवा यों समझिये कि वायुके कोपके कारण सर्पकी-सी चालसे, पित्त-कोपसे मेंडककी-सी चालसे और कफके कोपसे हंसकी-सी चालसे चलती है। अगर पहले नाड़ीके छूते ही नाड़ीकी चाल सर्पकी-सी, उसके बाद मेंडककी-सी, उसके बाद कफकी-सी चाल मालूम हो, तो रोगको साध्य समझना चाहिये। अगर इसके खिलाफ हो, यानी पहले सर्पकीसी चाल, उसके बाद हंसकीसी चाल अथवा हंसकी चालके बाद मेंडककी-सी चाल हो, तो रोगको असाध्य समझना चाहिये।

कठफोड़ा पक्षी ठहर-ठहरकर बड़े जोरसे अपना मुँह काठपर दे दे मारता है, उसी तरह सन्निपातकी नाड़ी ठहर-ठहरकर ठोकर मारती हुई चलती है।

ज्वरके पहले नाड़ीकी चाल।

ज्वरचढ़नेके पहले नाडी दो तीन बार मेंडककी-सी चालसे चलती है। यदि वही चाल बारबार बनी रहे, तो समझना कि "दाह-ज्वर" होगा।

सन्निपात-ज्वर होनेके पहले, नाड़ी पहले तो बटेरकी तरह, पीछे तीतरकी तरह और अन्तमें बत्तखकी तरह चलती है।

ज्वरमें नाड़ीकी चाल ।

ज्वरका वेग होनेपर नाड़ी गरम और वेगवान होती है, यानी तेजीसे चलती है। किन्तु इस बातको भी याद रखना चाहिये कि, मैथुन कर चुकनेपर अथवा मैथुनकी रातके सवेरे तक और अत्यन्त भोजन कर लेनेपर भी नाड़ी गरम रहती है, लेकिन इसमे ज्वरकी-सी तेजी नही होती।

वातज्वरमें नाड़ी ।

साधारणतया वातज्वरमे नाड़ीकी चाल वैसी-ही होती है, जैसी कि वातकी अधिकतामे होती है, जिसके लक्षण ऊपर लिख आये है। हॉ, गरमीमे जब वायु संचित होता है, भोजन पचनेके समय, दोपहर या आधीरातको यदि वात-ज्वर होता है, तो नाड़ी धीमी-धीमी चलती है। वर्षा-कालमे जब वायुका कोप होता है, भोजन पचनेके बाद और पिछली रातको जब वायुका समय होता है, वात-ज्वरमे नाडी जल्दी-जल्दी चलती है।

पित्तज्वरमें नाड़ी ।

पित्तज्वरमे नाडी मेंडककी तरह उछल-उछलकर चलती है और बडी तेजीसे चलती है। किन्तु शरद्-ऋतु, भोजन पचनेके समय, दोपहर और आधीरातको (ये पित्तके समय है) नाड़ी इतनी तेजीसे चलती है कि, बयान नही कर सकते। ऐसा मालूम होता है, मानो नाडी मांसको चीरकर बाहर निकल आवेगी।

कफज्वरमें नाड़ी ।

कफज्वरमे नाड़ी पहले लिखी गई हंसकीसी चालसे चलती है। कफका समय होनेपर यानी वसन्त, प्रातःकाल, सध्याके बाद तथा भोजन करते-करते कफकी नाड़ी उसी तरह हंसकीसी चालसे चलती है और छूनेसे ऐसी मालूम होती है, जैसी गरम पानीमे भीगी हुई रस्सी ठंडी जान पडती है।

वातकफ-ज्वर ।

वातकफ-ज्वरमे नाड़ी मन्दी-मन्दी चलती है और किसी कदर गर्म रहती है। अगर इस ज्वरमे कफका अंश कम और वायुका अंश जियादा रहता है, तो नाड़ी रूखी और बराबर तेज चलती रहती है।

वातपित्त-ज्वर ।

वातपित्त-ज्वरमें नाडी चञ्चल, स्थूल और कठिन रहती है और झूम-झूमकर चलती-सी जान पड़ती है।

पित्तकफ-ज्वर ।

पित्तकफ-ज्वरमे नाड़ी नर्म चलती है, कभी अधिक ठण्डी और कभी कम ठण्डी और पतली रहती है ।

त्रिदोष-ज्वर ।

त्रिदोषकी अधिकतामे नाड़ीकी जैसी चाल होती है, सन्निपात-ज्वरमे भी वैसी ही चाल रहती है। त्रिदोपके बुखारको सन्निपात-ज्वर कहते हैं। इस ज्वरमे मनुष्य बहुत जल्दी मरता है। कोई विरला ही भाग्यशाली बचता है।

त्रिदोपके बुखारमे, अगर तीसरे पहरके समय नाडीकी असली टेढी चाल, पीछे पित्तकी चञ्चल चाल, इसके पीछे कफकी स्थिर चाल दीखे, तो रोगको साध्य समझो, यदि इसके विरुद्ध दीखे, तो रोगको असाध्य समझो।

अगर नाड़ीकी चाल कभी सूक्ष्म और कभी बे-मालूम, कभी इधर कभी उधर घूमती जान पड़े—अथवा अँगूठेके नीचे कभी नाड़ी चलती जान पड़े और कभी चलती ही न जान पडे, गायब हो जाय, तो आप रोगको असाध्य समझ लो। किन्तु याद रक्खो, बोझा उठाने, डरने और रञ्ज करने या बेहोश होनेपर भी नाड़ीकी चाल ऐसी ही हो जाती है, मगर उस अवस्थामे रोगको असाध्य मत समझना। सबसे

अधिक इस बातका ध्यान रक्खो कि, जब तक नाड़ी अँगूठेकी जड़से गायब न हो जाय, तब तक किसी रोगको भी असाध्य मत समझो ।

अन्तर्गत-ज्वरमें नाड़ी ।

शरीरके भीतर ज्वर होनेसे रोगीका शरीर छूनेमे शीतल मालूम होता है, किन्तु नाडी अत्यन्त गरम मालूम होती है ।

मिश्रित ।

कामातुरता, क्रोध, भारी चिन्ता और भयमे नाड़ी क्षीण चलती है।

मन्दाग्निवाले और धातुक्षीणवालेकी नाड़ी मन्दी चलती है ।

रक्तकोपसे नाडी कुछ गरम और भरी-सी होती है ।

आमके रोगोंमे नाडी भारी होती है । जिनकी अग्नि दीप्त होती है, उनकी नाड़ी हलकी और ठीक चालपर जल्दी-जल्दी चलती है ।

सुखी आदमीकी नाडी स्थिर चालसे चलती और बलवान होती है।

भूखे आदमीकी नाडी चपल और अघायेकी स्थिर होती है ।

दो दोषोंका कोप होनेपर, नाड़ी कभी मन्दी चलती और कभी तेजीसे चलती है । ऐसे मौकेपर नाड़ीके वेगसे, बारीकीसे विचार करके, कुपित हुए दोनों दोषोंका पता लगाना चाहिये ।

अँगूठेसे ऊपरकी नाड़ी यदि समान चालसे चले, तो समझ लो कि, नाडीमे कोई दोष नहीं है ।

ज्वर चढ़नेके समय नाड़ी गरम और तेज चलती है । भय, क्रोध, चिन्ता और घबराहटमे भी गरम और तेज चलती है ।

कफ और प्रदर-रोगमे नाड़ी स्थिर होती है ।

अजीर्ण-रोगसे नाड़ी कठिन और भारी हो जाती है ।

भूख लगनेपर नाड़ी प्रसन्न, हलकी और जल्दी चलनेवाली होती है । प्रमेह, बवासीर, मल-वृद्धि और अजीर्णमें नाड़ी जल्दी-जल्दी चलती है ।

गर्भवती होनेपर नाड़ी भारी और वादीको लिये हुए होती है ।

वात ज्वरमें नाडी टेढी और चपलता-पूर्वक चलती है और छूनेसे शीतल मालूम होती है, किन्तु पित्त-ज्वरमें सीधी, लम्बी और जल्दी-जल्दी दोड़ती चलती है ।

अगर नाडी देखनेके समय पहले मन्दी मालूम हो, पीछे धीरे-धीरे प्रचंड वेगसे चलने लगे, तो समझ लो कि, जाडेका बुखार या कम्प-ज्वर होगा । ऐसी नाडीमे इकतरा, तिजारी या चोथैया ज्वर आता है । भूत प्रेतकी बाधा या इकतरामे नाडीका चलना मालूम नहीं होता।

सोते हुए आदमीकी नाडी जोरसे फड़कती है ।

रक्तपित्त-रोगमे नाडी मन्दी, कठिन और सीधी चलती है ।

कफ खाँसीमे नाड़ी स्थिर और मन्दी चलती है, किन्तु श्वास-रोगमे नाडीकी चाल तेज हो जाती है ।

राजयक्ष्मा रोगमें नाडीकी चाल हाथीकी चालके समान हो जाती है ।

नशेवालेकी नाड़ी कठिनताके साथ सूक्ष्म गतिसे चलती है और चारो ओरसे भारी मालूम होती है ।

बवासीरमे नाड़ी स्थिर और मन्दी तथा कभी टेढ़ी और कभी सीधी चलती है ।

अतिसार-रोगमे नाडी ऐसी मन्दी हो जाती है, जैसे ठण्डके मौसम-मे जोंक हो जाती है ।

मूत्राघातमें नाडी बारम्बार टूटती हुई फड़कती है ।

पाण्डु या पीलियेमे नाड़ी चंचल और तीक्ष्ण हो जाती है । कभी जान पडती है और कभी नहीं जान पडती ।

कोढ़में नाडी कठिन चलती है । उसकी चाल भी एक नहीं रहती, कभी चलती है कभी नहीं ।

असाध्य नाड़ी ।

रोग असाध्य होनेपर कभी नाडी मन्द, कभी तेज और कभी चलते-चलते खण्डित होकर यानी टूटकर चलने लगती है, यानी कभी सूक्ष्म, कभी स्थूल, इस तरह घड़ी-घंडीमे चाल बदलकर चलने लगती है।

असाध्य नाड़ी चमडेके ऊपरसे दीखने लगती है। नाडीकी चाल अत्यन्त चंचल हो जाती है और कुछ दबी-सी रहती है। हाथमे आती है और बिछल जाती है और अत्यन्त चचल हो जाती है।

जो नाडी ठहर-ठहरकर चलती है, यानी चलती है, ठहर जाती है और फिर चलती है, वह प्राणनाशक होती है। अति शीतल और अत्यन्त क्षीण नाड़ी भी प्राणनाश करती है।

जिस रोगीकी नाड़ी बहुत ही सूक्ष्म और बहुत ही शीतल होगी, वह किसी तरह न जीवेगा।

जिस रोगीकी नाडी कभी कैसी और कभी कैसी चलती है और त्रिदोष-युक्त होती है, वह शीघ्र ही मर जाता है।

जो नाडी रुक-रुककर चलती है, वह प्राण नाश करती है। इसी तरह जो एकदमसे तेज हो जाती है अथवा एकदमसे शीतल हो जाती है, वह निश्चय ही प्राण नाश करती है।

रोगी प्रलाप करता हो, आनतान बकता हो, प्रलापके शेषमे नाडी शीघ्रगतिसे चलती हो, दोपहरको या सन्ध्या-समय आगके समान ज्वर हो जाय, तो वह रोगी दिन-भर जीवे, दूसरे दिन तो अवश्य ही मर जाय।

जिसकी नाड़ी स्थिर हो और मुँहमे बिजलीकी-सी दमक दीखे, वह एक दिन जीवे, दूसरे दिन मर जावे।

सन्निपातमे जिसकी नाडी मन्दी-मन्दी, टेढ़ी-मेढी, घबराहट लिये, काँपती हुई चालसे रुक-रुककर चले, कभी नाड़ीका फड़-

कना मालूम ही न हो, नष्ट हो जाय या जो अपने असल मुकामसे हट जाय, देखनेवालेकी अँगुलियोंको न मालूम पड़े और फिर जरा देरमें ठिकानेपर आ जाय या मालूम पड़ने लगे—ऐसे लक्षणवाली नाड़ी सन्निपात-रोगीको मार डालती है ।

कलाईके अगले भागमें नाडी तेजीसे चले, कभी शीतल हो जाय, चिपचिपा पसीना आवे, ऐसी नाडी सात दिनमें रोगीको मार देती है ।

शरीर शीतल हो, मुँहसे साँस चले, नाडी अत्यन्त गरम हो और तेजीसे चले, तो रोगी पन्द्रह दिनमें मरे ।

जब नाडी रुक-रुककर चलने लगे, अथवा एकदमसे ऐसी हतवेग हो जाय कि, उसका फड़कना मालूम ही न पडे, तो रोगीको एक दिनमें मरा समझो ।

अगर नाडी कभी मन्दी चले और कभी ज़ोरसे चले, तो उसे दो दोषोंवाली समझो । अगर दो दोषोंवाली नाडी भी अपने स्थानसे भ्रष्ट हो जाय, यानी कभी कहीं और कभी कहीं जा चले, तो समझ लो कि रोगी मर जायगा ।

यदि किसीकी नाड़ी थोड़ी देर तेज चलकर फिर धीमी हो जाय, तथा शरीरमें शोथ न हो, तो उस रोगीकी मृत्यु सातवें या आठवें दिन समझना ।

जिसकी नाडी अँगूठेकी जडसे या अपने स्थानसे आधे जौ-भर हट जाय, तो उसकी मृत्यु तीन दिनमें हो ।

सन्निपात-ज्वरमें जिसका शरीर बहुत गरम हो, पर नाड़ी अत्यन्त शीतल हो, तो उसकी मृत्यु तीन दिन बाद समझनी ।

अगर नाडीकी चाल भौंरेकी तरह हो, यानी दो-तीन बार बहुत तेज़ चलकर, फिर थोडी देरको गायब हो जाय, फिर उसी तरह तेज चलने लगे । यदि बारबार ऐसा जान पडे, तो कह दो कि रोगी एक दिनमें मरेगा ।

किसी रोगीके हृदयमे जलन हो और उसकी नाड़ी अपने स्थान—अँगूठेके मूल—से खिसककर थोडी-थोड़ी देरमे चलती हो, तो जब तक हृदयमे जलन है तभी तक जीवन है। जलनकी शान्ति होते-होते ही रोगी मर जायगा।

मरे हुएके चिह्न ।

नसो और नाडियोका फड़कना वन्द हो जाय, इन्द्रियोका हिलना-जुलना, देखना-भालना, सुनना प्रभृति वन्द हो जाय, सारा वदन शीतल हो जाय, सब रोग शान्त हो जायँ, चिन्ता और मानसिक विकारोंके रास्ते सूने हो जायँ, होश विल्कुल न हो, चन्द्र और सूर्य स्वर अपने गुणोंसे रहित हो जायँ—दोनो नथनोसे हवाका आना-जाना वन्द हो जाय—ऐसी हालत होनेसे समझ लो कि, मृत्यु हो चुकी ।

नाड़ी देखना सीखनेकी तरकीव ।

नाड़ी देखनेका काम महा कठिन है। यह गुरुके शिष्यको पास विठाकर वताने, रोगीकी नाडी अपने सामने दिखाने, भूल हो तो उसको वताने अथवा अभ्यासीके हर किसी रोगीकी नाड़ी देखने और पुस्तकसे मिला-मिलाकर अभ्यास वढ़ानेसे आ सकती है, अभ्यास वडी चीज है। अभ्याससे विना गुरु और विना पुस्तकके भी नाडी-ज्ञान हो सकता है। मगर सैकड़ो-हज़ारों रोगियोंकी नाड़ी देखनी होगी और वुद्धि लड़ानी होगी। अगर गुरु मिल जायगा, तो वहुत ही जल्दी ज्ञान हो सकेगा और जरा भी तकलीफ न होगी। जहाँ तक हो सके, नाड़ी-परीक्षा सीखनेको गुरु तलाश करना चाहिए। मगर नाड़ीका पूरा ज्ञान रखनेवाले वैद्य आजकल भारतमे कहीं-कहीं और वहुत थोड़े है। यों तो रोगीके दिलमे विश्वास जमानेको सभी नाड़ी पकड़ लेते है ।

डाक्टरोंकी नाड़ी-परीक्षा।

डाक्टर लोगोंको नाड़ीका ज्ञान नहीं होता। वे लोग नाड़ीको छूते तो हैं, मगर वह ढोंगमात्र है। एक सेकण्डमें खाली हाथसे नाड़ीके छू देनेसे कोई बात मालूम नहीं हो सकती। डाक्टरीमें नाड़ीको "पल्स" कहते हैं। अगर डाक्टर नाड़ी देखे, तो खाली सर्दी-गरमीकी जियादती अथवा सर्दी-गरमीकी कमी मालूम कर सकता है। डाक्टर लोग घड़ी सामने रखकर, नाड़ीपर हाथ रखकर नाड़ीके फड़कनेको गिनते हैं। उनके यहाँ इसका एक हिसाब है। यह हिसाब वैद्योंको भी जानना चाहिये, क्योंकि यह सहज काम है और इसमें भूल नहीं हो सकती। उम्रके कम-जियादा होनेके साथ एक मिनिटपर इसका हिसाब है।

स्वस्थ मनुष्यकी नाड़ी १ मिनिटमें ६० से ७५ बार और किसी-किसी स्वस्थकी नाड़ी १ मिनिटमें ५० बार चलती है तथा किसी स्वस्थकी नाड़ी १ मिनिटमें ६० बार भी चलती है।

पेटके भीतरके बच्चेकी नाड़ी	१	मिनिटमें	१६०	बार
जमीनपर गिरे बालककी	१	,,	१४० से १३०	बार
एक सालकी उम्र तक	१	,,	१३० से ११५	बार
दो सालकी उम्र तक	१	,,	११५ से १००	बार
तीन सालकी उम्र तक	१	,,	१०० से ९९	बार
सात सालकी उम्र तक	१	,,	९० से ९५	बार
सातसे चौदह वर्ष तक	१	,,	८५ से ८०	बार
चौदहसे तीस वर्ष तक	१	,,	८०	बार
तीससे ५० वर्ष तक	१	,,	७५	बार
पचाससे ८० वर्ष तक	१	,,	६०	बार

ज्यों-ज्यों उम्र अधिक होती जाती है, नाड़ीका फड़कना कम होता जाता है। हालके जन्मे बालककी नाड़ी १४० से १३० बार तक

फड़कती है। जवान और अधेडकी नाड़ी केवल ८० वार और अस्सी वर्षके बूढेकी ६० वार ही फड़कती है। किसी-किसीने बूढेकी नाड़ी १ मिनिटमे ६५ से ५० वार तक भी लिखी है। यदि किसीकी नाडी उम्रके हिसावसे जितनी कम फड़के उतनी ही सर्दी समझो और जितनी जियादा फड़के उतनी ही गरमी समझो। सर्दी होनेसे नाड़ी कमती वार फडकती है, गरमी होनेसे जियादा वार फड़कती है। जैसे एक जवानकी नाड़ी हमने देखी, वह एक मिनिटमें ८० वार फडकनी चाहिये, मगर वह ७० वार फडकी, तो समझ लो कि १० अंश सर्दी वढ़ी हुई है और ६० वार फडकी तो १० अंश गरमी वढ़ी हुई समझो।
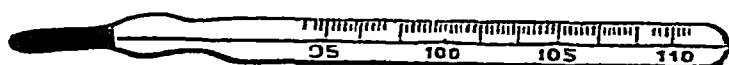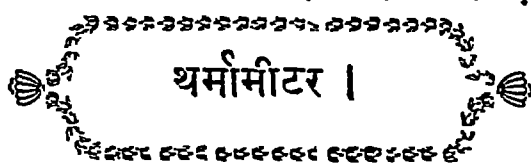
थर्मामीटर।

आजकल थर्मामीटर नामक एक यन्त्र चला है। वह एक कॉचकी नली-सी होती है। उसमे एक ओर पारा रहता है। उसके आगे छोटी-छोटी रेखाएँ और नम्वर लिखे रहते हैं। इस यन्त्रसे शरीरकी गरमी और सर्दीका वहुत ही ठीक पता लगता है। अगर थर्मामीटर विगड़ा हुआ न हो, तो कभी भूल नही हो सकती, वुखार देखनेमें इससे वड़ी सच्ची सहायता मिलती है। डाक्टर तो इसे अपने जेवमे रखते ही है, प्रत्येक वैद्यको भी इसे अपने पाकिटमे रखना चाहिये। (थर्मामीटरका चित्र ऊपर देखिये)

शारीरिक गरमीसे इसका पारा धीरे-धीरे ऊपरकी ओर, जिधर नम्वर और रेखाये लिखी है, चढ़ता है। इन रेखाओ और अङ्कोको अङ्गरेज़ीमे डिग्री कहते है। पारा जितनी डिग्री ऊँचा चढे, उतनी ही गरमी समझनी चाहिये।

इस यन्त्रको रोगीकी वगलमे इस तरह रखते है, जिससे पारेकी

तरफकी नली बगलमें दबी रहती है, पारेका अंश बाहर नहीं रहता। पारेका अंश यदि बाहर रह जायगा, तो ठीक काम न होगा, इसलिए इसमें भूल करना ठीक नहीं।

पहले रोगीको करवट लेकर लिटाना चाहिए। पीछे नीचेकी बगलमे, जिधर पारा रहता है उधरसे थर्मामीटरको दबा देना चाहिये। दबानेसे पहले बगलका पसीना वगैरः कपड़ेसे पोंछ देना चाहिये। अगर मुँहमें थर्मामीटर लगाना हो, तो जीभके नीचे लगाना चाहिये और मुँह बन्द करवा देना चाहिये।

कोई थर्मामीटर एक मिनिटमे चढ़ जाता है, कोई ३ मिनिटमे, कोई पॉच मिनिटमे और कोई इससे भी जियादा मिनिटोंमे चढ़ता है। मतलब यह है कि, जितनी मिनिटका थर्मामीटर हो, उतनी ही मिनिट तक बगल या मुँहमे रखना चाहिये, कम या जियादा देर तक रखना ठीक नहीं है। जितनी मिनिटका थर्मामीटर होता है, उसपर लिखा रहता है और जो थर्मामीटर कमती-से-कमती मिनिटमे चढ़ जाता है, उसीका मूल्य जियादा होता है। एक मिनिटमे चढ़ जानेवाला थर्मामीटर अच्छा होता है।

सवेरे या शामको थर्मामीटर लगाना चाहिये। ज़रूरत होनेसे चाहे जब लगा सकते हो। सख्त बुखारोंमे घण्टे-घण्टे या दो-दो घण्टोंपर टेम्परेचर लेना चाहिये और एक कापीमें लिख लेना चाहिये, इससे चिकित्सामे बड़ा सुभीता होता है।

तन्दुरुस्तीकी हालत।

में ताप या टेम्परेचर ६८ डिग्री, डेसीमल चार फॉरेनहीट और २८ सालसे कम उम्रवालेका ताप ९९ डिग्री डेसीमल (दशमलव) ४ फॉरेनहीट होता है। धूपमें रहने या चलकर आने, अथवा आगके पाससे उठकर आने, कसरत करने या जीना चढ़कर आनेके बाद तत्काल थर्मामीटर लगाया जाय तो ६८·४ या ९९·४ डिग्रीसे भी

अधिक ताप या गरमी रहती है । दिनमे सोकर उठनेके बाद, आरामसे बैठे रहने या लेटे रहनेके बाद, यदि तत्काल थर्मामीटर लगाया जाय तो मामूलसे कम गरमी नजर आती है। तन्दुरुस्त शरीरमे भी रातको ताप कम रहता है, सवेरेसे बढ़ने लगता है और मध्याह्नकालमे जियादा हो जाता है । तन्दुरुस्त या स्वस्थ शरीरमे मामूली तौरसे ६८ दर्जे गरमी-सर्दी रहती है । अगर ६८ से ऊपर पारा चढ़े, तो आप उतनी ही गरमी बढ़ी समझें और अगर ६८ डिग्रीसे कम हो जाय तो उतनी ही सर्दी समझे। देखा गया हे, गरम मिजाजवालोके तन्दुरुस्त रहनेकी हालतमे ६८॥ या ६६ डिग्री तक टेम्परेचर होता है । इससे जियादा होनेपर रोग समझा जाता है ।

ज्वरमें टेम्परेचर ।

जुकामकी हरारतमे	...	१०० डिग्री
मामूली ज्वरमें ..	...	१०१॥ ,,
तेज बुखारमे .	..	१०४ ,,
मारक ज्वरमे .	.	१०६॥ ,,
अभिन्यास ज्वरमें .	..	१०६।१०७ ,,
राजयक्ष्मा (तपेदिक) मे	...	१०२।१०३ ,,

ज्वरमें १०५ डिग्रीसे जियादा ताप रहनेसे भय रहता है, १०६ से ऊपर होनेसे मृत्युकी आशङ्का पूरी पक्की हो जाती है और १०८ डिग्रीसे ऊपर ताप होनेसे रोगी अवश्य मर जाता है ।

किसी ज्वर-युक्त रोगमे यदि ताप १०१ या १०४ डिग्री सदा रहे, तो आराम होनेकी सम्भावना समझो । यदि १०० या १०५ डिग्री ताप सदा बना रहे, तो रोगका आराम होना मुश्किल है । अगर १०६ या १०७ डिग्री रहे तो डर समझो, अगर १०६ या ११० डिग्री हो जाय तो मृत्यु निश्चय होगी ।

राजयक्ष्मा रोगमे यकृत या लिवरमे घाव हो, तो ताप १०२ या

१०३ डिग्री रहता है, पर ज्यों-ज्यों घाव बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों ताप भी बढ़ता जाता है।

रोग आराम हो रहा है और उधर ताप भी धीरे-धीरे घट रहा है, तो समझ लो कि, अब दुबारा रोगके लौट पडनेका भय नही है।

हैजेमे, मोतके नजदीक होनेसे, ताप घटकर ७७ से ७६ डिग्री तक हो जाता है। नवीन ज्वर, विषम ज्वर, पुराने क्षयरोग और मौतके निकट होनेसे, ताप ६८ डिग्रीसे नीचेकी ओर चला जाता है।

मूत्र-परीक्षा ।

नाडी-परीक्षाके प्रधान होनेपर भी बहुतसे रोगोमे अन्यान्य परीक्षाओके विना भी काम नहीं चलता। जैसे, प्रमेह आदि रोगोमे मूत्र-परीक्षाकी, अतिसार, संग्रहणी और सन्निपात प्रभृतिमे मल-परीक्षाकी, आमवातमे जिह्वा-परीक्षाको, कण्ठ-रोगोमें शब्द-परीक्षाकी, चर्म-रोगोमे स्पर्श-परीक्षाकी, पीलिये और कामला प्रभृतिमे नेत्र-परीक्षाकी जरूरत होती है। प्रत्येक रोगमे जैसी परीक्षा होनी चाहिये, वैसी ही होनेसे रोग ठीक समझमे आता है। पहले हम मूत्र-परीक्षा लिखते हैः—

यूनानी चिकित्सामें इसकी बहुत चाल है। हकीम लोग मूत्र-परीक्षाको "कारूरह देखना" कहते हैं। अब हमारे वंगसेन, वैद्य-विनोद, योगचिन्तामणि प्रभृति ग्रन्थोमे भी मूत्र-परीक्षा लिखी है। "चरक-सुश्रुतादि"मे तो इसका जिक्र भी नहीं है। हमारी समझमे इस तरहकी परीक्षा वैद्यकमे यूनानीसे आई मालूम होती है। ऐसे तो मल, मूत्र, जीभ और आँखके देखनेकी बात और भी सस्कृत-ग्रन्थोमें लिखी है, पर ये तरकीवें नहीं है।

मूत्र लेनेकी विधि ।

वैद्य रोगीको चार घड़ीके सवेरे पलॅगसे उठाकर, कॉच या

काँसीके बर्तनमे पेशाब करावे, किन्तु पहली धारको जमीनपर गिरवा दे और बीचकी धारको उक्त प्रकारके बर्तनोमेसे किसीमे ले, पीछेकी धार भी जमीनपर गिरा देनी चाहिये। मतलब यह कि, पहली और पिछली धार वैद्य काँचकी शीशी या काँसीके बर्तनमे न ले, केवल बीचकी धार ले। पीछे शीशी हो तो कागसे बन्द कर दे और चौड़ा बर्तन हो तो कपड़ेसे अच्छी तरह ढक दे, ताकि हवा न जा सके।

परीक्षा करनेकी विधि।

सवेरे सूरज निकलनेपर, जब अच्छी तरहसे उजाला हो जाय, चाँदनी या धूपमे उस पेशाबके बर्तनको रखकर, कपड़ा हटाकर मूत्रकी परीक्षा करे।

मूत्रसे रोगोंकी पहचान।

अगर बादीका कोप होगा तो पेशाब पानीकी तरह साफ, रूखा और मिकदारमे जियादा होगा।

अगर पित्तका कोप होगा, तो पेशाब लाल या पीला होगा और मिकदारमे थोडा होगा।

अगर कफका कोप होगा, तो पेशाब सफेद, गाढ़ा और चिकना होगा।

दो दोषोके कोपमे दो दोषोके और तीन दोषोके कोपमे तीनो दोषोके लक्षण नजर आते है।

"वैद्य-विनोद"मे लिखा है,—वायुका कोप होनेसे पेशाब नीला, सफेद और किसी कदर पीला होगा, पित्तका कोप होनेसे पेशाब बहुत गर्म और बहुत पीला होगा और कफका कोप होनेसे पेशाब चिकना, सफेद और शीतल होगा। त्रिदोषमे पेशाब काला, गर्म, लाल और धूमिल रंगका होगा।

एक और वैद्यराज लिखते हैं,—वायुसे दूषित मूत्र चिकना, पीला, अथवा काला पीला अथवा अरुण होता है। पित्तसे दूषित मूत्र लाल और कफसे दूषित झागदार और गदला होता है।

ज्वरमे सफेद धारा, महाधारा और पीली धारा होती है। महाज्वरमे लाल धारा होती है। यदि काली धारा हो, तो रोगीकी मृत्यु समझनी चाहिये। सन्निपातमे पेशाबका रङ्ग काला होता है।

जलोदर-रोगमे पेशाब घीके दानोंके समान होता है।

आमवातमे पेशाब मॉठेके समान होता है।

अजीर्णमे पेशाबका रङ्ग सफेद और लाल होता है अथवा बकरीके पेशाब-जैसा होता है।

क्षयरोगमे भी मूत्रका रङ्ग काला होता है। अगर क्षय-रोगमे पेशाबका रङ्ग सफेद हो, तो असाध्य समझना। ज्वरकी अधिकतामे मूत्र लाल और स्वच्छ होता है। कभी-कभी धूएँके रंगका भी होता है।

पित्तज्वरमे पेशाब पीला, कफज्वरमें झागदार, वातज्वरमे काला और निरामज्वरमे ईखके रसके समान होता है।

प्रसूत-दोषमे पेशाब ऊपरसे पीला, नीचेसे काला और बुदबुदेकी तरहका होता है।

सन्निपातज्वरमे मूत्र काला और साफ निर्मल होता है।

पित्तोल्बण यानी पित्ताधिक्य-सन्निपातमे पेशाब ऊपरसे पीला और नीचे लाल होता है।

रसाधिक्य होनेसे पेशाब ईखके रसके समान होता है और आँखें लाल-पीली होती है। रसाधिक्यमे लङ्घन कराना लाभदायक है।

उदर-वृद्धि यानी आहारसे पेट बढ़नेकी दशामे पेशाब तेलके समान चिकना होता है।

रुधिर-कोपमे पेशाब ऊपरसे और नीचेसे लाल होता है।

रक्तवातमे पेशाबका रङ्ग लाल होता है।

रक्तपित्तमे पेशाबका रङ्ग कसूमके रङ्गके समान होता है।

पित्तकी अधिकतामे पेशाबका रंग पीला और साफ होता है।

ज्वर प्रभृति रोगोंमें रसकी अधिकता होनेसे पेशाब ईख या गन्नेके रसके समान होता है।

जीर्णज्वरमे पेशाब बकरीके पेशाब-जैसा होता है ।

मूत्रातिसार-रोगमें पेशाव मिकदारमें जियादा होता है । अगर उसे कुछ देर रखकर देखे, तो नीचे लाल रंगका होता है ।

कफवातमे पेशाब कॉजी-जैसा होता है। कफपित्तमे पाण्डु और पीले रंगका होता है।

मलकी अधिकता होनेसे पेशाब पीला और मिकदारमे जियादा होता है। ख़ून-विकारमे पेशाब ख़ूनके समान होता है।

बहुमूत्र-रोगमे पेशाव बारबार होता है। इस रोगमे पेशाव करते समय दर्द नहीं होता और पेशाव साफ, शीतल, गन्धहीन होता है।

सोजाकमे पेशाब ऐसा जल-जलकर होता है कि, रोगी रो उठता है। पेशाबके नामसे जाडा चढ आता है। ऐसा मालूम होता है, मानो घावोपर नमक छिडका जाता है। बूँद-बूँद पेशाब होता है।

हैजेमे पेशाब बन्द हो जाता है। यह लक्षण खराब होता है ।

घोर तेज सन्निपातमे प्रायः पेशाब काला हो जाता है। यह हालत खराब है ।

वातज्वरमे केशर-जैसा पीला, पित्तज्वरमे साफ पीला और कफज्वरमे सफेद और गाढ़ा पेशाब होता है ।

सोम-रोगमें शरीरकी धातुऐं पेशाबके रास्तेसे बहा करती है। उठते-उठते धोतीमे पेशाब हो जाता है ।

पुराने रोगमे पेशाब लाल हो जाता है ।

अतिसारमे पेशाब नीचेसे बहुत लाल दीखता है ।

धातुओंकी समानता होनेपर पेशाब कुएँके जलकी तरह साफ होता है। जलकी तरहका,'बिजौरे नीबूकी तरह और कॉजीकी तरहका पेशाब निर्दोष होता है।

पित्त-प्रकृतिवालेका पेशाब तेलके समान होता है, कफ-प्रकृतिवालेका कीचके पानीके समान और वात-प्रकृतिवालेका जलके समान और मिकदारमें ज़ियादा होता है।

उदक-प्रमेहवालेका पेशाब स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, गन्ध-रहित पानीके समान, कुछ गाढा और चिकना होता है।

इक्षु-प्रमेहवालेका पेशाब ईखके रसके समान अत्यन्त मीठा होता है।

सुरा-प्रमेहवालेका पेशाब शराबके समान, ऊपरसे निर्मल और नीचेसे गाढ़ा होता है।

पिष्ट-प्रमेहवालेका पेशाब पिसे चाँवलोंके पानीके समान सफेद और मिकदारमे जियादा होता है।

शुक्र-प्रमेहवालेका पेशाब शुक्र यानी वीर्यके समान होता है अथवा उसके पेशाबमे वीर्य मिला रहता है।

सिकता-प्रमेहवालेके पेशाबमे बालू रेतके समान मलके रवे होते है।

शीत-प्रमेहवालेका पेशाब मीठा और बहुत ठण्डा होता है। यह रोगी बारम्बार पेशाब करता है।

शनैर्मेहवाला धीरे-धीरे पेशाब करता है।

लाला-प्रमेहवालेका पेशाब लारके समान, तारयुक्त और चिकना होता है।

क्षार-प्रमेहवालेका पेशाब खारी जलके समान होता है।

नील-प्रमेहवालेका पेशाब नीले रंगका अथवा पपैहा पक्षीके पखके समान होता है।

काल-प्रमेहवालेका पेशाब स्याहीके समान होता है।

हारिद्र-प्रमेहवालेका पेशाब हल्दीके समान और दाहयुक्त होता है।

माजिष्ठ-प्रमेहवालेका पेशाब बदबूदार और मँजीठके रङ्गका होता है।

रक्त-प्रमेहवालेका पेशाब बदबूदार, गरम, खारी और ख़ूनके समान सुर्ख़ होता है।

वसामेहीका पेशाब चरबी-मिला या चरबीके समान होता है।

मज्जा-प्रमेहीका पेशाब मज्जा-मिला या मज्जाके समान होता है ।

क्षौद्र-प्रमेहीका पेशाब कसैला, मीठा और चिकना होता है ।

हस्ति-प्रमेहीका पेशाब मस्त हाथीके समान निरन्तर वेग-रहित और तारदार होता है । यह रोगी ठहर-ठहरकर मूतता है ।

तेल द्वारा मूत्र-परीक्षा ।

पहले लिखी हुई रीतिसे पेशाब लेकर धूपमे रख लेना चाहिये, पीछे एकचित्त होकर उसमे तेलकी बूँद डालनी चाहिये ।

अगर तेलकी बूँद डालते ही पेशाबमे बबूले या बुदबुदे-से हो जायँ तो पित्त-विकार समझो ।

अगर बूँदें रूखी और काली-सी दीखें, तो वायु-विकार समझो । इसमे तेलकी बूँदे पेशाबपर तैरा करती है ।

अगर तेलकी बूँदे कीचके समान अथवा तालाबके जलके समान हो जायँ, तो कफका विकार समझो । इस दशामे तेलकी बूँदे पेशाबमें मिल जाती है ।

अगर तेलकी बूदोंके डालनेसे पेशाबका रङ्ग सरसोंके तेलके समान हो जाय, तो वातपित्तका विकार समझना चाहिये ।

साध्य, असाध्य या मृत्यु ।

अगर तेलकी बूँद पेशाबपर जाकर फैल जाय, तो रोगको साध्य समझो, अगर न फैले बूँदकी बूँद ही रही आवे, तो असाध्य समझो ।

अगर तेलकी बूँद डालनेसे पूरब, पच्छिम या उत्तरकी ओर फैले, तो रोगी रोगसे निजात (छुटकारा) पा जायगा ।

अगर तेलकी बूँदे दक्खन, ईशान, आग्नेय, वायव्य या नैर्ऋतकी ओर फैले, तो रोग असाध्य समझो ।

अगर तेलकी बूँद पेशाबमे डालनेसे डूब जाय या नीचे बैठ जाय, तो रोगको असाध्य समझो ।

अगर तेलकी बूँद पेशाबमें डालनेसे फैलकर अनेक प्रकारकी विकृत मूर्तियोंके समान हो जाय, अथवा हल, कछुआ, गधा अथवा ऊँटकी-सी शकलकी हो जाय, तो रोगको असाध्य समझो।

अगर तेलकी बूँद हंस या छत्र आदिके समान हो जाय, तो रोगी आराम होकर बहुत दिनों तक जीवेगा।

अगर तेलकी बूँद पेशाबमें चक्कर खाने लगे अथवा उसके बीचमें छेद हो जाय अथवा तलवार, दण्डे या धनुष (कमान) के आकारकी हो जाय, तो रोगीकी मृत्यु समझो।

अगर तेल-बिन्दु तालाब, कमल, हंस, हाथी, छत्र या तोरणके आकारकी हो जाय, तो रोगीको दीर्घायु समझो।

अगर पेशाबमें तेलकी बूँद बबूलेकी तरह उठे, तो देव-दोष समझो।

अगर तेलकी बूँद पूरब, पच्छिम, उत्तर, वायव्य या नैर्ऋत—इन दिशाओंमें फैले तो शुभ* है। अगर दक्खिन, ईशान और अग्निकोणमें फैले तो अशुभ है। ऐसी तेल-परीक्षा समतल या हमवार जमीनमें करनी चाहिये।

"वैद्य-विनोद"में लिखा है—पेशाबमें डाली हुई तेलकी बूँदका आकार कमल, शंख, मणि, चँवरके जैसा हो तो आरोग्यता समझो, यदि साँप, सिंह, बैल, बिच्छू, कछुआ और केकड़ेके समान हो तो रोगी मर जायगा।

अगर तेल-बिन्दुका आकार त्रिशूल, धनुष, वज्र, कुठार, खड्ग, दण्ड, बाण और छुरी प्रभृतिका-सा हो तो रोगी मर जायगा।

वायुका विकार होनेसे तेलकी बूँद सर्पके आकारकी-सी हो जाती है। पित्तका विकार होनेसे छत्रके समान गोल और फैली हुई होती है। कफका विकार होनेसे मोतीकी तरहकी रहती है। अगर

---

* वङ्गसेनने ईशान, आग्नेय, वायव्य और नैऋत्य इन चारों विदिशाओंकी ओर तेलकी बूँदका फैलना बुरा लिखा है, मगर 'योग-चिन्तामणि' वालेने वायव्य और नैर्ऋतकी ओर फैलना शुभ लिखा है।

तेलकी बूँद चलनीके समान या दो सिरवाले आदमीकी-सी हो जाय, तो भूत-बाधा समझो।

अगर तेलकी बूँद पेशाबपर फैल जाय तो रोग साध्य है। अगर न फैले तो कष्टसाध्य है। अगर नीचे बैठ जाय तो असाध्य है।

अगर तेलकी बूँदका फैलाव पूरब या उत्तरकी ओर जियादा हो, तो रोगी जल्दी आराम हो, अगर दक्खनकी ओर हो, तो देरसे आराम हो, अगर पच्छमकी ओर हो तो आयुका नाश हो।

तेलकी बूँदके दिशाओंकी ओर फैलनेके सम्बन्धमें ज़मीन-आस्मानका मत-भेद है। बङ्गसेनने दक्खनकी ओर बूँदका फैलना बुरा लिखा है, "योग-चिन्तामणि" वालेने भी ऐसा ही लिखा है। नागार्जुन महोदय कहते हैं कि, दक्खनकी ओर फैले तो देरसे आराम हो। उक्त दोनों सज्जनोंने पच्छमकी ओरको फैलना अच्छा लिखा है, किन्तु नागार्जुन पच्छमकी ओर फैलनेको आयु-नाशक कहते हैं। पाठक स्वयं आजमा कर देखें।

यूनानी मत।

यूनानी हिकमतवाले कहते हैं, कि सवेरेके समय पेशाब देखना चाहिये। अगर पेशाब सफेद हो, तो सफरा यानी पित्तकी जियादती समझो, अगर सुर्ख हो तो ख़ूनकी जियादती समझो, अगर हरी रङ्गत हो तो सौदा यानी वातकी जियादती समझो, अगर सफेद हो तो बलगम यानी कफ अथवा चरबीका आना समझो।

गरमी होनेसे पेशाब लाल, पीला और कम आता है तथा जलन होती है। सर्दी होनेसे पेशाब सफेद, जियादा और बिना जलनके आता है।

मल-परीक्षा।

वातके कोपसे मल टूटा हु- ... मिला रङ्गका होता है।

वात-कफके कोपसे सुर्खी-माइल पीला होता है।

वात-पित्तके कोपसे मल बँधा हुआ, कभी बिखरासा या पीला-कालासा होता है।

कफपित्तके कोपसे पीला काला, कुछ गीला और चीकटसा होता है।

त्रिदोषके कोपसे काला, पीला, टूटासा, सफेद और बँधा हुआ होता है।

अजीर्ण-रोगीका मल बदबूदार और ढीला होता है।

वातादि दोष क्षीण होनेसे मल कपिल और गाढ़ा होता है।

जलोदरवालेका मल सफेद और बहुत ही सडा हुआ होता है।

क्षयीवालेका मल काला होता है।

आमवातवालेका मल कमरमें दर्द होकर पीला होता है। इसमें दस्त कम होता और पेट फूला रहता है।

बहुत काला, बहुत सफेद, बहुत पीला या बहुत लाल मल अथवा अत्यन्त गरम मल जिसका होता है, उसकी मृत्यु होती है।

तीक्ष्ण अग्निवालेका मल सूखा होता है और मन्दाग्निवालेका मल पतला होता है।

जिसका मल सड़ा हुआ, बदबूदार या मोरकीसी चन्द्रिकाके समान होता है, वह रोगी असाध्य होता है।

वात-रोगमे मल बँधा हुआ, रूखा और धूमिल रङ्गका होता है। पित्त-रोगमे पीला और पतला होता है, कफमे सफेद, गाढ़ा और बहुत होता है। दो दोषो और तीन दोषोके मिलकर कोप करनेसे मल काला, कम और किसी कदर गरम होता है।

अतिसार-रोगमे मल पतला होता है और कृमि-रोगमे भी मल पतला होता है, किन्तु कृमि-रोगीका जी मिचलाया करता है।

हैजेमे पानीके समान पतले दस्त होते है, उनमे मल नहीं रहता।

सग्रहणीमें कच्चा अन्न बिना पचे यो-का-त्यो निकलता है।

वातज्वरमे दस्तकब्ज होता है या सूखा और थोडा दस्त होता है। पित्तज्वरमे दस्त पतला और पीला होता है। कफ-ज्वरमे दस्त सफेद होता है।

शब्द-परीक्षा ।

कफ-रोगीकी आवाज भारी होती है, पित्त-रोगी साफ बोलता है और वादीका रोगी घरघर करके बोलता है।

स्पर्श-परीक्षा ।

पित्तके कोप करनेसे शरीर गरम रहता है, वात-रोगीका शरीर शीतल, कफ-रोगीका शरीर शीतल, चिपचिपा, चिकना और पानीसे भीगासा होता है। त्रिदोषमे तीनो दोषोके लक्षण मिलते है। बुखार किसी भी तरहका हो, शरीर गरम रहता ही है। शीताङ्ग सन्निपातमे शरीर बर्फके समान शीतल हो जाता है और अन्तक सन्निपातमे शरीर आगकी तरह जलता है।

वर्ण-परीक्षा ।

वायुके रोगोमें शरीररूखा, धूएँके रङ्गका और रोग पुराना पड़नेसे पीला हो जाता है। वातज्वरमे शरीर रूखा रहता है।

पित्त-रोगीका शरीर पीला होता है। पित्तज्वरमें भी शरीर कुछ पीला रहता है।

पाण्डु-रोगमे भी शरीर पीला हो जाता है। कामला जो पीलियाका भेद ही है, उसमे भी पीला हो जाता है। हलीमक रोगमे काला-पीला या हरा रङ्ग हो जाता है।

कफ-रोगीका शरीर चिकना और सफेद होता है।

सभी पुराने रोगोंमें शरीर पीला पड जाता है।

जिह्वा-परीक्षा।
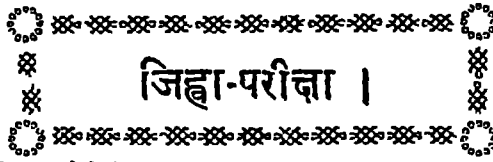
वायुका कोप होनेसे जिह्वा यानी जीभ सुन्न, फटी-सी, मीठी, जड़वत, हरे रङ्गकी होती है और उससे लार गिरती है। वायुके रुक्ष गुणके कारण रूखी और गायकी जीभकी तरह खरदरी होती है।

पित्तका कोप होनेसे जीभ लाल रङ्गकी, कडवी, जली हुई-सी, दाहयुक्त और चारो ओरसे कॉटोसे व्याप्त होती है। लाल और जली हुईका मतलब यह है कि, लाल और काली होती है।

कफका कोप होनेसे जीभ स्थूल, भारी लिहसी, मोटे-मोटे कॉटोसे व्याप्त, खारी और बहुत कफदार होती है, यानी उससे बहुतसा कफ गिरता है।

दो दोषोंके कोपमे दो दोषोंके लक्षणोवाली और तीन दोषोंके कोपमे तीनो दोषोके लक्षणवाली होती है।

रक्ताधिक्य दाहमे जीभ गरम और लाल हो जाती है।

हैजेमें, मूर्च्छा रोगमे और श्वास रुक जानेपर जीभ शीतल होती है।

कण्ठके भीतर दाह होनेसे जीभ काले रङ्गकी हो जाती है।

ज्वर और दाह रोगमे जीभ नीरस तथा नवीन ज्वर और तेज दाहमे सफेद और चटपटी होती है।

आमाजीर्ण और आमवातके पहले दर्जेमे जीभ सफेद होती है।

सन्निपात-ज्वरमें जीभ मोटी, सूखी, रूखी और बुझे हुए अङ्गारकी तरह काली होती है।

यकृत-दोषमे, मल और पित्तके रुकनेपर, जीभ हरियाली-माइल पीली और मलसे लिपटी हुई होती है।

यकृत, प्लीहा आदिकी अन्तिम अवस्थामे और क्षय-रोगके पीछे तथा भीतरी यन्त्रोंकी पीड़ासे, मरनेके समय, जीभमे जख्म हो जाते हैं ।

बहुत ही कमजोरी और जलन होनेपर जीभ बड़ी होती है ।

नीरोग मनुष्यकी जीभ सदा गीली और गुलाबी होती है । किन्तु शराबीकी जीभ फटी हुई-सी होती है ।
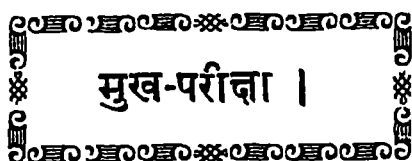
मुख-परीक्षा ।

वायुके कोपसे मुँहका स्वाद विरस होता है, पित्तसे चरपरा और कफसे मीठा खट्टा स्वाद होता है । त्रिदोषमे तीनो लक्षणोंवाला, अजीर्णमे चिकना और मन्दाग्निमे कसैला स्वाद होता है । एक और सज्जन लिखते है, वायु-कोपमे मुखका स्वाद नमकीन, पित्तमे कड़वा और कफमे मीठा होता है ।
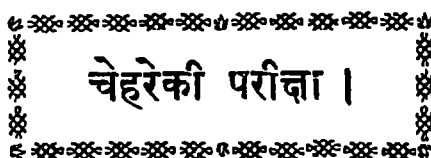
चेहरेकी परीक्षा ।

वात-कोपसे मुँह या चेहरा रूखा, स्तब्ध और टेढा होता है, पित्त-कोपसे लाल, पीला और गरम होता है । कफ-कोपसे चेहरा भारी, चिकना और सूजा हुआ-सा होता है ।
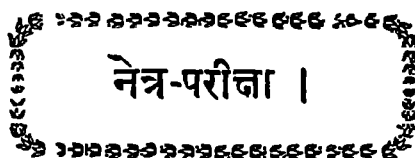
नेत्र-परीक्षा ।

वात-रोगमे नेत्र भयानक, रूखे, धूएँकेसे रंगके, टेढे, चंचल, जड़-से अथवा बँधे-से और भीतरसे काले होते है ।

पित्त-रोगमे नेत्र पीले, नीले, लाल, गरम और दीपक प्रभृति चमकीले पदार्थोंके देखनेमे असमर्थ होते हैं, अर्थात् पित्त-रोगवाला चिरागकी ओर नहीं देख सकता।

कफ-रोगमे नेत्र ज्योतिहीन, सफेद, पानीसे भरे हुए, भारी और मन्दा देखनेवाले होते हैं।

त्रिदोष या सन्निपातमे नेत्र, तन्द्रा और मोहसे व्याकुल, श्याम वर्ण, टेढ़े, रूखे, भयानक और लाल रङ्गके होते हैं।

त्रिदोषकी दशामे रोगीके नेत्र रोगीके वशमें नहीं रहते। क्षण-भरमे रोगी नेत्रोको खोल लेता है, क्षण-भरमे बन्द कर लेता है, कभी हर वक्त बन्द रखता है, कभी हर समय खुले ही रखता है, काली पुतलियाँ लुप्त हो जाती हैं, धूएँके रंगका बडा तारा घूमने लगता है, नेत्रोंका रंग अनेक प्रकारका हो जाता है और वे विकृत हो जाते हैं तथा अनेक प्रकारकी चेष्टा करते हैं—ऐसे नेत्रोंवाला निश्चय ही मर जाता है।

अगर नेत्र प्रसन्न हो, अपनी प्रकृतिमे स्थिर हो, देखनेमें सुन्दर हो, तो रोगीको कोई भय नहीं है। वह शीघ्र ही आराम होगा।

जिस रोगीके नेत्र ठहराये हुए, तन्द्रा और मोहयुक्त तथा गड़े हुए और डरावने हो, वह मृत्युकी गोदमे है।

कामला-रोगमे हल्दीके समान पीले नेत्र होते है। पीलियेमें भी पीले होते हैं। पित्त-ज्वरमें किसी कदर पीले होते हैं। हलीमक रोग (पीलियेका भेद) में नेत्र हरे होते हैं।

राजयक्ष्मा जब असाध्य होता है, नेत्र एकदम सफेद हो जाते है।

हैजेमे आँखे खड्डोमे घुस जाती है और उनका रंग लाल हो जाता है। कुछ धूएँका-सा रग भी झलकता है।

सन्निपातमे नेत्रोंमें सब रंग मिले हुए होते है, पर सुर्खी अधिक होती है।

आम-रोगमे पलक बन्द करनेमे कष्ट होता है । पित्त-रोगमे या पित्ताधिक्य-ज्वरमें दीपकके सामने देखा नहीं जाता ।

अधिक .खून जानेकी दशामें नेत्र भीतर घुस जाते है और धूमिल रंगके तथा सुर्ख होते है ।

मस्तकमे खून जम जानेसे दोनो नेत्र .खूनके समान सुर्ख हो जाते है ।

अफीमका विष चढ़ जाने या सिरमे .खूनके बहुत गरम हो जानेसे आँखोके तारे सिकुड़ जाते है ।

तेज़ बुखारमे रोगी टकटकी लगाकर देखा करता है ।

मिरगी-रोगमे आँखे चढ़ जाती है और पलक काँपते है । संन्यास (एक प्रकारकी बेहोशी) मे नेत्रोके तारे सुकड़ जाते हैं ।

किसीने लिखा है,—पित्त-रोगमे आँखे पीली या लाल या हरे रङ्गकी होती है । इनको दीपक या बिजलीकी रोशनी बुरी लगती है ।

अरिष्ट-लक्षण।

यदि रोगीके दाहिने या बायें, अगले या पिछले, नीचेके या ऊपरके किसी अङ्गमे स्वाभाविक और किसी अङ्गमे विकारका रंग देखनेमे आवे, तो रोगीकी मृत्युके चिह्न समझो।

(२) यदि रोगीके मुख या शरीरके किसी और हिस्सेमे एक जगह स्वाभाविक और दूसरी जगह विकारका रंग दिखाई दे, तो मृत्युके लक्षण समझो।

(३) यदि रोगीके शरीरमे एक जगह प्रसन्नता और दूसरी जगह ग्लानि, एक अङ्गमे रूखापन और दूसरे अङ्गमे चिकनाई दीखे, तो रोगी मरेगा।

(४) यदि रोगीके मुँहपर हठात् लहसन, तिल, झाँई या कोई फुन्सी प्रकट हो जाय, तो मृत्यु होगी।

(५) यदि रोगीके नाखून, नेत्र, मुँह, मूत्र, मल और हाथ-पैरोमे किसी तरहके विकारका रङ्ग पैदा हो जाय अथवा यकायक रंग खराब हो जाय या कोई इन्द्रिय मारी जाय, तो रोगीकी मृत्यु समझो। इसी तरह रोगीके शरीरमे पहले कभी न देखा हो, ऐसा रंग अकस्मात् अथवा विना कारण पैदा हो जाय, तो रोगीका मरण समझो।

(६) यदि रोगीके दोनो होठ पके जामुनकी तरह अत्यन्त नीले हो जायँ, तो रोगीकी मृत्यु समझो।

(७) जिस मरनेवालेके कण्ठसे एक अथवा अनेक तरहके वैकारिक स्वर निकले, वह नही बचे, यानी रोगी जिस तरह सदा बोला करता था, उसके विपरीत ऐसी बोली बोले, जैसी उसके कण्ठसे सुनी न गई हो*।

(८) जिसके शरीरसे दिन-रात अनेक प्रकारके वृक्षों और बनके तरह-तरहके फूलोंकी सुगन्ध आती रहे, उसे "पुष्पित" कहते है। वह एक वर्षके भीतर निश्चय ही मर जाता है।

(९) जिस प्राणीके शरीरसे एक अथवा अनेक प्रकारकी दुर्गन्ध निकले, वह भी "पुष्पित" है। जिसके स्नान करने या न करनेपर शरीरसे कभी शुभ और कभी अशुभ गन्ध बिना कारण आवे, उसे भी "पुष्पित" कहते है, यानी जिसके शरीरसे कभी चन्दनकी या कभी फूलोंकी या मलमूत्र अथवा मुर्देकी-सी गन्ध आवे, उसको मृत्यु-मुखमे समझो+।

(१०) जिस प्राणीकी देहसे वियोनिकी-सी, यानी पशु-पक्षीकीसी सुगन्ध या दुर्गन्ध स्थायी रूपसे आती हो, वह एक वर्ष नही जीता।

(११) किसी मनुष्यके खूब अच्छी तरह स्नान कर लेने और चन्दन प्रभृति लगा लेनेपर भी मक्खियाँ घेर लेती है और किसीके शरीरके पास मक्खी, मच्छर, डॉस प्रभृति आते ही न जाने क्यों एक-दम दूर हो जाते है, औरोंके शरीरपर बैठते है, पर उसके शरीरपर नही बैठते, यदि ऐसी हालत हो, तो समझना चाहिये कि इस मनुष्यके शरीरका रस खराब या मीठा हो गया है। रसके मीठे

* हमने अपनी आँखोंसे देखा है कि एक मनुष्य रातको छतपर सोता-सोता कुत्तेकी तरह भौकने लगा और ३।४ दिनमें मर गया। उसे कुत्ते वगैर ने काटा न था।

+ एक सोलह वर्षकी जवान सुन्दरीके हाथोंमें दिन-रातमें दो एक बार विष्ठाकी-सी गन्ध कोई एक या दो सालसे आने लगी। वह दुर्गन्ध हर समय न रहती थी। खूब साबुनसे हाथ धो लेनेपर भी, वह दुर्गन्ध यकायक प्रकट हो जाती थी। वह स्त्री एक दिन बिना किसी रोगके चटपट मर गई।

होनेसे मक्खी वगैरः जीव जब पीछा नहीं छोड़ते और बदजायके होनेसे नजदीक नहीं आते। ये लक्षण भी मरणके है।

(१२) अगर रोगीके नेत्र बाहर निकल आवे या भीतरको बैठ जायँ, टेढ़े-मेढ़े हो जायँ, एक बडा और एक छोटा हो जाय, एक बन्द रहे और एक खुला रहे, अत्यन्त पानी बहे, निरन्तर खुला रहे या निरन्तर बन्द ही रहे, बारम्बार खुले या बन्द रहे, दिनमे सब चीजे सफेद दीखे या काली दीखे, अथवा नेत्र अंगारके समान काले, नीले, पीले, श्याम, लाल, हरे और सफेद इनमेसे किसी एक रंगसे अत्यन्त युक्त हो, तो रोगीको गतायु समझो।

(१३) रोगीके बाल या रोएँ खींचनेसे उखड़ आवे और रोगीके दर्द न हो, तो उसे गतायु समझो।

(१४) अगर रोगीके पेटपर काली, नीली, पीली, लाल या सफेद नसे दीखने लगे, तो रोगीको गतायु समझो।

(१५) यदि रोगीके नाखूनोमे मांस और ख़ून न रहे और वे पकी हुई जामुनके समान हो जायँ, तो उसे गतायु समझो।

(१६) यदि रोगीकी उँगलियाँ पकडकर खींचनेपर न चटखे, तो रोगीको गतायु समझो।

(१७) जो रोगी आकाशको पृथ्वीकी तरह संघट्ट और पृथ्वीको आकाशकी तरह शून्य देखता है, वह बहुत जल्दी मरता है।

(१८) जो रोगी हवाको मूर्तिमान देखता है और जलती आग जिसे नहीं दीखती, वह गतायु है।

(१९) जो रोगी जलमे जल न होनेपर जलका भ्रम करता है अथवा स्थिर जलको चंचल समझता है, वह गतायु है।

(२०) जो रोगी जाग्रत अवस्थामे प्रेत और राक्षस-पिशाचोको देखता है अथवा अन्य प्रकारकी अद्भुत चीजे देखता है, वह गतायु है।

(२१) जो रोगी स्वाभाविक अग्निको नीली, प्रभा-रहित, काली या सफेद देखता है, वह सात रात जीता है।

(२२) जो रोगी आकाशको बिना प्रकाशके प्रकाशित देखता है, आकाशमे बादल नही है, पर उसे बादल दीखते है, आकाशमे बादलोके होनेपर बादल नही दीखते, आकाशमे बादल नहीं है, पर रोगीको बिजली चमकती दीखती है, ऐसा रोगी नही जीता ।

(२३) जो रोगी निर्मल सूर्य और चन्द्रमाको काले कपडेसे लिपटे हुए बर्तनके समान देखता है, वह नही बचता ।

(२४) जो प्राणी बिना पर्वके सूर्य और चन्द्रमामे ग्रहण देखता है, वह रोगी हो चाहे निरोगी, बहुत नही जीता ।

(२५) जो रातको सूर्य और दिनमे चन्द्रमाको देखता है, तथा अग्निहीन वस्तुओसे धूआँ उठते देखता है तथा रातमे आगको प्रभाहीन देखता है, वह नही बचता ।

(२६) जो प्राणी प्रभाहीन चीजोको प्रभायुक्त और प्रभायुक्तोको प्रभाहीन देखता है, वह नहीं बचता ।

(२७) जो रोगी दीखनेवाली चीजोको नहीं देखता और न दीखनेवाली चीजोको देखता है, वह नहीं बचता ।

(२८) जो रोगी अपनी उँगलियोसे अपने कानोको बन्द करके अनाहत* शब्दको नही सुनता, वह नहीं बचता ।

(२९) जो रोगी सुगन्धको दुर्गन्ध और दुर्गन्धको सुगन्ध समझता है, वह नही बचता ।

(३०) जिस रोगीके मुखमे कोई रोग नहो है, तो भी उसे मीठे खट्टे प्रभृति रसोका स्वाद न मालूम हो अथवा असल रसका ज्ञान न हो, वह गतायु है ।

(३१) जो रोगी नरम चीजोको कडी, गरमको ठण्डी, चिकनीको खरदरी और कड़ीको नरम, शीतलको गरम या खरदरीको चिकनी समझता है, वह नही बचता ।

---

* दोनों कानोंको हाथोंसे बन्द कर लेनेपर जो "साँय साँय" शब्द सुनाई देता है, उसको "अनाहत शब्द" या "ज्वाला शब्द" कहते है । साधारण लोग उसे रावणकी चिताकी आवाज़ कहते हैं। डाक्टर उसे ख़ून बहनेकी आवाज़ कहते हैं ।

(३२) जो विना घोर तप या योग-साधनके इन्द्रियोंसे न जाना जा सके, ऐसे पदार्थ या ऐसी बातको जान ले या देख ले, वह नहीं जीवे।

(३३) अगर ज्वरके रोगीके पूर्व-रूप सभी हो या बहुत जियादा हो, तो समझ लो कि रोगी नहीं बचेगा। इसी तरह और रोगोके होनेके पहले, होनेवाले रोगके सारे या अधिक पूर्व-रूप* हो, तो मृत्यु होगी।

(३४) जो प्राणी स्वप्नमे कुत्ते, गधे या ऊँटपर चढ़कर दक्खन दिशाको जाता है, वह "राजयक्ष्मा" से मरता है।

(३५) जो प्राणी स्वप्नमे मरे हुए लोगोके साथ शराब पीता है और उसे कुत्ते घसीटते है, वह घोर "ज्वर" से मरता है।

(३६) जिस प्राणीको स्वप्नमे लाल कपडे, लाल फूलोकी माला पहने, लाल शरीरवाली स्त्री हँसती-हँसती घसीटे, वह "रक्तपित्त"से मरे।

(३७) जिस प्राणीके जोरसे दर्द चले, पेटमे अफारा हो, शरीर दुर्वल हो और नाखून आदि का रंग और-का-और हो जाय, वह "गुल्म" रोगसे मरे।

(३८) जो प्राणी स्वप्नमे ऐसा देखे, मानो उसकेहृदयमे कॉटोवाली दारुण बेल उगी है, वह "गुल्म रोग" से मर जाय।

(३९) जिस प्राणीकी खाल या चमडी जरा छूनेसे फट जाय अथवा जिसके घाव भरे नहीं, वह कोढ़ी होकर मरेगा।

(४०) जो प्राणी स्वप्नमे नंगा होकर, सारे शरीरमे घी लगाकर, ज्वालाहीन आगमे हवन करे और स्वप्नमें जिसकी छातीमे कमल पैदा हो, वह "कोढ" से मरे।

(४१) जिस प्राणीके शरीरपर स्नान करने और चन्दन लगानेपर भी नीले रंगकी मक्खी बैठे, वह "प्रमेह" से मरेगा।

---

* सब रोगोंके पहले पूर्वरूप होते हैं, पर सारे पूर्वरूप नहीं होते, कुछ होते हैं, कुछ नहीं होते, यदि सभी हों, तो बचना कठिन समझो।

(४२) जो प्राणी स्वप्नमे चाण्डालोके साथ घी तेल आदि चिकने पदार्थ पीवे, वह "प्रमेह" से मरे।

(४३) जिसका ध्यान एक ओर लग जाय, जिसको बिना मिहनतके थकान मालूम हो, जो घबराने लगे, चित्तमे भ्रम और बेचैनी हो, शरीरका बल नाश हो जाय—अगर ये सब लक्षण एक साथ ही हो, तो समझ लो कि वह "उन्माद" रोगसे मरेगा।

(४४) जिसको भोजनके पदार्थ बुरे मालूम हो, ज्ञान न रहे, उदर्द रोग हो, उसकी "उन्माद" रोगसे मृत्यु होगी।

(४५) जो प्राणी सदा नाराज रहे, चेहरेपर क्रोध बना ही रहे, भयभीत रहे, हँसता रहे, बार-बार बेहोश हो, प्यास बहुत लगे, उसकी "उन्माद" से मृत्यु होगी।

(४६) जो प्राणी स्वप्नमे राक्षसोके साथ नाचता-नाचता पानीमे डूब जाय, वह "उन्माद" से मरेगा।

(४७) जिस मनुष्यको अँधेरा न होनेपर भी अधेरा दीखे, कही शब्द भी न होता हो, पर उसे तरह-तरहके गाने या दूसरी आवाजे सुनाई दे, वह "मृगी रोग" से मरेगा।

(४८) जो मनुष्य स्वप्नमे ऐसा देखे, मानो मै नशेसे मतवाला होकर नाच रहा हूँ और भूत मेरा सिर नीचा करके मुझे ले जा रहे है, उसकी "मृगी रोग" से मृत्यु हो।

(४९) जाग्रत अवस्थामें जिसकी ठोड़ी, गरदन और दोनो आँखे रह जायँ, उसकी "वहिरायाम" नामक वात-रोगसे मृत्यु हो।

(५०) जो प्राणी स्वप्नमे तिलोके पदार्थ या पूरी मालपूआ खाता है और जाग उठता है अथवा जागते ही वमन करता है और पूरी मालपूआ ही निकलते है, वह नहीं बचता।

(५१) जिस प्राणीकी छातीसे नीला या पीला-लाल कफ निकले, उसके जीवनमे सन्देह है।

(५२) जिस सान्द्रमेहीके रोएँ खड़े हो, शरीरमे सूजन हो, खॉसी और ज्वर हो तथा मांस क्षीण हो गया हो, उसे वैद्य हाथमे न ले।

(५३) जिस प्राणीके कोठेमे तीनो दोष कुपित होकर चले जायँ, चाहे वह दुर्वल हो चाहे बलवान्, वह नहीं बचेगा।

(५४) अगर किसी दुर्वल मनुष्यके सूजनके बाद ज्वरातिसार हो अथवा ज्वरातिसारके बाद सूजन हो, वह नहीं बचेगा।

(५५) अत्यन्त बलहीन रोगीको हनुग्रह, मन्याग्रह औरप्यास हो, तो उसके प्राण छातीमे समझो।

(५६) जो रोगी मुरझाया-सा दुःखी होकर पडा रहता है, जिसको होश नहीं रहता, जिसका मांस और बल क्षीण हो गया है, साथ ही भोजन भी घट गया है, वह रोगी नहीं बचेगा।

(५७) रोगीको छाया विगडी दीखे या दीखे ही नहीं अथवा रोगीको दूसरेकी छाया न दीखे, तो रोगीको गतायु समझो।

(५८) जो मनुष्य चॉदनी, धूप, दीपककी रोशनी, जल अथवा आइनेमे अपनी छायाको विगडी देखे, यानी और ही तरहकी देखे, वह नहीं बचे।

(५९) जो मनुष्य अपनी छायाको छिन्न-भिन्न, कम-जियादा, पतली या दो हिस्सोंमें बॅटी हुई देखे या छायाको सिर विना देखे या और तरहकी देखे, वह मर जाय।

(६०) जिस रोगीके दोनो नेत्रोमे कामला हो, मुँह भारी हो, दोनो गालोमे अधिक माम हो (कहीं लिखा है, दोनो कनपटियोमे मांस न हो), हाथ-पैर आदिमे जलन हो, शरीर गरम हो, वह रोगी नहीं जीवे।

(६१) जो रोगी पलॅगसे उठनेपर वेहोश हो जाय और वारम्वार आनतान वके, वह सात दिन भी नहीं जीवे।

(६२) जिसकी व्याधि उल्टी और सीधी दोनो तरहसे मिली हुई हो, जिसे खाया हुआ न पचे, वह पन्द्रह दिन भी न जीवे।

(६३) जो रोगी रोगके मारे अत्यन्त दुबला हो और अत्यन्त थोड़ा खाता हो, पर मल-मूत्र अधिक त्यागता हो, वह नहीं जीता ।

(६४) जो रोगी पहलेसे अधिक खाने लगे, पर मलमूत्र थोड़े हो, वह भी नहीं जीवे ।

(६५) जो प्राणी ताकतवर पदार्थोंको खावे, पर उसकी ताकत कम होती जाय और रङ्ग ख़राब होता जाय, वह नहीं जीवे ।

(६६) जिस रोगीके कण्ठसे आवाज निकले, जिसका मन शिथिल हो, जिसे दस्त लगते हो, जिसे श्वास रोग हो, जिसका बल घट गया हो, जिसे प्यास अधिक हो, जिसका मुँह सूखता हो, वह रोगी नहीं जीवे ।

(६७) जिस रोगीको उर्द्ध श्वास चलता हो, कण्ठमे घरघर शब्द होता हो, बल घट गया हो, रङ्ग बिगड गया हो, आहार (क्षीण) कम हो गया हो, वह नहीं बचे ।

(६८) जो रोगी कमजोर हो गया हो, प्यासके मारे मुँह सूख रहा हो, आँखे कपालमे चढ़ गई हो, गर्दनकी मन्या नामक नसे नीची होकर काँपती हो, वह रोगी नहीं बचे ।

(६९) जिसके सिर, जीभ और आँखे—ये उलट गये हो या लटक पड़े हो, दोनो भौहे नीची हो गई हो, जीभमे काँटे पड़ गये हो, वह रोगी नहीं बचे ।

(७०) जिसका लिङ्ग एकदम भीतर घुस गया हो, फोते लटक गये हो, अथवा लिङ्ग लटक आया हो और फोते भीतरको चले गये हो, वह रोगी नहीं बचे ।

(७१) जिसका मांस क्षीण हो गया हो, यानी चाम और हाड़-मात्र शेष रहे हो, जो खानेको न खाता हो, वह एक माससे अधिक नहीं जीवेगा ।

(७२) जो अपनी छायाका सिर नीचेको देखे या टेढ़ा देखे या मस्तक-रहित छाया देखे, वह नहीं बचे ।

(७३) जिसके पलक रह जायँ, हिले नहीं और नजर कम हो जाय, वह नहीं जीवे।

(७४) जिसकी दोनों भौंहोंमें अथवा सिरमें बिना कारण पहले नहीं देखी ऐसी सीमन्त या भौंरी दीखे, वह नहीं बचे। अगर रोगीके सिर और भौंहोंमें भौंरी या चोटीसी गुँथी दीखे, तो वह तीन रात जीवे। अगर निरोगीके भौंरी या चोटीसी गुँथी दीखे, तो वह छै रातसे अधिक नहीं जीवे।

(७५) जिस रोगीके बालोंमें तेल तो डाला न गया हो, किन्तु बाल ऐसे दीखें मानो तेल डाला गया है, उस रोगीको गतायु समझो।

(७६) रोगी रोगसे दुःखी हो, उसकी नाकका बाँसा मोटा हो जाय, बिना सूजनके ही नाक सूजीसी दीखे, उसे वैद्य हाथमें न ले।

(७७) जिसकी जीभ एकदमसे बाहर निकल आवे अथवा बहुत ही भीतर चली जाय, अथवा नाक सूख जाय, वह रोगी नहीं बचे।

(७८) जिसके मुँह, कान और दोनों होठ अत्यन्त काले, सफेद, लाल या नीले हो जायँ, वह रोगी नहीं बचे।

(७९) जिस रोगीके दाँत विकृतिके कारणसे हिलतेसे जान पड़ें, सफेद रङ्गकेसे दीखें, उनसे खुशबू निकलने लगे और कीचसे लिहसेसे हो जायँ वह रोगी नहीं बचे।

(८०) जिसकी जीभ लठरा जाय, उसमें चेतना न रहे, भारी हो जाय, अत्यन्त काँटे पड़ जायँ, काली हो जाय, सूख जाय या सूज जाय, वह रोगी नहीं बचे।

(८१) जो मनुष्य लम्बे-लम्बे साँस लेता हुआ, धीरे-धीरे मन्दे-मन्दे साँस लेने लगे और मूर्च्छित हो जाय, वह रोगी नहीं बचे।

(८२) जब रोगीकी आयु नहीं रहती, तब उसके दोनों हाथ-पैर, मन्या नसें और तालू—ये सब अत्यन्त शीतल अथवा कठोर हो जाते हैं।

(८३) जो रोगी घोटुओंसे घोटुओंको घिसता है, पैरोंको

उठा-उठाकर पटकता है और बारम्बार मुखको फिराता है, वह नही बचता ।

(८४) जो रोगी दाँतोसे नाखूनोको काटता है, नाखूनोसे बालोको तोड़ता है और लकड़ीके टुकड़ेसे ज़मीनपर लिखता है, वह नहीं जीता।

(८५) जो रोगी जाग्रत अवस्थामें दाँतोसे दाँतोको पीसता है, रोता है और ऊँची आवाजके साथ खिलखिलाकर हँसता है, वह नही जीता ।

(८६) जो रोगी बारम्बार हँसे, चीख मारे, पैरोसे पलँगके बिस्तरे बिगाड़े, हाथ बढ़ाकर कान नाकके छेद छुए, वह नही बचे ।

(८७) जिन चीज़ोसे पहले रोगी राज़ी होता था, वही अब उसे बुरी लगे, तो ऐसी हालतमे रोगीकी मृत्यु समझो ।

(८८) जो रोगी अपने सिर, गर्दन, पीठ और शरीरके बोझको न सम्हाल सके, जिसकी ठोडी टेढी हो जाय, मुँहमें ध्रिया कौर बाहर निकल पड़े, वह नही बचे ।

(८९) जिस रोगीको यकायक ज़ोरसे बुखार चढ़ आवे, बल घट जाय, ज़ोरसे प्यास लगे और बेहोश हो जाय, वह नहीं जीवे ।

(९०) जिस प्रलेपक ज्वर-रोगीके अल्प शीत-युक्त कफ-ज्वरमे दिन निकलनेके पहले घबराहट हो और मुखसे पानी टपके, वह रोगी नही बचे ।

(९१) जिस रोगीकी आयु शेष हो जाती है, उसके गलेसे आहार नीचे नही उतरता, जीभ गलेमे चली जाती है और बल नाश हो जाता है।

(९२) जिस रोगीकी दोनो आँखें काली, शिथिल अथवा हरी हो जायँ, वह नही बचे ।

(९३) जो रोगी बेहोश हो, जिसका मुख सूखता हो और जिसे मर्मस्थानोमें चोटसी लगी जान पड़े, वह नही जीवे ।

(९४) जिस रोगीकी नसें हरे रङ्गकी हो गई हो, रोम-छिद्रोके

मुँह बन्द हो गये हों, अन्नपर मन न हो, पित्तकी गरमी बढ़ गई हो, वह नहीं बचे।

(९५) जिस रोगीके मुख, हाथ पैर आदि अङ्ग कान्तियुक्त हों, शरीर सूख गया हो, बल क्षीण हो गया हो, उसे प्रबल "राजयक्ष्मा" हुआ समझो, वह नहीं बचेगा।

(९६) जिस राजयक्ष्मा-रोगीकी दोनों पसलियोंमें दर्द हो, हिचकियाँ आती हों, खून गिरता हो, पेटपर अफारा हो और कन्धोंमें पीड़ा हो, वह नहीं बचेगा।

(९७) अगर वायु-रोगी, मृगी-रोगी, कुष्ठ-रोगी, शोथ-रोगी, उदर-रोगी, गुल्म-रोगी, मधुमेही और राजयक्ष्मावालेका बल और मास क्षीण हो जाय, तो उनकी चिकित्सा करना वृथा है।

(९८) जिस रोगीको जुलाब लेने और अफारा दूर होनेपर फिर प्यास लगे और अच्छी तरह दस्त हो जाने और कोठा शुद्ध हो जानेपर फिर अफारा हो जाय, वह रोगी नहीं बचे।

(९९) जिसकी आवाज बैठ जाय, बल घटता जाय, रङ्ग बिगड़ता जाय और रोग बढ़ते जायँ, वह नहीं बचे।

(१००) जिसको ऊर्ध्वश्वास हो, देहमें गरमी न हो, दोनों जाँघोंके जोड़ोंमें दर्द हो और रोगीको किसी भी चीज़से आराम न मालूम होता हो, वह रोगी नहीं बचे।

(१०१) जो रोगी हतस्वरसे अपनी मौतको आपही नज़दीक बतावे और बिना किसी शब्दके हुए शब्द सुने, वह नहीं बचे।

(१०२) जिस दुर्बल रोगीको रोग यकायक छोड़ दे, उसके जीनेमें सन्देह है।

(१०३) जिसका कफ, मल या वीर्य जलमें बैठ जाय, उसकी आयु शेष समझो।

(१०४) जिसके कफमें अनेक प्रकारके रङ्ग दीखें और वह कफ जलमें डूब जाय, तो समझ लो कि रोगी नहीं बचेगा।

(१०५) पित्त उष्माको साथ लेकर कनपटियोंमे जाकर ठहर जाय, उसको "शंखक रोग" कहते हैं। इस रोगवाला तीन रातके अन्दर मर जाता है।

(१०६) जिसके मुँहसे भाग मिला .खून वारम्बार गिरे तथा कूखमे जोरसे दर्द हो, वह रोगी नही बचे।

(१०७) वल और मांसके घटनेपर रोग ज़ोरसे बढ़े, रोगीको अन्नसे अरुचि हो, तो रोगी तीन दिन भी कठिनसे जीवे।

(१०८) वातष्ठीलाके अच्छी तरह पैदा होकर हृदयमे दारुण भावसे अवस्थिति करनेपर, अगर रोगी प्याससे दुःखित हो जाय, तो वह तत्काल मरे।

(१०९) अगर वायु पैरोंकी दोनो गाँठोंको शिथिल करके और नाकको टेढ़ी करके शरीरमे विचरे, तो रोगी तत्काल मरे।

(११०) जिसकी दोनो भौंहें अपने स्थानसे लटक पड़ें, भीतर जोरसे दाह होता हो, हिचकियाँ चलती हो, वह रोगी तत्काल मरे।

(१११) जिस रोगीका रक्त-मास क्षीण हो गया हो, उसकी वायु ऊपरकी ओर जाकर गर्दनकी दोनो नसोंको दुखाती हुई घूमती फिरे, वह शीघ्र ही मरे।

(११२) अगर वायु गुदासे होकर नाभिमे जाकर जाँघो और पेडूके दोनो जोडोमे दर्द पैदा करे और रोगी कमजोर हो, तो मर जाय।

(११३) अगर वलवान वायु गुदा और हृदयमे एक साथ पीडा करे, तो कमजोर रोगी जल्दी ही मर जावे।

(११४) अगर वलवान वायु गुदा और हृदयमे पीडा करती-करती श्वास-रोग पैदा कर दे, तो वह रोगी तत्काल मर जाय।

(११५) जिसके दोनो वंक्षण वायु-शूलसे पीड़ित हो, साथ साथ दस्त होते हों और प्यासका ज़ोर हो, तो रोगी तत्काल मरे।

(११६) जिसका शरीर वायुकी सूजनसे सूज रहा हो, दस्त होते हों और प्यास लगती हो, वह रोगी तत्काल मरे।

(११६ क) जिसके आमाशयमे कैंचीसे कतरनेकी-सी पीडा होती हो, साथ ही प्यास और गुदामे दर्द होने लगे, वह रोगी तत्काल मर जाय* ।

(११७) वायु जिसके पक्वाशयमे जाकर वेहोशी और कण्ठमें कफका घरघराहट प्रकट कर दे, वह रोगी तत्काल मर जाय ।

(११८) जिसके दाँत कीच और चूनेसे हो जायँ, मुँहपर धूलसी उड़ने लगे, पसीने आने लगे, रोएँ खडे हो जायँ, वह तत्काल मर जाय।

(११९) जिस रोगीकी आँतोमे गड़गड़-गड़गड़ शब्द होता हो, दस्त लगते हो, साथ ही प्यास, श्वास, मस्तक-रोग, मोह और दुर्वलता हो, वह तत्काल मरे ।

(१२०) जो सप्तऋपियोंके समीप अरुन्धती नक्षत्रको नहीं देखता, वह वर्ष दिनके भीतर ही मर जाता है ।

(१२१) जिसमे, विना कारण, भक्ति, शील, स्मृति, त्याग, वुद्धि और वल,—ये छः हठात् पैदा हो जायँ, वह छै मासमे मरे ।

(१२२) जिसके ललाटमे अकस्मात सुन्दर और अपूर्व नस-जाल प्रकट हो जाय, वह छः महीनेसे जियादा नहीं जीवे ।

(१२३) जिसके ललाटमें चन्द्रकलाके समान रेखा दीखने लगे, वह छः मासमे मर जाय ।

(१२४) जिसका शरीर कॉपे, मोह हो, जिसकी चाल और वातें मतवालोंकी-सी हो, वह एक महीनेसे जियादा नहीं जीवे ।

(१२५) जिसके शुक्र, मूत्र और मल जलमे डूब जायँ और जो अपने प्यारोंसे वैर करे, वह मर जाय ।

(१२६) जिसके हाथ पैर और मुँह सूख जायँ अथवा हाथ पैर और मुखपर सूजन चढ़ आवे, वह एक मास भी न जीवे ।"

---

* ऐसी दशा भगन्दर आदि रोगोंके अन्तमें हुआ करती है ।

(१२७) जिसके ललाट अथवा वस्तिमे टेढ़ी और नीली रेखा पैदा हो, वह नही बचे ।

(१२८) जिसकी देहमे मूॅगेके समान फुन्सियॉ प्रकट हो और वे फुन्सियॉ जल्दी न सूखें, तो रोगी मर जाय ।

(१२९) जिसकी गर्दनमे ज़ोरसे दर्द हो, जीभमे सूजन हो, बद हो और गला पक जाय, वह नही बचे ।

(१३०) भ्रम, अति प्रलाप और घोर हड़फूटन होनेसे रोगीको काल-फॉसमे समझो ।

(१३१) अगर रोगी बेहोशीमे अपने बालोको खीचे और उखाड़े, तो नही बचे ।

(१३२) अगर कमजोर और कुछ भी न खानेवाला रोगी, निरोगी और जवानकी तरह खाय और उसमे बल भी आ जाय, तो समझ लो कि, अब वह मरेगा ।

(१३३) अगर रोगी ऑखोके पास उॅगली ले जाय, कुछ ढूॅढ़तासा मालूम हो, विस्मितकी तरह ऊपर की तरफ देखे, पलक न लगे, इस तरह ढूॅढे मानो उसका शरीर, उसकी खाट, उसके कपड़े कही चले गये हैं; और ढूॅढ़ते-ढूॅढते तत्काल बेहोश हो जाय, उसे कालके फन्देमे समझो।

(१३४) जो संज्ञाहीन रोगी बिना सबब हॅसे, जीभसे दोनो होठ चाटे और उसके हाथ पैर और मास शीतल हो, वह नहीं जीवे ।

(१३५) जिस रोगीको अपने प्यारे नातेदार पास रहनेपर भी न दीखे, उनके नाम ले-लेकर पुकारे, सबकी ओर देखे, मगर किसीको पहचाने नहीं, वह नही बचे ।

सूचना—जिन्हें अधिक अरिष्ट-लक्षण, शुभाशुभ स्वप्न और शकुन, एव मृत्यु-कारक योग प्रभृति 'कालज्ञान" सम्बन्धी बातें जाननी हों (जिनका जानना प्रत्येक वैद्यको परमावश्यक है), वह हमारे यहाँसे "कालज्ञान" नामक पुस्तक ।।≈) भेजकर या वी० पी० से मँगालें । मूल्य ।।) है, पर वी० पी० से ।।।) लगते हैं ।

असाध्य रोगोंके लक्षण।

महारोग।

वात रोग, प्रमेह, कोढ़, ववासीर, पथरी, मूढगर्भ, भगन्दर और उदर रोग—ये आठों महारोग हैं और इनका इलाज कठिन है। अगर इन रोगोंके साथ बलक्षय, मासक्षय, श्वास, प्यास, शोष, वमन, ज्वर, बेहोशी, अतिसार और हिचकी—ये उपद्रव भी हों, तव तो "करेला और नीम चढ़ा" वाली कहावत चरितार्थ हो अर्थात् उपद्रवोंके साथ होनेपर ये रोग हरगिज आराम न हों इसलिये सिद्धि चाहनेवाला वैद्य ऐसे रोगियोंको अपने हाथमें न ले।

ज्वर।

(२) जिस ज्वर-रोगीकी जीभ खरदरी और नीली-पीली हो जाय, श्वासकी वायु अत्यन्त गर्म हो, शरीरके रोएं खड़े हों, नेत्र नीले, लाल और पीले हों, कण्ठमें कफ घरघर करे—वह रोगी निश्चय ही मर जाय।

(३) जिस ज्वर-रोगीके मुंहमें जल्दी-जल्दी सॉस आवे, दॉतोंकी पंक्ति काली हो जाय, आँखें ठहर जायें, एवं शरीरमें जोर आ जाय—वह रोगी नहीं जीता।

(४) जिस ज्वर-रोगीके मुंहसे रक्त गिरे, जिसके सिरमें दर्द हो, जिसे भीतरसे गरमी और वाहरसे शीत लगे, वह रोगी मर जाय।

(५) जिस ज्वर* रोगीको मोह हो, किसी तरहका होश न हो, वाहर सर्दी और भीतर गरमी लगे, ऐसा रोगी मर जाय।

---

* ज्वर आठ प्रकारका होता है। इसमें शरीर गरम हो जाता है।

(६) जिस ज्वर-रोगीके रोएँ खड़े हो, हृदयमे दारुण शूल यानी भयानक दर्द हो, मुँहसे निरन्तर ऊँचे साँस लेता हो—वह रोगी मर जायगा ।

(७) जो ज्वर-रोगी हिचकी और साँससे पीड़ित हो, जिसकी आँख भ्रमती हो, जो शरीरसे क्षीण हो गया हो और ऊँचे साँस लेता हो—वह रोगी मर जायगा ।

(८) जिस ज्वर-रोगीके नेत्र धुएँकेसे रंगके हो, जिसे होश न हो, जिसके रक्त और मास क्षीण हो गये हो, एवं जिसे अत्यन्त तन्द्रा हो, वह रोगी मर जायगा ।

(९) जिस ज्वर-रोगीको बहुत ही वमन होती हो, आँखोसे जल गिरता हो, अरुचि हो, भीतर आग लग रही हो और जीभ काली हो गई हो—वह रोगी मर जायगा ।

(१०) जिस रोगीको सवेरे ही बुख़ार चढे, बुखारके साथ ज़बर्दस्त सूखी खाँसी हो, बल और मांस क्षीण हो गये हो, उस रोगीको मरे हुए के समान ही समझो । (चरक)

(११) जिस कफ-ज्वरवाले मनुष्यके मुँहसे सवेरेके समय अत्यन्त पसीना गिरे, उसका जीना कठिन है । (बङ्गसेन)

(१२) जो ज्वर बहुतसे प्रबल कारणोसे उत्पन्न हुआ हो, जिसमे सम्पूर्ण लक्षण मिलते हो, वह ज्वर प्राण-हरण करता है ।

(१३) जो ज्वर पैदा होते ही और चिकित्सा करते-करते ही इन्द्रियोकी शक्तिको नष्ट कर दे अर्थात् अन्धा, बहरा, गूँगा आदि कर दे, उसे असाध्य समझना चाहिये ।

(१४) जो पुरुष ज्वरसे क्षीण हो गया हो, अथवा जिसके शरीरमे सूजन आ गई हो, वह रोगी शायद ही बचे, क्योकि ये असाध्य लक्षण हैं ।

(१५) जो ज्वर प्रकट होते ही विषम हो जाय, जो ज्वर बहुत दिनसे आया करे और दुबले रूखे शरीरवालेको गम्भीर ज्वर हो, तो मृत्यु समझो।

(१६) जो रोगी मूर्च्छित होकर मोहको प्राप्त हो, गिरकर जिससे उठा, न जाय पड़ा ही रहे, एवं बाहर सर्दी और भीतर गरमी लगे—वह रोगी मर जावे।

अतिसार।

(१७) जिसके शुरूमें अतिसार* हो, पीछे श्वास और शोष पैदा हो, वह शीघ्र ही मर जावे।

(१८) जिसको श्वास, शूल और प्यास ये रोग सता रहे हो, जो क्षीण हो, जिसे ज्वरने सताया हो, ऐसे वृद्ध रोगीको यदि अतिसार हो जाय, तो मरण ही समझो।

(१९) जिसको अतिसार, सूजन, अरुचि और शूल—ये रोग हो, उसकी अनेक प्रकारकी चिकित्सा करनेपर भी मृत्यु होगी।

सूजन।

(२०) बालक, अति वृद्ध और विकल मनुष्यके सारे शरीरमें सूजन हो, तो निश्चय ही मरण हो।

(२१) जिसके पेटसे सूजन आरम्भ होकर क्रमसे हाथ पैरोमे फैल जावे, वह सूजन रोगीके सम्बन्धियोको वृथा हैरान करके शेषमे रोगीके प्राण नाश करे। (चरक)

---

* अतिसार छै प्रकारका होता है। इस रोगमें पतले दस्त होते हैं। कभी दस्तके साथ आँव तथा ख़ून दोनों आते हैं।

इस रोगके निदान लक्षण और चिकित्सा पूर्णरूपसे "चिकित्सा-चन्द्रोदय" तीसरे भागमें लिखी गई है। मूल्य सजिल्दका ५) अजिल्दका ४।)

(२२) जिसके दोनो पैरोमे सूजन हो, दोनो पिंडरियाँ ढीली हो जायँ और दोनो जाँघे रह जायँ, वह रोगी नही बचे । (चरक)

(२३) जिसके हाथ, पैर, गुदा और पेट सूज रहे हो एवं जिसका वर्ण, बल और आहार मारा गया हो, वह दवा करने योग्य नही है।

(२४) जो सूजन नीचेके अङ्गसे प्रकट होकर ऊपरको चढ़ती है, वह असाध्य होती है।

(२५) जिस सूजनवाले रोगीको श्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर और अरुचि हो, उसे वैद्य त्याग दे, क्योंकि वह नही बचेगा ।

(२६) दूसरे रोगोके उपद्रवसे प्रकट न हुई हो ऐसी सूजन पहले पैरोसे उत्पन्न होकर, पीछे मुख आदि ऊपरके स्थानोमे उत्पन्न हो, उसे "उल्टी-सूजन" कहते है। अगर पुरुषके ऐसी सूजन पैदा हो, तो वह मर जावे । जो सूजन पहले मुखपर हो, पीछे पैरोपर उतरे, वह सूजन स्त्रियोको घातक है।

जो सूजन पहले गुदामे हो, पीछे वहाँसे सब शरीरमे फैल जाय, वह स्त्री और पुरुष दोनोको नाश करती है।

शूल ।

(२७) जिसके अफारा, शूल, श्वास-रोग, प्यास, मूर्च्छा और सिर-दर्द—ये रोग हो, वह शूल* रोगी मर जावे ।

(२८) जिस शूल-रोगीके मांस, बल और अग्नि ये क्षीण हो जायँ, उसका रोग असाध्य समझो ।

पाण्डु ।

(२९) जिस रोगीके दाँत, नाखून और नेत्र तीनो पीले हो गये हो

* दोनों पसलियों, हृदय, नाभि और पेडू—इन पाँचों स्थानोंमेंसे किसीमें भी शूल हो, उसीको शूल समझो। शूल-रोगमें शूलके घावके समान पीड़ा होती है, इसीसे इसे "शूल" कहते हैं ।

जिसे सब चीजें पीली ही पीली* दीखती हों, वह पाण्डु-रोगी मर जायगा।

(३०) जिसका चमड़ा पीला हो जाय, जिसके नेत्र और मूत्र पीले हो जायँ और जो सब जगह पीलापन ही-पीलापन देखे, वह पाण्डु-रोगी मर जाय।

(३१) जिस पाण्डु-रोगीके सारे शरीरमें सूजन आ गई हो और जिसे सब चीजें पीली दीखती हों, वह पीलियेवाला नहीं बचे।

(३२) जिसकी देहका रंग सफेद हो एवं जो वमन, मूर्च्छा और प्याससे पीड़ित हो, वह रोगी नष्ट हो जाय।

(३३) जिस पाण्डु-रोगीके हाथ, पैर और सिरमें सूजन हो और बीचका भाग पतला हो, वह रोगी आराम न हो।

(३४) जिस रोगीकी देहके बीचमें सूजन हो, हाथ, पाँव और सिर ये सूख जायँ, गुदा और लिंगमें सूजन हो तथा जो मुर्देके समान हो गया हो, ऐसा पाण्डु-रोगी आराम नहीं होता। वैद्य ऐसे रोगीको त्याग दे।

कामला।

(३५) जिस मनुष्यका मल काला और मूत्र पीला हो, शरीरपर सूजन विशेष हो, नेत्र, मुख, वमन, मल और मूत्र ये अत्यन्त लाल हों; मोह हो, वह कामला† रोगी नहीं बचे।

---

* पाण्डु-रोग पाँच प्रकारका होता है। अति मैथुन, खट्टे, नमकीन और चरपरे पदार्थ तथा मिट्टी खाने और दिनमें सोने, एवं बहुत शराब पीनेसे पाण्डु रोग होता है। बोलचालकी भाषामें इसे "पीलिया" कहते हैं। वातादि दोष त्वचा और मांसको दूषित करते हैं, तब यह रोग होता है। हारीत कहते हैं, इसमें वातादिक दोष—दोष और रस दूष्य होता है।

पाण्डु, कामला और हलीमक रोगकी चिकित्सा भी "चिकित्सा-चन्द्रोदय" के तीसरे भागमें लिखी गई है।

† कामला-रोग पाण्डु-रोगकी उपेक्षा करनेसे ही होता है। कोष्ठाश्रय कामलाको "कुम्भ कामला" कहते हैं। कामला रोगके निदान, लक्षण और चिकित्सा तीसरे भागमें लिखी गई है।

(३६) जिस कामला-रोगीको दाह, अरुचि, प्यास, अफारा, तन्द्रा, मोह और मन्दाग्नि हो तथा जिसे कोई बात याद न रहती हो, वह कामला-रोगी तत्काल मरे ।

(३७) जिस कुम्भ-कामला रोगीको वमन, अरुचि, ओकारी आना, अनायास थकान मालूम होना, श्वास, खॉसी और अतिसार—इतने रोग हो, वह अवश्य मर जाय ।

राजयक्ष्मा ।

(३८) जिस रोगीके नेत्र सफेद हों, जिसे अन्नके नामसे वैर हो, जिसे ऊँचे श्वाससें हर समय कष्ट हो एवं जिसे बडी तकलीफसे बारम्बार पेशाब होता हो—ऐसा राजयक्ष्मा* या क्षय-रोगी मर जाय ।

(३६) जो खूब खानेपर भी दिन-पर-दिन दुबला होता जाय, वह क्षय-रोगी असाध्य है । जिस क्षयी-रोगवालेको अतिसार हो, वह भी असाध्य† है ।

(३६ क) जिस यक्ष्मावालेके फोतों और पेटपर सूजन हो, उसका आराम होना असम्भव‡ है, इसलिये ऐसे रोगीको वैद्य हाथमे न ले ।

* अपान-वायु और मलमूत्र आदि वेगोंके रोकने, अति मैथुन, उपवास, ईर्ष्या और सोच-फिक्र करने, बलवानसे वैर करने एव कुसमयमे थोडा-बहुत खानेसे वातादि तीनों दोष कुपित होकर राजयक्ष्मा पैदा करते हैं । इसे शोष, क्षय, राजयक्ष्मा या राजरोग कहते हैं । इसमे कन्धों और पसवाडोंमें दर्द, पैरोंमे जलन और सब शरीरमें ज्वर रहता है । बल-मासके क्षीण होनेपर रोगी त्याज्य है, इलाज करने योग्य नहीं है । यदि बल-मास क्षीण न हुए हों और चाहे सभी लक्षण हों, तो चिकित्सा करनी उचित है । यक्ष्माके निदान लक्षण और चिकित्सा "चिकित्सा-चन्द्रोदय" पॉचवे भागमें विस्तारसे लिखी है । मूल्य अजिल्दका ४) सजिल्दका ४॥)

† क्षयी-रोगवालेका जीना मलके अधीन है । इसलिये क्षयवालेके मलकी रक्षा करनी चाहिये । कहा है:—

मलायत्तं बल पुसा, शुक्रायत्त तु जीवितुम ।
तस्मादयत्नेन संरक्षेत् यक्ष्मिणो मलरेतसी ।

‡ इसलिये आराम होना असम्भव है, कि शोथ या सूजन बिना दस्त कराये आराम नही होती और क्षय-रोगमें दस्त कराना मना है ।

श्वास* ।

(४०) जिस श्वास-रोगीका साँस मुँहसे निकले, वह तो शीतल हो और नाकसे निकले वह गरम हो, नाड़ी जल्दी-जल्दी चले एवं रोगीमें चलनेकी सामर्थ्य न हो—वह श्वास-रोगी शीघ्र ही मर जाय।

(४१) जिस श्वास-रोगीके अङ्ग काँपें, जिससे चला न जाय, जिसका मुँह केशरके समान पीला हो जाय और दम्त जाते समय ऊवा निकले, वह श्वास-रोगी मर जाय।

उदर-रोग ।

(४२) जिस उदर-रोगी‡ की पसलियाँ फटी जाती हों, यानी उनमें बड़े जोरकी पीड़ा होती हो, अन्न खानेकी इच्छा न हो, सूजन और दस्तोंसे दुखी हो, जुलाब या और किसी क्रियासे पेटका जल वगैरः निकाल देने-पर भी, थोड़े ही दिनोंमें, फिर पेट बढ़ जाय—उस रोगीको वैद्य त्याग दे।

(४३) जिस उदर-रोगीकी आँखोंपर सूजन हो, लिङ्ग टेढ़ा हो गया हो, पेटका चमड़ा गीला तथा पतला हो गया हो एवं बल, अग्नि, रुधिर और मास—ये क्षीण हो गये हों, वह रोगी त्याज्य है। ऐसे रोगीको वैद्य हाथमें न ले।

(४४) जिस उदर-रोगीके मल और मूत्र गाँठदार निकलें, जिसके शरीरमें गरमी न रहे, "चरक"में लिखा है, ऐसा उदर-रोगी श्वाससे मरे।

---

* महाश्वास, ऊर्द्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास—पाँच तरहके श्वास-रोग होते हैं। पहले तीन श्वास-रोगोंमें कोई भाग्यवान ही बचता है। चौथा तमकश्वास कष्टसाध्य है। हाँ, पाँचवाँ क्षुद्रश्वास बेशक साध्य है। हिचकी और श्वास जितनी जल्दी मनुष्यके प्राण हरण करते हैं और रोग नहीं करते।

‡ उदर-रोग आठ तरहके होते हैं। उदर-रोग जन्मसे ही प्राय कष्टसाध्य होते हैं। बलवान पुरुषके उदर-रोग हो और पेटमें पानी न आया हो, तब तो किसी तरह बड़ी कठिनाइयोंसे आराम हो जाय। पानी पैदा होनेके बाद सभी उदर-रोग मारक होते हैं। हाँ, बढ़िया शास्त्र-चिकित्सा रोगीको सुखी कर सकती है।

गुल्म-रोग ।

(४५) जिस गुल्म-रोगीको श्वासकी पीड़ा हो, पसली, हृदय और पेड़ू प्रभृतिमेसे किसीमे शूल चलता हो, बहुत जोरकी प्यास हो, अन्नका नाम बुरा लगता हो, रोगी कमजोर हो गया हो और इनके साथ ही गोलेकी गाँठ अकस्मात् लोप हो जाय—वह रोगी मर जायगा।

(४६) जब गुल्म यानी गोला धीरे-धीरे सारे पेटमे फैल जाता है, धातुओमे उसकी जड जा पहुँचती है, नाडियो यानी नसोका जल उसपर लिपट जाता है, बाकी रहा हुआ गोला पीठकी तरह ऊँचा हो जाता है, तब गुल्म-रोगी निर्बल हो जाता है, खानेपर मन नहीं रहता, सूखी उल्टी आती है, खाँसी, वमन, प्यास, ज्वर, तन्द्रा और पीनस—जुकाम—ये लक्षण पैदा हो जाते है-ऐसी अवस्था होनेपर गुल्म-रोगी असाध्य हो जाता है ।

(४७) यदि गुल्म* रोगीको वमन होती हो, दस्त लगते हो, हृदय, नाभि और हाथ-पैरोमे सूजन हो, साथ ही ज्वर और दमका उठाव हो—तो रोगी जीवित नही रह सकता ।

रक्तपित्त ।

(४८) जिसकी जीभ, दोनो होठ और आँखे लाल हो जायँ अथवा

---

* वातादिक दोषोंके अत्यन्त दुष्ट होनेसे पेटमे गाँठ-सी हो जाती है । इस गाँठ, या गोलेके रहनेके पाँच स्थान हैं—दोनों पसवाडे, हृदय, नाभि और वस्ति (पेडू) । यह गोला चलायमान और निश्चल दोनों तरहका होता है और घटता-बढ़ता भी रहता है ।

गुल्म और अन्तविद्रधि दोनों सूरतमे एकसे होते हैं, रहनेके स्थान भी दोनोंके एक ही हैं, तब इनमे फर्क क्या है ? गुल्म निराश्रय है और अन्तर्विद्रधि साश्रय है । गुल्म दोषोंमें रहता है, अन्तर्विद्रधि मांस और खूनमें रहती है, गुल्म मुट्ठीके बराबर होता है, विद्रधि गुल्मसे बडी होती है, विद्रधिका पाक होता है, किन्तु गुल्मका पाक नही होता ।

उनसे खून गिरे,—ऐसा रक्तमूत्रवाला, रक्तातिसारवाला और रक्तपित्त* वाला रोगी मर जाता है।

(४६) जिस रोगीको खूनकी उल्टी हो, आँखे लाल हो, सब ओर लाल-ही-लाल रङ्ग दीखे,—ऐसा रक्तपित्त-रोगी मर जाता है।

(५०) जो रक्तपित्त मासके धोवन, सड़े पानी, कीच, मेद, राध, रुधिर, कलेजेके टुकडे, पकी जामुन, काले रङ्ग, नीले रङ्ग या पपैहाके पंखके समान हो, जिसमे मुर्देकी-सी बदबू आवे और साथ ही श्वास आदि रक्तपित्तके उपद्रव हो, वह रक्तपित्त आराम नहीं हो सकता और वह रक्तपित्त भी असाध्य है, जिसका रङ्ग इन्द्र-धनुषके समान हो।

बवासीर।

(५१) जिस बवासीर** रोगीके मुखपर सूजन हो, भ्रम, अरुचि, विबन्ध और पेटके शूलसे रोगी पीडित हो, वह रोगी मर जाता है।

---

* रक्तपित्त ऊपर और नीचेके दोनों रास्तोंसे होता है। ऊपरवाला साध्य, नीचेवाला याप्य और दोनों ओरसे होनेवाला असाध्य होता है। नाक, कान, आँख और मुँहसे जब ख़ून गिरता है, तब ऊपरका रक्तपित्त कहते हैं। यही साध्य होता है, क्योंकि यह कफमे होता है। जब लिंग, भग और गुदासे ख़ून निकलता है, तब इसे नीचेका या अधोमार्गी कहते हैं। जब रुधिर अत्यन्त कुपित होता है, तब आँख, कान, नेत्र, मुख, गुदा और लिंग तथा शरीरके सभी रोम-छिद्रोंसे ख़ून गिरता है। यह असाध्य समझा जाता है।

** मनुष्यकी गुदामें तीन आँटें या बलियाँ होती हैं। ऊपरके आँटेको प्रवाहिणी, बीचकेको सर्जनी और तीसरेको ग्राहिणी कहते हैं। प्रवाहिणी मल और अपान-वायु आदिको बाहर लाती, सर्जनी बाहर निकाल देती और ग्राहिणी मल आदिके निकल जानेपर गुदाको जैसीकी तैसी बन्द कर देती है। इन्हीं तीन आँटोंमें बवासीरके मस्से होते हैं। उनसे ख़ून गिरता है और नही भी गिरता। जिस बवासीरमे ख़ून गिरता है, उसे खूनी और जिसमें खाली चटखे चलते हैं, उसे बादी बवासीर कहते हैं। वैद्यकके मतसे बवासीर छै तरहकी होती हैं। लोकमें साधारण लोग दो तरहकी ही कहते हैं। गुदाके बाहरके आँटेकी और एक सालकी पुरानी बवासीर आराम हो जाती है, पर बीचके आँटेकी कठिनतासे आराम होती है। जन्मकी, त्रिदोषज और भीतरके तीसरे आँटेकी असाध्य होती है। इसकी चिकित्सा तीसरे भागमें लिखी है। मूल्य ४।) सजिल्दके ५)

(५२) जिस बवासीरवाले रोगीको प्यास बहुत लगती हो, अन्न अच्छा न लगता हो, शूल चलते हो, ख़ून बहुत गिरता हो, दस्त लगते हो और सूजन हो ऐसा रोगी मर जाता है ।

(५३) जिस बवासीरवालेके हाथ, पैर, गुदा, नाभि, मुँह और फोतोंपर सूजन हो और पसवाड़ोंमे दर्द हो, वह असाध्य है ।

(५४) जिस बवासीरवालेके हृदय और पसलियोंमें दर्द हो, इन्द्रियों और मनमे मोह हो, वमन होती हो, अङ्गोंमें पीड़ा हो, बुखार चढ़ता हो, प्यास जोरसे लगती हो, गुदा पक जाय यानी गुदापर पीले-पीले फोड़े हो जायँ, वह रोगी असाध्य है ।

विद्रधि ।

(५५) जिस विद्रधिवालेके पेटपर अफारा हो, पेशाब रुक गया हो, उल्टियाँ होती हो, हिचकियाँ चलती हो, पसली वगैरःमें कहीं शूल चलता हो, प्यास और श्वाससे रोगी दुःखी हो, तो रोगी मर जायगा ।*

भगन्दर ।

(५६) जिस भगन्दर+ रोगीके घावसे अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, कीडे और वीर्य ये गिरते हो, उसको असाध्य समझो ।

* एक प्रकारकी गोल और लम्बी सूजनको "विद्रधि" कहते हैं। यह हड्डी तक पहुँच जाती और पैदा होनेके समय घोर पीडा करती है । यह छै तरहकी होती है । कोई गूलरके समान, कोई मिट्टीके सरावेके समान, कोई ऊपरसे पतली नीचेमें मोटी अनेक तरहकी होती है। कोई पकती है, कोई नहीं पकती है । गुदा, वस्ति, मुख, नाभि, कूख, वंक्षण, वृक्क, प्लीहा, हृदय, क्लोम (प्यासका स्थान) इसके होनेके स्थान हैं। यह बाहर भी होती है और भीतर भी । बडा ख़राब रोग है ।

+ गुदाके पास, दो अंगुलकी ऊँचाईपर, पीछेकी तरफ, एक फुन्सी सी होती है । उसमे बडा दर्द होता है । जब वह फूट जाती है, उसे "भगन्दर" कहते हैं । उपेक्षा करनेसे उसमे चलनीकी तरह अनेक छेद हो जाते हैं । उनमेसे मल, मूत्र और वीर्य्य निकलने लगते हैं । भगन्दर सभी दुस्साध्य होते हैं । त्रिदोषज और क्षतज तो असाध्य ही होते हैं ।

पथरी।

(५७) जिस रोगीके नाभि और फोतोंपर सूजन हो, पेशाब रुक जावे, शूल चले, ऐसा पथरी*, सिकता और शर्करावाला रोगी मर जाय।

मूढ़गर्भ।

(५८) जिस स्त्रीके बच्चा होता-होता गर्भ-मार्गमें रुक जाय, बाहर न निकले, मक्कल शूल हो तथा खाँसी-श्वास आदि उपद्रव भी हो, वह स्त्री मर जाय※।

(५९) जिस गर्भिणीका सिर नीचा हो जाय, देह शीतल हो जाय, लज्जा-शर्मका ध्यान न रहे, जिसकी कोखमे हरी नीली नसे उठ खड़ी हो, वह गर्भिणी आप मरती और गर्भको मारती है अथवा गर्भ उसे मारता और आप मरता है, अर्थात् गर्भगत बालक और गर्भिणी दोनों मर जाते हैं§।

मृगी।

(६०) "सुश्रुत"मे लिखा है, जिसे बारम्बार जल्दी-जल्दी अपस्मार यानी

* पथरी रोग वस्ति या पेडूमें होता है। वीर्य्य आदिकी गाँठसी जम जाती है। मैथुनके समय चलते हुए वीर्य्य और मलमूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे पथरी होती है। फोतोंके पासकी सींवन और पेड़ूके अगले भागमें दर्द होता है। पथरीके कारण पेशाबकी राह रुक जाती है। इसलिये पेशाबकी धार फटी-फटीसी आती है, पेशाबके समय जोर करनेसे भयानक पीड़ा होती है। पेशाबमें शक्करसी जाय, वह "शर्करा" और बालूसी जाय वह "सिकता" कहाती है। पीलिया, उष्णवात और हृदय शूल आदि पथरीके उपद्रव हैं।

※ मूढगर्भकी गति आठ प्रकारकी होती है। वायुके योगसे गर्भ टेढ़ा होकर अनेक तरहसे योनि द्वारमे आकर अड़ जाता है। कोई सिरसे, कोई पेटसे, कोई एक हाथसे, कोई दोनों हाथोंसे योनि-द्वारको रोक देता है। किसीके हाथ पैर खुरकी तरह बाहर निकल आते हैं और शरीर योनिके भीतर अटका रहता है।

§ मूढगर्भके कारणसे तो स्त्रीकी योनिका द्वार बन्द हो जाता है, बालक अटक जाता है; किन्तु जब पेटमें बच्चा माताके मानसिक और आगन्तुक दुःखोंसे मर जाता है, तब उसे "मृतगर्भ" कहते हैं। जब पेटमें बालक मर जाता है, तब गर्भ हिलता-चलता नहीं, बच्चा होनेके दर्द बन्द हो जाते हैं, शरीर हरा और नीला-सा हो जाता है, श्वासमें दुर्गन्ध आती है एवं आँतोंके फूलनेसे पेट सूज जाता है— ऐसे लक्षण होनेसे बालकको मरा समझना चाहिये।

मृगी*का दौरा हो, जो कमजोर हो जाय, जिसकी भौंहे चलायमान हों और जो आँखोको बुरी तरहसे चलावे, वह मृगी-रोगवाला मर जाय। हारीतने पार्श्वभंग, अन्नसे वैर, सूजन और अतिसार ऊपरके लक्षणोंके साथ और जोड़े है।

वात-व्याधि।

(६१) हारीतने कहा है—जिस वात-व्याधिवाले** को शूल हो, चमड़ा सूना हो यानी स्पर्श-ज्ञान न हो, शरीर फटा हो, (या हड्डी टूटी हो) अफारा हर समय बना रहता हो और रोगी दुखी हो, वह मर जायगा। "सुश्रुत"मे सूजन और कम्प अधिक लिखे है।

प्रमेह।

(६२) यदि प्रमेह+ रोगीका प्रमेह उपद्रवो-सहित हो, अत्यन्त बहता

---

* मृगीको अपस्मार इसलिये कहते हैं कि, इस रोगमे स्मृतिका नाश हो जाता है, कुछ ज्ञान नहीं रहता। इसी वजहसे रोगीके लिये जल वगैर से भय रहता है। अधिक चिन्ता, शोक, लोभ, मोह आदिसे वातादि दोष कुपित होकर, मनके बहनेवाली नाडीमें जाकर स्मरण (ज्ञान) का नाश कर, अपस्मार रोग पैदा करते हैं। मृगी-रोगी दाँतोंको चबाता, मुँहसे झाग गिराता, भौंहे हिलाता और आँखोंको टेढ़ी-बाँकी करता है। उसे ऐसा मालूम होता है, मानो काला, पीला, सफेद आदमी मेरे पास दौड़ा आता है। पुरानी और दुर्बलकी मृगी असाध्य होती हैं।

** वात-व्याधि बहुत प्रकारकी होती है। आक्षेपक, दण्डापतानक, धनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, शिराग्रह, हनुग्रह, लकवा, फालिज, मुँह टेढा हो जाना और आधा शरीर रह जाना प्रभृति रोग वात-व्याधिमे शामिल हैं।

+ अन्नका न पचना, अरुचि, ज्वर, खाँसी और पीनस—ये कफ-प्रमेहके और वस्ति यानी पेडूमें दर्द, फोतोंका पककर फटना, ज्वर, प्यास, खट्टी डकार, मूर्च्छा और पतले दस्त—ये पित्त-प्रमेहके और उदावर्त्त, हृदय तथा गलेका रुकना, सब रसोंके खानेकी इच्छा, शूल, निद्रानाश, शरीर सूखना, सूखी खाँसी और श्वास—ये वात-प्रमेहके उपद्रव हैं। प्रमेह बीस प्रकारके होते हैं। ये पेशाबकी बीमारियाँ हैं। इनमें तरह तरहके पेशाब होते हैं। इस रोगवालेके किसीके मतसे सात तरहकी, (चरकके मतसे) किसीके मतसे नौ तरहकी (सुश्रुत और भोजके मतसे) और किसीके मतसे दस तरहकी पिडिका या फुन्सियाँ होती हैं। गुदा, हृदय, सिर, कन्धा, पीठ और मर्मस्थानकी पिड़िकाये असाध्य होती हैं। सब प्रमेहोंमें मधुमेह खराब है। दवा न करनेसे, समय पाकर, सभी प्रमेह "मधुमेह" हो जाते हैं। मधुमेहवालेका पेशाब मधु या शहदके समान होता है। पेशाबमें चींटियाँ लगने लगती है।

नोट—मृगी और वात-व्याधिकी विस्तृत चिकित्सा सातवें भागमें और प्रमेहकी चिकित्सा चौथे भागमे देखिये।

हो, शराविका, कच्छपिका आदि फुन्सियाँ रोगीको अत्यन्त पीड़ित करती हों, तो प्रमेह-रोगी मर जाय।

कोढ़।

(६३) जिस कोढ़ रोगीका शरीर फट गया हो, अङ्गोंसे कोढ़ चूता हो, नेत्र लाल हों, स्वर भङ्ग हो, स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन प्रभृति पंच-कर्मोंसे कुछ लाभ न हो, कुष्ठ अस्थिगत हो गया हो, ऐसा कोढ़ी मर जाता है।

(६४) गुदा, हाथ, पैर, तलवों और होठोंमे यदि किलास कोढ़ हो और वह पुराना भी न हो, तो भी यश चाहनेवाला वैद्य ऐसे कोढ़ीकी चिकित्सा न करे*।

उन्माद।

(६५) जो उन्माद-रोगी सदा मुँह नीचा रक्खे, अथवा सदा ऊपरको मुँह रक्खे, मांस-बल क्षीण हो गये हों, दिन-रात जागता रहे, किसी बातका सन्देह न रहे—ऐसा पागल मर जाता है।

---

* कोढ़ अठारह प्रकारके होते हैं। उनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्र-कुष्ठ होते हैं। बडा ख़राब रोग है। कोढवालीके साथ मैथुन करनेसे, कोढ़ीके शरीरसे शरीर लग जानेसे, कोढ़ीका श्वास लगनेसे, कोढीके साथ एक बासनमें भोजन करनेसे, कोढ़ीके साथ एक पलङ्गपर सोनेसे, कोढ़ीके साथ मिलकर बैठनेसे, उसके पास रहनेसे, कोढीके कपडे पहननेसे, कोढ़ीकी पहनी हुई माला पहननेसे, सूँघा हुआ फूल सूँघनेसे और कोढीके लगाये चन्दनमेंसे चन्दन लगानेसे कोढ हो जाता है। यह रोग उडकर लगता है। कोढ़, ज्वर, क्षय, नेत्र-रोग और चेचक आदि रोग सङ्क्रामक कहलाते हैं, यानी उडकर लगते हैं। इसलिये बुद्धिमानोंको इनसे हर तरह बचना चाहिये। कोढ़ रोग ऐसा है कि, मरनेपर भी पीछा नहीं छोडता। कहा है:—

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्यतद् भवेत्।
नातोऽनिंद्यतरोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्त्तितम्॥

कोढ़ीके मर जानेपर भी दूसरे जन्ममें कोढ़ होता है। कोढ़-चिकित्सा सातवें भागमें देखिये।

(६६) जिस उन्माद* रोगीके नेत्र भयानक हो जायँ, जल्दी-जल्दी चले, मुँहसे झाग निकलें, जिसे नींद बहुत आवे, जो गिर-गिर पड़े और जो काँपे, वह रोगी असाध्य है। जो हाथी, पर्वत, वृक्ष, देव-मन्दिर आदिसे गिरकर उन्मादग्रस्त हो, वह भी असाध्य है। तेरह वर्षके बादका उन्माद रोग भी असाध्य हो जाता है।

विशूचिका ।

(६७) जिस रोगीके दाँत, नाखून और होठ काले पड़ जायँ, संज्ञा जाती रहे, होश-हवास ठिकाने न रहें, वमन करते-करते रोगी घबरा जाय, आँखें खड्डोंमें घुस जायँ, आवाज़ मन्दी हो जाय, हाथ-पैरोंके जोड़ ढीले हो जायँ, वह विशूचिका‡ रोगी नहीं बचे।

हिचकी ।

(६८) जिसकी देह हिचकियोंसे तन जावे, ऊँची दृष्टि हो जावे, मोह हो, शरीर दुर्बल हो जाय, अन्नपर मन न चले, छींक बहुत आवे, ऐसे रोगीको यदि गम्भीरा या महती हिचकी× आती हो, तो उस रोगीका वैद्य इलाज न करें।

---

* उन्माद—यह रोग मनमें सम्बन्ध रखता है, इसलिये इसे उन्माद कहते हैं। इस रोगमें रोगी बिना कारण हँसता है, मुस्कराता है, बिना प्रसंग नाचता, गाता और दीवारोंसे बातें करता है, बिना कारण रोता है, हाथ-पैर चलाता है, डरता है, भागता है, नंगा हो जाता है, पत्थर मारता है, ऐसे-ऐसे अनेक लक्षण होते हैं। इसी को "उन्माद" या "पागलपन" कहते हैं। इसकी चिकित्सा सातवें भागमें देखिये।

‡ विशूचिकाको बोल-चालमें हैजा कहते हैं। अङ्गरेज़ीमें कॉलेरा कहते हैं। इस रोगमें दस्त और क्षय (वमन) होते हैं। पीछे प्यास, शूल, भ्रम, मूर्च्छा (बेहोशी), दाह, जँभाई कम्प और मस्तक-पीड़ा ये लक्षण होते हैं। रोगीका रङ्ग और-का-और हो जाता है पेशाब बन्द हो जाता है। बहुत कम रोगी इस रोगमें बचते हैं। विशूचिका रोगकी विस्तृत चिकित्सा तीसरे भागमें लिखी है।

× हिचकीको वैद्यकमें हिक्का कहते हैं। यह पाँच तरहकी होती है। इस रोगमें मनुष्य बहुत ही जल्दी मरता है। मामूली हिचकी गरम भात और घी खाने और प्राणायाम प्रभृति उपायोंसे सहजमें बन्द हो जाती है, किन्तु गम्भीरा और महती हिचकी प्राणनाशक हैं। इस रोगमें सुस्ती करना ठीक नहीं। इस भयानक रोगका इलाज छठे भागमें देखिये।

(६९) जिसके दोषोका सञ्चय .खूब हो गया हो, जिसका अन्न छूट गया हो, जो कमजोर हो गया हो, जो अनेक रोगोसे दुर्बल हो गया हो, जो बूढ़ा हो या अति मैथुन करनेवाला हो—ऐसे पुरुषको यदि गम्भीरा या महाहिक्का चलें, तो रोगी तत्काल मर जाय।

(७०) यमका हिचकीवाला यदि बकवाद करे, पीड़ा, मोह तथा प्यास हो—तो यमका भी तत्काल प्राण-नाश करती है।

छर्दि।

(७१) क्षीण पुरुषके बारम्बार छर्दि (वमन) हो, साथ ही खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, बेहोशी, हृदय-रोग और आँखोके सामने अँधेरा आना ये उपद्रव हो, छर्दिमे .खून और राध मिले हो, छर्दिका रङ्ग मोरके चँदोवेके समान हो, ऐसी छर्दि* असाध्य होती है।

मदात्यय।

(७२) जिस मदात्यय रोगीका नीचेका होठ ऊपरके होठसे लम्बा हो जाय, शरीरमे बाहर जोरसे जाड़ा लगे, भीतरसे अत्यन्त दाह हो, मुख तेलसे लिपा-सा हो जाय, जीभ, होठ, दाँत काले या नीले हो जायँ, आँखें पीली हो जायँ या .खून-जैसी सुर्ख़ हो जायँ, ऐसे बहुत शराब** पीनेसे बीमार हुए रोगीको वैद्य त्याग दे।

दाह।

(७३) हृदय, सिर या पेडूमे चोट लगनेसे जो दाह‡ रोग होता है,

* छर्दि रोगमे वमन यानी कय होती है। इसका इलाज छठे भागमे देखिये।

** जो गुण विषमें हैं, वही गुण मद्यमें हैं। अगर यह बेक़ायदे अन्धाधुन्ध पिया जाता है, तो भयङ्कर मदात्यय-रोग पैदा करता है, अगर कायदेसे थोडा-थोडा पिया जाता है, तो अमृतका काम करता है। विधि-पूर्वक पीनेसे रूप खिलता है, मनको सन्तोष होता है, उत्साह होता है एव शोक और रज हवा हो जाते हैं।

‡ दाह-रोग सात प्रकारका होता है। इस रोगमें रोगी एकदम जला जाता है। मारे दाहके रोगी बेहोश हो जाता है। गला, तालू और होठ एकदमसे सूखने लगते हैं। मारे गरमीके रोगी जीभको बाहर निकाल देता है। ऐसे-ऐसे लक्षण होते हैं। दाह और मदात्ययका इलाज सातवे भागमें देखिये।

वह असाध्य होता है । जिस रोगीको दाह हो, मगर उसका शरीर छूनेमे शीतल हो, वह रोगी आराम नहीं होता ।

वात-रक्त ।

(७४) घुटनो तक गया हुआ वातरक्त* असाध्य होता है । जिस वातरक्त-रोगीका चमड़ा फट जाय या चिर जाय, उसमेसे राध आदि चुएँ, साथ ही मास-क्षय, निद्रा-नाश, अरुचि, श्वास, मासका सड़ना, मस्तकका जकडना, मूर्च्छा, अत्यन्त पीड़ा, प्यास, ज्वर, मोह, हिचकी, लँगड़ापन, विसर्प, पकाव, नोचनेकी-सी पीडा, भ्रम, अनायास श्रम, उँगली टेढ़ी होना, फोडे, दाह, मर्म स्थानोंमें पीड़ा और अर्बुद (गाँठ) —ये उपद्रव हो, वह वातरक्त-रोगी असाध्य है । वातरक्तके साथ यदि एक ही उपद्रव "मोह" हो, तो भी उसे असाध्य समझना चाहिये ।

उरुस्तम्भ ।

(७५) जिस उरुस्तम्भ** रोगीके दाह, शूल और नोचनेकी-सी पीडा तथा कम्प हो, वह रोगी मर जाय ।

उदावर्त्त ।

(७६) जो उदावर्त-रोगी प्यास और शूलसे पीड़ित हो, क्लेशयुक्त हो, क्षीण हो, मलकी उल्टी करता हो—ऐसे उदावर्त‡ रोगीको वैद्य त्याग दे ।

---

* वातरक्त-रोग एक प्रकारका रक्त-विकार है। इस रोगमें सारे शरीरका ख़ून ख़राब हो जाता है। सूजन, खुजली, फोडे, स्पर्शका बुरा मालूम होना या शरीरका सूना होना या सुई चुभानेकी सी पीडा प्रभृति लक्षण होते हैं । सूखे, मोटे और नाज़ुक लोगोंको यह रोग होता है ।

** उरुस्तम्भ रोगमें पैरोंका सो जाना, सकोच होना, पैर उठाने और रखनेमे तकलीफ, जाँघ और उरुओंमे अधिक पीडा, निरन्तर दाह और वेदना हो, शीतल पदार्थोंका स्पर्श मालूम न हो, यानी शरीरके शीतल चीज़ लगनेसे मालूम न हो, पैर और जाँघ पराई-सी और टूटी सी मालूम हों ।

‡ उदावर्त्त-रोग १३ प्रकारके होते हैं । अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जँभाई, अश्रु-पात, छींक, डकार, वमन, शुक्र, प्यास, श्वास और निद्रा इन १३ वेगोंके रोकनेसे उदावर्त्त रोग होते हैं । पेटमें दर्द, अफारा, पथरी, फोतोंमें दर्द, गुदामें पीड़ा, सूजन और पीलिया प्रभृति लक्षण इन रोगोंमें होते हैं ।

नोट—वातरक्त, उदावर्त्त और उरुस्तम्भकी विस्तृत चिकित्सा सातवें भागमें देखिये ।

श्लीपद या हाथी-पाँव।

(७७) जो श्लीपद कफकारक आहार-विहारसे हुआ हो तथा कफप्रकृतिवाले पुरुषके कफसे हुआ हो तथा स्रावयुक्त हो, तथा जिस दोषसे प्रकट हुआ हो उसके लक्षण उसमे बढ़ गये हों, खुजली बहुत चलती हो और कफयुक्त हो, ऐसा रोगी असाध्य है। ऐसे श्लीपद (हाथी-पाँव) वालेको वैद्य हाथमे न ले।

व्रण।

(७८) जो व्रण* मर्मस्थानमे प्रकट हुए हो और उनमे अत्यन्त पीडा होवे तथा जो व्रण (फोड़े) बाहरसे शीतल हो और उनके भीतर जलन होवे तथा जिन व्रणोमे भीतर जलन हो और बाहरसे शीतल होवे तथा जिन व्रणवाला रोगी बलक्षय, मांसक्षय, श्वास, खाँसी, अरुचि इनसे पीडित होवे तथा जो व्रण मर्मस्थानमें प्रकट हुए हो और उनमेसे राध, लोहू अधिकतासे बहते हो तथा जो व्रण इलाज-पर-इलाज करनेसे भी आराम न हो—ऐसे व्रणोकी चिकित्सा सद्वैद्य भूलकर भी न करे।

उपदंश या आतशक।

(७९) जिस उपदंशमे अनेक प्रकारका स्राव हो और साथ ही पीडा हो, वह त्रिदोषज उपदंश‡ असाध्य है।

---

* व्रण—फोड़ोंको कहते हैं। चिकित्सा सातवें भागमे देखिये।

‡ उपदंश—इसे सर्व साधारण "गरमीका रोग" कहते हैं। इस रोगमें लिङ्गपर छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं। पीछे पककर उनसे राध बहती है, इसके बाद लिंग सूज जाता है और लिंगका मुख बन्द हो जाता है इत्यादि। यह रोग पाँच प्रकारका होता है। हाथकी चोट लगनेसे, नाखून और दाँतोंके लगनेसे, अच्छी तरह न धोनेसे, गरमीवाली स्त्रीसे मैथुन करनेसे, रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करने और खारी जलमें इन्द्री धोनेसे, अथवा गरमीवालेके पेशाबपर पेशाब करनेसे उपदंश या गरमी रोग होता है। इस रोगके इलाजमें देर करना और मौतको न्यौता देना दो बात नहीं हैं। इलाज तीसरे भागमें देखिये।

(८०) जिस उपदंश-रोगीके लिंगका मांस गल गया हो, कीड़े लिंग-को खा गये हो, केवल फोते रह गये हो, उस रोगीसे वैद्य दूर ही रहे।

साध्य रोगोंके लक्षण।

जिस रोगीके नेत्र, कान और मुख सौम्य-श्रेष्ठ हो, जो रस तथा गन्धको जानता हो, उस रोगीका रोग निस्सन्देह साध्य है।

जिसके हाथ-पैर गर्म हो, दाह—जलन—अल्प हो, जीभ कोमल हो, वह रोगी नही मरता।

जिस रोगीके ज्वरमे पसीने न आते हों, साँस नाकसे आता हो, कण्ठमे कफ घरघर न करता हो, वह रोगी अवश्य जीता है।

जिस रोगीको सुखसे नींद आती हो, शरीर कान्तियुक्त हो, इन्द्रियाँ प्रसन्न हो, वह रोगी नही मरता।
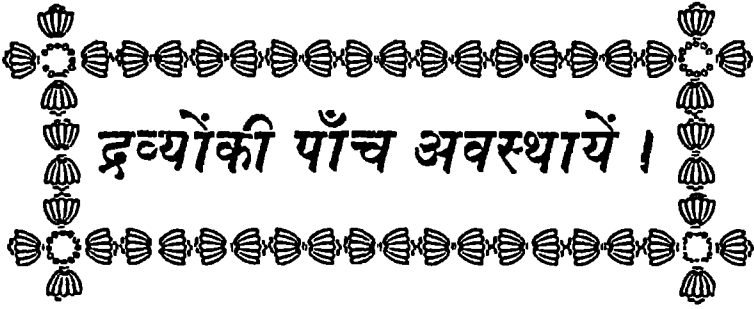
द्रव्योंकी पाँच अवस्थायें।

प्रत्येक पदार्थमे रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति—ये पाँच बाते होती है। ये पाँचो अपना-अपना काम करते है। पदार्थोंमे छै प्रकारके रस, बीस प्रकारके गुण, दो तरहके वीर्य, तीन तरहके विपाक और अचिन्त्य प्रभाव होता है।

रस।

पदार्थोंमे मधुर, अम्ल, खारी, कड़वा, चरपरा और कसैला—ये छै रस रहते है। वाग्भट्टने लिखा है, इन छहोमे पहला-पहला रस पीछे-पीछेके रससे अधिक बलप्रद है।

मधुर, अम्ल (खट्टा) और खारी—ये तीन रस वातनाशक है और कड़वा, चरपरा और कसैला—ये तीन रस वातकारक हैं।

कड़वा, कसैला और मीठा—ये तीन रस पित्तनाशक है और खट्टा, खारी और चरपरा—ये तीन रस पित्तकारक है।

मीठा, खट्टा, खारी—ये तीन रस चिकने और भारी है। चरपरा, कड़वा और कसैला,—ये तीन रूखे और हलके है। मीठा, कडवा और कसेला, ये तीन शीतल है। चरपरा, खट्टा और नमकीन ये तीन गरम है।

जो रस वातको हरनेवाला है, यदि उस रसवाले पदार्थमे रूखापन, शीतलता और हलकापन हो, तो वह वायुको नष्ट नहीं कर सकता।

खारा और कसैला रस वायुको कुपित करता है, मीठा और कड़वा कफको कुपित करता है, चरपरा और खट्टा रस पित्तको कुपित करता है।

चरपरा और खट्टा रस वातको शान्त करता है, मीठा और कड़वा पित्तको शान्त करता है, चरपरा और कसैला कफको शान्त करता है।

चरपरा, कड़वा और कसैला ये रस वायुको कुपित करते है, इसलिये वायुमे इनका देना ठीक नही। चरपरा, खट्टा और नमकीन ये रस पित्तको कुपित करते है, इसलिये इनका पित्तमे देना ठीक नही। मीठा, खट्टा और नमकीन ये रस कफको कुपित करते है, इसलिये कफके रोगमे इनका देना ठीक नहीं।

जो रस पित्तको शमन करनेवाला है, यदि उस रसवाले पदार्थमे तीक्ष्णता, उष्णता और हलकापन हो, तो वह पित्तको शान्त नही कर सकता।

जो रस कफको शान्त करनेवाला है, यदि उस रसवाले पदार्थमे चिकनापन, भारीपन और शीतलता हो, तो वह कफको नष्ट नही कर सकता।

सम्पूर्ण मधुर रसवाले पदार्थ कफकारक होते है, किन्तु जौ, मूँग, शहद, मिश्री और जङ्गली जीवोंका मास—ये कफकारक नही होते है।

सभी अम्ल रसवाले—खट्टे पदार्थ पित्तको उत्पन्न करते हैं, किन्तु आमला और अनार खट्टे होनेपर भी पित्तको उत्पन्न नही करते।

सभी तरहके नमक आँखोके लिये नुकसानमन्द होते है, किन्तु सेंधानोन नहीं होता।

सभी चरपरे और कड़वे पदार्थ वातको कुपित करनेवाले और वीर्यको नुकसान पहुँचानेवाले है, किन्तु सोठ, पीपल, लहसुन, परवल और गिलोय चरपरे और कड़वे होनेपर भी, वीर्यकी हानि नहीं करते और वातको कुपित नहीं करते। "चरक"मे कहा है, सोठ

और पीपल वीर्यको बढ़ानेवाले है, किन्तु अन्य चरपरे पदार्थ वीर्यके लिये हानिकारक है।

सभी कसैले रसवाले पदार्थ प्रायः शरीरको स्तम्भन करनेवाले होते है, किन्तु 'हरड़' कसैली होनेपर भी ऐसी नहीं है।

आगे हम छहो रसोके गुण लिखते है। पाठक इन गुणोको सामान्य गुण समझे, क्योकि रसोके आपसमे मिलनेसे और ही तरहके गुण प्रकट होते है। जैसे शहद और घी मिलकर (बराबर-बराबर) विष हो जाते है। सॉपके काटनेपर विषका प्रयोग अमृतका काम करता है, यानी अमृत हो जाता है।

मधुर-रस।

मधुर-रस शीतल है। यह रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, ओज और वीर्यको बढ़ानेवाला, स्त्रियोके स्तनोंमे दूधकी वृद्धि करनेवाला, ऑखो और बालोके लिये हितकारी, रूप और बलको देनेवाला, टूटेको जोडनेवाला, रुधिर और रसको प्रसन्न करनेवाला, बालक और बूढ़े तथा घावोसे दुर्बलको हितकारी, भौरे और चींटियोको प्यारा लगनेवाला, प्यास, मूर्च्छा और दाहको शान्त करनेवाला, पॉचो इन्द्रियो और मनको प्रसन्न करनेवाला, कृमि (चुरने कीड़े) और कफ करनेवाला है। इतने गुण "सुश्रुत"मे लिखे हैं। "भावप्रकाश" मे यह अधिक लिखा है—मधुर-रस वात और पित्तको नष्ट करनेवाला, शरीरमे स्थूलता (मोटापन) करनेवाला, पुष्टि करनेवाला, कण्ठको शुद्र करनेवाला, भारी, विषनाशक, चिकना और आयुके लिये हितकारी है।

मधुर-रसका अति सेवन।

"सुश्रुत" में लिखा है, यदि मीठा रस अकेला ही बहुत जियादा सेवन किया जाय, तो खॉसी, श्वास, अलसक, वमन, मुखका मीठा रहना, आवाज बैठ जाना, कृमिरोग, गलगण्ड, अर्बुद (रसौली) और

श्लीपद (फीलपॉव) रोग पैदा करता है। पेड़ू (वस्ति) और गुदा मैले और भारी रहते है, एवं आँखोसे जल गिरता है। "भावप्रकाश"मे लिखा है—ज्वर, श्वास, गलगण्ड, अर्बुद, कृमि, स्थूलता, अग्निकी मन्दता, प्रमेह, मेद और कफके रोग पैदा करता है।

खट्टा रस।

खट्टा रस गर्म है। यह रस पाचक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पित्त कफ और रुधिरको बढ़ानेवाला, हलका, मोटेको पतला करनेवाला, छूनेमें शीतल, क्लेदन, वातनाशक, चिकना, तीक्ष्ण और दस्तावर है। वीर्य विबन्ध, आनाह और आँखोकी रोशनीको नाश करता तथा रोमाच करता है। दाँतोको हर्ष करता तथा नेत्र और भौहोका संकोच करनेवाला है।

खट्टे रसका अति सेवन।

यदि यही खट्टा रस अकेला ही वहुत अधिक सेवन किया जाय, तो भ्रम, प्यास, दाह, तिमिर (अन्धकार), ज्वर, खुजली, पीलिया, विसर्प, सूजन, विस्फोटक और कोढ़ करता है। "सुश्रुत"मे लिखा है, दाँतोमे हर्ष यानी दाँतोका आम जाना, नेत्रोका मिचना, रोमोमे पीड़ा या छोटी-छोटी फुन्सियाँ, शरीरका ढीलापन, गर्म होनेसे कण्ठ, छाती और हृदयमें दाह—ये विकार करता है।

खारी रस।

यह रस भी गर्म है। यह रस संशोधन करनेवाला, रुचिकारक, पाचक, कफ और पित्तको बढ़ानेवाला, परुषता और वातको नाश-करनेवाला, शरीरमे शिथिलता और मृदुता करनेवाला है। आँख, नाक और मुँहमे पानी लानेवाला, गाल तथा गलेमें जलन करनेवाला है। "सुश्रुत"में लिखा है, जोड़ोको ढीला करनेवाला, मार्गोंको शोधने-वाला और शरीरके सब भागोको मुलायम करनेवाला है इत्यादि।

खारी रसका अति सेवन ।

यही रस अकेला जियादा सेवन करनेसे नेत्रपाक, रक्तपित्त, कोढ़ और क्षतादि (घाव प्रभृति) रोग करनेवाला, शरीरमे सलवटें डालनेवाला, बालोको सफेद करने और उड़ानेवाला, कोढ़, विसर्प और तृषा (प्यास) रोग करनेवाला है। "सुश्रुत"मे लिखा है—खाज, कोढ़, चकत्ते, सूजन, कुरूपता, पुरुषत्वका नाश और इन्द्रियोमे उत्ताप करनेवाला, मुँह और आँखोंका पकानेवाला तथा रक्तपित्त और वातरक्त प्रभृति रोग करनेवाला है।

चरपरा रस ।

यह रस भी गर्म है। यह रस तीक्ष्ण, विशद, वात-पित्तको करनेवाला, कफको हरनेवाला, हल्का, अग्निके अधिक भागवाला, कृमि (कीड़े), खुजली और विषको नाश करनेवाला, रूखा, स्तनोका दूध नष्ट करनेवाला, मेद यानी चरबीकी मुटाईको नाश करनेवाला, आँखोमे आँसू लानेवाला, नाक, मुँह और जीभमे उद्वेग करनेवाला, रुचिकारक, अग्निको दीप्त करनेवाला, नाकको सुखानेवाला, स्रोतोको प्रकट करनेवाला, रूखा, बुद्धि बढ़ानेवाला और मल-रोधक यानी दस्त रोकनेवाला है।

चरपरे रसका अति सेवन ।

यदि चरपरा रस अकेला ही अधिक सेवन किया जाय, तो भ्रम और दाह करता, मुख, तालू और होठोको सुखाता, कण्ठादिमे दर्द करता, मूर्च्छा और प्यासको पैदा करता और बल तथा कान्तिका नाश करता है। "सुश्रुत"में लिखा है—भ्रम और मद करता, गले, तालू और होठोमे खुश्की करता, देहमे सन्ताप करता, बलका नाश करता, कँपकँपी, पीड़ा, फूटनीसी पैदा करता और हाथ, पाँव, पसली और पीठ वगैरःमे वायुशूल यानी वादीका दर्द करता है।

कड़वा रस ।

यह रस शीतल है। यह प्यास, मूर्च्छा, ज्वर, पित्त और कफको नाश करनेवाला और कृमि, कोढ़, विष, दाह, जी मिचलना एवं ख़ूनके रोगोको आराम करनेवाला है। आप स्वादमे बुरा है, अरुचिकारक है, लेकिन और चीजोंमे रुचि करता है, कण्ठ तथा दूधको शुद्ध करता है, वातकारक, अग्निवर्द्धक, रूखा, हलका और नाकको सुखानेवाला है। "सुश्रुत"मे इतना और लिखा है—यह रस दूधको शोधनेवाला, विष्टा, मूत्र, गीलापन, चरबीकी चिकनाई और पीवको सोखनेवाला है।

कड़वे रसका अति सेवन ।

इस रसके अकेले ही अत्याधिक सेवन करनेसे सिरमें दर्द, गर्दनमे स्तम्भता (गर्दन न हिले न घूमे), थकान, पीडा, कम्प, मूर्च्छा और तृषा—ये रोग होते है तथा बल और वीर्यका नाश होता है। "सुश्रुत"मे लिखा है—गर्दनका ठहर जाना और गिर-गिर पडना, अर्दितवायु, सिरका दर्द, पीडा, फूटनी, छेदनेकीसी पीड़ा और मुखका स्वाद खराब—ये रोग होते है।

कसैला रस ।

यह रस शीतल है। यह रस घावको भरनेवाला, शरीरको स्तम्भन करनेवाला, व्रणको शोधनेवाला, व्रण आदि पर उठे मांसको छीलनेवाला, पीड़ा करनेवाला, चन्द्रमासे उत्पन्न हुआ, व्रण तथा मज्जा आदिको सुखानेवाला, वायुको कुपित करनेवाला, कफ, रुधिर और पित्तको हरनेवाला, रूखा, हलका, चमडेको शुद्ध और ठीक करनेवाला, आमको रोकनेवाला, फैलनेवाला, जीभको जड़ करनेवाला, कण्ठ और छेदोको रोकनेवाला है।

कसैले रसका अति सेवन।

अकेले इस रसका अति अधिक सेवन ग्राही, अफारा, हृदयकी पीड़ा और आक्षेपक—अति कम्प आदि रोग उत्पन्न करनेवाला है। "सुश्रुत" में लिखा है—हृदयमे पीड़ा, मुँह सूखना, उदर-रोग, अफारा, बातोका साफ न बोलना, गर्दनकी नसका रह जाना, अंग फड़कना, चुनचुनाहट, अङ्ग सुकड़ना और अति कम्प आदि रोग होते है।

मधुर पदार्थ।

दूध, घी, चरबी, चाँवल, जौ, गेहूँ, उड़द, सिघाडे, कसेरू, खीरा, अरिया, फूट, ककड़ी, घिया, तरबूज, चिरौजी, महुआ, दाख, किशमिश, छुहारा, खिरनी, ताड़फल, खोपरा, ईख-रस, गुड, शक्कर, चीनी, खिरेंटी, कंघी, कौचके बीज, बिदारीकन्द, दूध, रबड़ी, मलाई प्रभृति तथा अरण्ड काकड़ी, कोयला, पेठा और शहद इत्यादि मीठे पदार्थ है।

खट्टे पदार्थ।

अनार, आँवले, नीबू, कैथ, करौंदे, छोटे-बड़े बेर, इमली, फालसे, बडहल, अम्लबेत, जम्भीरी नीबू, दही, छाछ, मद्य, शूक्त, सौवीर और तुषोदक (एक तरहकी काँजी) इत्यादि खट्टे पदार्थ है।

खारी पदार्थ।

सैधानोन, कालानोन, बिड़नोन (मटिया नोन), मनियारी नोन, साँभर नमक, समन्दर नोन, जवाखार, रेह, सज्जी, सुहागा और शोरा प्रभृति खारी पदार्थ है।

चरपरे पदार्थ।

सहँजना, मूली, लहसन, कपूर, कूट, देवदारु, बावची, खुरासानी अजवायन, देशी अजवायन, गूगल, नागरमोथा और लालमिर्च प्रभृति चरपरे पदार्थ है।

कड़वे पदार्थ ।

दोनो हल्दी, इन्द्रजौ, दोनो कटेली, निशोध, ककोड़े, करेले, बैगन, कनेरके फूल, टेटी, शंखाहूली, चिरचिरा, कुटकी, अरणी और मालकाँगनी इत्यादि कड़वे पदार्थ है ।

कसैले पदार्थ ।

त्रिफला, जामुन, मौलश्री, पाषाणभेद, जीवन्तीशाक, पालक और चौलाई प्रभृति कसैले पदार्थ है ।
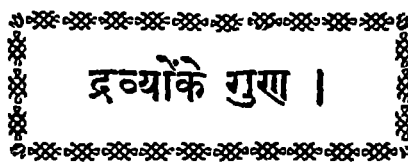
द्रव्योंके गुण ।

हलके गुणवाले पदार्थ अत्यन्त पथ्य, कफनाशक और शीघ्र पचनेवाले होते है । भारी पदार्थ वातनाशक, पुष्टिकारक, कफकारक और देरसे पचनेवाले होते है, चिकने पदार्थ वातनाशक, कफकारक, वीर्य और बलवर्द्धक होते है । रूखे पदार्थ अत्यन्त वायुवर्द्धक और कफनाशक होते है । तीक्ष्ण पदार्थ अधिक पित्तकारक, लेखन तथा कफवातनाशक होते है । इनके सिवा श्लक्ष्ण, स्थिर, सर, पिच्छिल प्रभृति और पन्द्रह गुण होते है । उनके लिये पहले लिखी हुई २७१ से २६० नम्बर तकको परिभाषायें १०८ और १०६ पृष्ठोमे देखिये ।
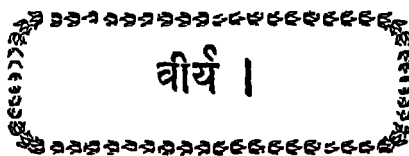
वीर्य ।

सारा ही संसार अग्नि और चन्द्रमासे सम्बन्ध रखनेवाला नजर आता है, इसलिये किसी चीजमे गरमी और किसीमे शीतलता होती है । इसलिये पदार्थोंमें उष्ण (गर्म) और शीत (ठण्डा) दो तरहका वीर्य माना है । गर्म वीर्यसे वात और कफका नाश होता है, किन्तु पित्त बढ़ता है । ठण्डे वीर्यसे पित्त नाश होता है, किन्तु वात

और कफकी वृद्धि होती है । उष्ण वीर्यसे भ्रम, तृषा, ग्लानि, स्वेद और दाह होता है, किन्तु वायु और कफकी शान्ति होती है । इसी तरह शीत वीर्यसे आनन्द और जीवन होता है तथा मलादिककी रुकावट और रक्तपित्त साफ होता है ।

विपाक ।

जठराग्निके संयोगसे रसका जो मीठा, खट्टा आदि परिणाम होता है, उसे "विपाक" कहते हैं। मीठे और खारी रसका बहुधा मीठा विपाक होता है । खट्टे रसका प्रायः खट्टा विपाक होता है । कड़वे, कसैले और चरपरे रसका प्रायः तीक्ष्ण विपाक होता है । परन्तु सब जगह ऐसा नहीं होता, कहीं-कहीं इन नियमोंके विपरीत भी होता है । जैसे चाँवल मीठे होते हैं, पर पचनेपर उनका पाक खट्टा होता है । हरड़ कसैली होती है, पर उसका पाक मीठा होता है ।

मधुर-पाक कफको पैदा करनेवाला और वात-पित्तको हरनेवाला है । खट्टा पाक पित्तको पैदा करता और वात-कफके रोगोंको नाश करता है । तीक्ष्ण पाक वातको पैदा करता और पित्त तथा कफको नाश करता है । मतलब यह है कि, रससे विपाक अधिक बलवान होता है ।
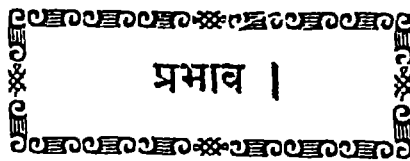
प्रभाव ।

रस, वीर्य और विपाकमें समानता होनेपर भी कोई पदार्थ किसी पदार्थसे अधिक काम करता है । वह उसके "प्रभाव" का कारण है । दन्ती और चीता रस आदिमें समान है, पर दन्ती दस्त खूब लाती है,

किन्तु चीता यह काम नही कर सकता । दाख और महुआ—रस, वीर्य और विपाकमें समान है, पर दाखमे दस्त लानेकी शक्ति अधिक है । घी और दूध रस आदिमे समान है, पर घीमे अग्निको दीपन करनेकी शक्ति अधिक है । आँवला और बडहल रस-वीर्य आदिमें समान है, परन्तु आँवला तो तीनो दोषो (वात, पित्त और कफ) का नाश करता है, किन्तु बड़हलसे यह काम नही हो सकता । कही-कही एक द्रव्य भी अपने प्रभावसे काम करता है । जैसे, सहदेईकी जड़ सिरमे बाँधनेसे शीत-ज्वर नष्ट हो जाता है । इसी तरह अनेक प्रकारकी औषधियोके मिलानेसे जो फल होता है, उसमे औषधियोके स्वभावको कारण रूप समझना चाहिये । ऐसे मौकेपर रस वीर्य आदिका विचार न करना चाहिये ।

जिन औषधियोका फल प्रत्यक्ष है, जो स्वभावसे प्रसिद्ध है, उनके सम्बन्धमे रस आदिके विचारनेकी ज़रूरत नही । हॉ, परस्पर विरुद्ध गुणवाली औषधियोका मेल होनेसे रस आदिकी कमी-बेशी हो जाती है, क्योकि रसको "विपाक" जीत लेता है, रस और विपाकका "वीर्य" जीत लेता है, रस, वीर्य और विपाक इन तीनोको "प्रभाव" जीत लेता है ।

हितकारी और अहितकारी पदार्थ ।

स्वभावसे हितकारी पदार्थ ।

अनाज—चॉवलोमे लाल चॉवल, षष्टिकोमे साँठी चॉवल, भूसीवाले अनाजोमे जौ और गेहूँ, फलीवाले अनाजोमे मूँग, मसूर और अरहर स्वभावसे हितकारी होते हैं।

रस—रसोंमे मधुर रस हितकारी होता है।

नमक—नमकोमे सेंधानमक हितकारी होता है।

फल—फलोंमे अनार, आँवला, दाख, अंगूर, खजूर, छुहारा, फालसा, खिन्नी और विजौरा नीबू ये हितकारी होते है।

शाक—पत्तोंके सागोमे वथुआ, जीवन्ती, पोई, फल-शाकोमे परवल, और कन्दोमे जमीकन्द हितकारी होता है।

मांस—जगली जीवोंमे काले, लाल तथा चित्तीवाले हिरनका मांस, पक्षियोमे तीतर और लवेका मांस, मछलियोमे रोहू मछलीका मांस हितकारी होता है।

मिश्रित—जलोमें साफ जल, दूधोमे गायका दूध, घृतोमें गो-घृत, तेलोमे तिलका तेल, ईखके बने पदार्थोंमे मिश्री उत्तम और हितकारी है।

विहार—ब्रह्मचर्य, निर्वात् स्थान (जहाँ बाहर की हवा न आती हो, छाया हो) में सोना, निवाये जलसे स्नान करना, रातके समय नीद-भर सोना, कुछ मिहनतका काम और कसरत करना—"सुश्रुत" मे ये अत्यन्त हितकर लिखे हैं।

"सुश्रुत"से धन्वन्तरि महोदय कहते हैं—"बहुतसे आचार्य्योंका कहना है कि, जो पदार्थ वातको शान्त करता है, वह पित्तको कुपित करता है और जो पित्तको शान्त करता है, वह वातको कुपित करता है।" इससे साबित होता है कि, कोई भी पदार्थ सर्वतोभावसे सभीको हितकर और अहितकर नहीं हो सकता, परन्तु हमारा खयाल तो और ही है। हमारी रायमे सारे पदार्थ अपने स्वभाव यानी प्रकृतिसे अथवा संयोगसे हितकारी और अहितकारी होते है। जल, दूध, घी, भात, मूँग आदि प्रायः सभीको हितकारी होते हैं*। हाँ, आग, क्षार, विष प्रभृति सदा अहितकारी होते है॥। कितने ही हितकारी पदार्थ संयोगसे अहितकर या विष-तुल्य हो जाते है, कितने ही मौकोपर, नुक़सान करनेवाले पदार्थ फायदा कर जाते है। रोग, सात्म्य, देश, काल, देह और जठराग्नि, इनका विचार करके वैद्य रोगीको विरुद्ध पदार्थ भी दे सकता है। अग्निपर तपाया शहद विष है, किन्तु "अनन्त-वात" नामक शिरोरोगमें विचार-पूर्व्वक तपाये हुए शहदसे रोगमे लाभ होता है।

अहितकारी पदार्थ।

(संयोग-विरुद्ध)

दूधके साथ मछली और अनूप देश (बंगाल जैसा देश) का मांस न खाना चाहिये। कबूतरका मांस तेलमे भूनकर न खाना चाहिये।

---

* ये पदार्थ निरोगीके लिये हितकर हैं, किन्तु रोगीको इनसे नुकसान पहुँच सकता है। जैसे, कितने ही बादीके रोगोंमें "भात" और कफके रोगोंमें "दूध" नुक़सानमन्द है।

॥ आगसे दागना, क्षारका प्रयोग करना, विषका इस्तेमाल करना—निरोगियोंके लिये अहितकारी यानी हानिकारक हैं, पर रोगियोंको इनसे लाभ होता है। जैसे, साँपके काटेको दागनेसे रोगी बच जाता है, क्षारोंसे मस्से गिराये जाते हैं, साँपके काटेको दूसरे ज़हरी जानवरोंसे कटाते और विष खिलाते हैं। "विषकी दवा विष है", इस कहावतके अनुसार लाभ होता है।

मछलीको खाँड़, मिश्री, चीनी, गुड़ और शहदके साथ न खाना चाहिए।

मांस और दूधके साथ सत्तू न खाना चाहिए।

गरम पदार्थोंके साथ दही न खाना चाहिए।

शहदको गरम पदार्थों और वर्षाके जलके साथ न खाना चाहिये।

खीरके साथ खिचड़ी न खानी चाहिए।

केलेकी फलीको छाछ, दही या बेलफलके साथ न खाना चाहिए।

काँसीके बर्तनमें रक्खा हुआ घी यदि दस दिनका हो जाय, तो न खाना चाहिए।

घी और शहद बराबर मिलाकर न खाने चाहिएँ।

काढ़ेको दुबारा गर्म करके न पीना चाहिए।

बहुतसे मास मिलनेसे परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं। उसी तरह शहद, घी, चरबी, तेल, पानी और दूध भी मिलनेसे परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं।

"सुश्रुत"में लिखा है—बेलका फल, तोरई, टेंटी, नीबू प्रभृति खट्टे फल, अमावट, सब प्रकारके नमक, कुलथी, दही, तिलकुटा, विरोही मछली, पिट्ठी, सूखे साग, बकरी और भेड़का मांस, मदिरा, चिलचिम* मछली, गोहमास और शूकरमांस—इन सबको दूधके साथ न खाना चाहिये।

"सुश्रुत"में लिखा है—विरुढ धान्य, वसा—चरबी, शहद, दूध, गुड़, उड़द—इनके साथ ग्राम्य पशुओं, अनूपजलके पास रहनेवाले पशुओं और उदक-सञ्चारी जीवोंका मांस न खाना चाहिए। "चरक"में लिखा है, यदि कोई ऐसा करे, तो उसे अन्धापन, बहरापन, गूँगापन, मिनमिनापन, कम्प, जडना और विकलता ये रोग हो अथवा वह मर जाय।

"चरक"में लिखा है—शहद और दूधके साथ कुटकी और पुष्कर-

* चिलचिम मछलीके ऊपर अत्यन्त काँटे होते हैं। सारी देहपर लोहित वर्णकी रेखाएँ और लाल नेत्र होते हैं। यह रोहित मछलीके आकारकी होती है और सदा कीचपर फिरा करती है।

पत्रका साग न खाना चाहिये। शहदके साथ दूध न पीना चाहिए। सरसोंके तेलमे भूनकर कबूतरका मांस न खाना चाहिए। यदि कोई ऐसा करेगा, तो उसे मृगी, शङ्कु, गलगण्ड प्रभृति अनेक तरहके रोग और मृत्यु तक हो सकती है।

मूली, लहसन, सहँजनेका साग, तुलसी, सफेद तुलसी या वन तुलसी आदि खाकर, अगर ऊपरसे कोई दूध पीवेगा, तो उसे कोढ़ रोग हो जायगा।

किसी प्रकारका साग, पका हुआ कटहल, शहद और दूधके साथ मिलाकर न खाना चाहिए। ऐसा करनेसे बल, वर्ण, तेज और वीर्यकी हानि, घोरतर व्याधि, नपुंसकता और मरण पर्य्यन्त हो सकता है।

बिजौरा, कटहल, करौंदा, बेर, कोशाम्र, जामुन, कैथ, इमली, अखरोट, पीलू, बड़हल, नारियल, अनार और आँवले प्रभृति खट्टे फल एवं सब तरहके पतले पदार्थ और मूली तथा खटाई दूधके साथ खानेसे रोग पैदा करते हैं।

जलमे मिलाकर घी सत्तू पीवे और फिर खीर खाय, तो भयानक रोग हो और कफ अत्यन्त कुपित हो।

पोईके सागको तेलमे पकाकर खानेसे अतिसार होता है।

बगलेका मांस सूअरकी चरबीमे भूनकर खानेसे तत्काल प्राण नाश होते है।

मकोयको शहदके साथ खानेसे मरण होता है।

शहदको गरम करके पीनेसे मनुष्य मर जाता है। जिसने पसीनोंके लिये बफारा आदि लिया हो, यदि वह शहदको गरम करके पीवे, तो तत्काल मर जाय।

समान भाग घी और शहद,—शहद और अन्तरिक्ष जल—शहद और कमलगट्टे—शहद पीकर गरम पानी पीना—भिलावे सेवन करके गरम पानी पीना—ये सब विरुद्ध कर्म हैं।

बासी मकोयका साग, सींकचेमें छेदकर अङ्गारोंपर पकाया हुआ मांस—ये भी विरुद्ध है।

बगलेका मांस, शराब और उबाले हुए अनाजके साथ न खाना चाहिये।

शहदको गरम जलके साथ खाना—मकोयको पीपल और मिर्चके साथ खाना—नालोका साग, मुर्गी और दहीका एक साथ खाना—शराब, तिल, चाँवलोंकी खिचड़ी और खीरका एक साथ खाना—गुड़के साथ मकोय—शहदके साथ मूली—बड़हलके पचे बिना, उसके पहले और पीछे दूध पीना—ये सब भी संयोग-विरुद्ध हैं।

ऊपर लिखे हुए विरुद्ध खान-पानसे नपुंसकता, अन्धापन, विसर्प, जलोदर, विस्फोटक, मूर्च्छा, उन्माद, भगन्दर, मद, अफारा, गलग्रह, पीलिया, किलास कुष्ठ, शोष, रक्तपित्त ज्वर और पीनस प्रभृति रोग तथा मृत्यु तक हो जाती है।

वमन, विरेचन तथा विरुद्ध आहारोंको पचानेवाले संशमन योगो (दवाओं) से इनकी शान्ति होती है। हाँ, यदि विरुद्ध आहारोंका अभ्यास पहले ही से कर लिया जाय, तो कोई अनिष्ट नहीं होता। अभ्यास बड़ी चीज है। बाजीगर रुपया, पैसा, लकडी, पत्थर खा जाते हैं और पाखानेकी राह उन्हें निकाल देते है।

उत्तम और निकृष्ट समूह ।

मनुष्यमात्रके याद रखने योग्य कोई डेढ़ सौ अनमोल बातें ।

१–अन्न—जीवन निर्वाहक पदार्थोंमे सर्वोत्तम है ।

२–जल—प्यास मिटानेवालोमे सबसे अच्छा है ।

३–शराब—थकान दूर करनेवालोमे सबसे अच्छी है ।

४–निमक—रुचिकारक पदार्थोंमे सबसे अच्छा है ।

५–खटाई—हृदयके लिए हितकारी पदार्थोंमे सर्वोत्तम है ।

६–मुर्गेका मांस—बलकारी पदार्थोंमे सबसे उत्तम है ।

७–मगरका वीर्य—वीर्य बढ़ानेवालोमे सबसे अच्छा है ।

८–शहद—कफ-पित्त-नाशक पदार्थोंमे सबसे अच्छा है ।

९–घी—वात-पित्त-नाशक द्रव्योमे सर्वोत्तम है ।

१०–तेल—वात-कफ-नाशक द्रव्योमें सर्वोत्तम है ।*

११–वमन—कफ नाश करनेके लिये सबसे अच्छा उपाय है ।

१२–विरेचन—पित्त-हरण करनेवालोमे सर्वोत्तम उपाय है ।

१३–वस्ति—वात-हरण-कर्त्ताओंमें सबसे उत्तम है ।

१४–स्वेद—पसीना शरीरको नर्म करनेवालोमे सर्वोत्तम है ।

---

* तेल वातकफ-नाशकोंमें सर्वश्रेष्ठ लिखा है, इसका यह मतलब है कि, तेल वात-नाशक है और वात-प्रधान वात-कफ नाशक है ।

१५-कसरत—शरीरको मजबूत करनेवाले उपायोमे राजा है।

१६-मैथुन—शरीरको दुर्बल करनेवालोमे सबसे बढ़कर है।

१७-क्षार—पुरुषत्व-नाशक पदार्थोंमे सबसे बढ़कर है।

१८-तिन्दुक फल—अन्नमे अरुचि करनेवालोमे सबसे बढ़कर है।

१९-कच्चा कैथ—स्वर भङ्ग करनेवालोमे सबसे तेज है।

२०-भेड़का घी—दिलको नुकसान पहुँचानेवालोमें राजा है।

२१-बकरीका दूध—शोष नाशको, रक्त रोकनेवालो, रक्तपित्त-रोग नाशको और दूध बढ़ानेवालोमे सबसे उत्तम है।

२२-भेड़का दूध—पित्त-कफ बढ़ानेवालोमे सबसे जबर्दस्त है।

२३-भैंसका दूध-नींद लानेवालोमे सबसे उत्तम है।

२४-दही—अभिष्यन्दी पदार्थोंमे सबसे बढ़कर है।

२५-ईख—पेशाब लानेवालोमें सबसे बढ़कर है।

२६-जौ—मल पैदा करनेवालोंमे सबसे बढ़कर है।

२७-जामुन—वायु प्रकट करनेवालोमे सबसे बढ़कर है।

२८-खली—पित्त-कफ करनेवालोमे सबसे बढ़कर है।

२९-कुलथी-अम्ल-पित्त करनेवालोंमे सबसे बढ़कर है।

३०-उड़द—पित्त कफ-कारकोमें सबसे बढ़कर है।

३१-मैनफल—वमन, आस्थापन और अनुवासनके उपयोगी पदार्थोंमे सबसे उत्तम है।

३२-निशोथकी जड़—सुखसे दस्त करानेवालोमे सर्वोत्तम है।

३३-अरण्ड—नर्म जुलाबोमे सबसे उत्तम है।*

*"अरण्डीका" तेल त्रिफलेके काढ़े या दूधमे लेना सर्वोत्तम जुलाब है। बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण और नाज़ुक-से-नाज़ुकके लिये यह जुलाब सुखदायी है। इस तेलकी मात्रा जवानको चार तोले तक है। त्रिफलेके काढ़ेमे लिया जाय, तो काढ़ा दूना लेना चाहिये। ८ तोले त्रिफलेको जौकुट करके, रातके समय मिट्टीकी हाँडीमे भिगो दो। सवेरे काढ़ा कर लो, उसीमें "अरण्डीका तेल" मिलाकर पी जाओ।

३४-थूहर—जोरसे दस्त करानेवालोमे उत्तम है।*

३५-औगेके बीज—शिरोविरेचन करनेवालोमे सबसे उत्तम है।

३६-बायबिड़ङ्ग—कृमि या कीड़े नाशकोमे सबसे अच्छी है।

३७-सिरसके बीज—विषनाशक पदार्थोंमे सर्वोत्तम है।

३८-खैर—कोढ़ नाश करनेवाले पदार्थोंमे राजा है।

३९-रास्ना—वात-नाशक पदार्थोंमे सबसे बढ़कर है।

४०-आमला—अवस्था-स्थापकोमे सर्वश्रेष्ठ है।

४१-हरड—सब तरहके अच्छे पथ्योंमे श्रेष्ठ है।

४२-अरण्डीकी जड़—बलवर्द्धक और वात-नाशकोमे सर्वोत्तम है।

४३-पीपरामूल—आनाह-नाशकोमे सर्वोत्तम है।

४४-चीतेकी छाल—गुदाका दर्द और गुदाकी सूजन नाश करनेवालो एवं भूख बढ़ानेवालोंमे सर्वोत्तम है।

४५-नागरमोथा—दीपन, पाचन और संग्राहकोमे प्रधान है।

४६-कूट और पोहकरमूल—श्वास, खाँसी, हिचकी और पसलीका दर्द नाशकोमे परमोत्तम है।

४७-अनन्तमूल—अग्निज्वाला-निवारक, दीपन, पाचन तथा अतिसार-नाशकोमे सबसे उत्तम है।

४८-गिलोय—दस्त बाँधनेवालो, बादी नाश करनेवालो, अग्निदीपन करनेवालो, कफ-नाश करनेवालो और कफ-रक्तका विबन्ध नाश-करनेवालोमे सर्वोत्तम है।

४९-कच्चा बेल-फल—मलको गाढ़ा करनेवालो, अग्नि दीपन करनेवालो और वात-कफ-नाशक द्रव्योमे सबसे उत्तम है।

---

* थूहरका दूध तीक्ष्ण जुलाबोंमें सबसे उत्कृष्ट है, परन्तु अनजानका दिया हुआ, थोड़ी-सी भी भूलसे, विषके समान हो जाता है। जानकार वैद्यके द्वारा दिया हुआ, दोषोंके भारी सञ्चयको भी नाश करता और भयानक-से-भयानक रोगोंकी शान्ति करता है, इसलिये इस जुलाबको ऐसे-वैसे अनजानके कहनेसे न लेना चाहिये। "सुश्रुत"में लिखा है:—

विरेचनाना तीक्ष्णाना पयः सौधं परं मतम्।
अज्ञप्रयुक्तं भवति विषवत् कर्म विभ्रमात्॥

५०-अतीस—दीपन, पाचन, संग्राहक और सब दोष हरनेवालोमें सर्वोत्तम है।

५१-कमलगट्टा—कमल और केशर एवं कमोदिनी—संग्राहक और रक्तपित्त-नाशकोंमे सर्वोत्तम है।

५२-जवासा—पित्त-कफ-नाशकोमे सर्वोत्तम है।

५३-गन्धप्रियंगू—रक्तपित्तके अतियोग-नाशकोमे सर्वोत्तम है।

५४-कुड़ाकी छाल—कफ, पित्त और रक्त-संग्राहको और उपशोषक द्रव्योमे सबसे अच्छी है।

५५-गम्भारीफल—संग्राहक और रक्तपित्त-नाशकोमें परमोत्तम है।

५६-पिठवन—संग्राहक है और वातहर वृक्षोमे सर्वोत्तम है।

५७-विदारीकन्द—वृष्य है और सब दोष-नाशकोमे परमोत्तम है।

५८-बला (खिरेटी)—संग्राहक, बलवर्द्धक और वात-नाशक द्रव्योमें सर्वोत्तम है।

५९-गोखरू—मूत्रकृच्छ्र और वायुनाशक द्रव्योमे सर्वोत्तम है।

६०-हीग—छेदन, दीपन, अनुलोमन और वात-कफ-नाशकोंमें सर्वोत्तम है।

६१-अम्लवेत—भेदन, दीपन, अनुलोमन और वात-कफ-हरण-कर्त्ताओमे सर्वोत्तम है।

६२-जवाखार—स्रंसन, पाचन और बवासीर-नाशक द्रव्योमें सर्वोत्तम है।

६३-माठा—ग्रहणीके दोष नाश करनेवालो, बवासीर नाश करने-वालों और अधिक घी खानेके विकारोंके नाश करनेवालोमें माठा या छाछ प्रधान है।*

---

* भोजनके बाद भुना हुआ ज़ीरा और सेंधानोन मिला हुआ "गायका माठा" पीनेसे खूब भूख लगती है। एक कोरी हाँड़ीमें चीतेकी जडकी छालको जलमें पीसकर लेप कर दो, पीछे छायामें सुखा लो। इस हाँडीमें गायका दूध जमा कर दहीको बिलोकर माठा बनाया करो और रोज़ पिया करो, बेहद लाभ होगा। बवासीरके लिये अक्सीर है।

६४—मांसखोर जानवरोका मांस—ग्रहणी-दोष, शोष और बवासीरमे खाना उत्तम है ।

६५—दूध-घीका अभ्यास—बुढापा नाश करनेवाले उपायोमे श्रेष्ठ है ।

६६—सत्तू और घीका सम-परिमाणसे रोज खाना—वृष्य और उदावर्त्त-नाशक द्रव्योमे परमोत्तम है ।

६७—तेलके कुल्ले—दाँतोके मजबूत करनेवाले और रुचि करनेवाले उपायोमे सर्व-श्रेष्ठ है ।

६८—चन्दन और गूलर—दाह-नाशक लेपोमे सर्वोत्तम है ।

६९—रास्ना और अगर—शीत-नाशक लेपोमे उत्तम है ।

७०—खस—दाह नाश करनेवाले और चमड़ेके दोप दूर करनेवाले लेपोमे उत्तम है ।

७१—कूट—वातनाशक अभ्यङ्गो और लेपके योग्य द्रव्योमे परमोत्तम है ।

७२—मुलहटी—चक्षुष्य, वृष्य, केशहितकर, कण्ठहितकर, वर्णहितकर, यानी आँख, वीर्य, बाल, गला और शरीरके रङ्गको फायदा पहुँचानेवाले और घाव भरनेवाले पदार्थोंमे सर्वोत्तम है ।

७३—हवा—बल और चैतन्यता करनेवालोमें सर्वोत्तम है ।

७४—अग्नि—आम, स्तम्भ, शीत, शूल और कम्प-नाशक द्रव्योमे परमोत्तम है ।

७५—जल—स्तम्भनीय द्रव्योमे सर्वोत्तम है ।

७६—बुझाया हुआ जल—वह जल जिसमे जली हुई मिट्टीका ढेला बुझाया गया हो, सर्वोत्तम जल है ।

७७—अत्यन्त भोजन—आम-दोष-कारकोमे सबसे तेज है ।

७८—यथाग्नि भोजन—अग्निदीपक आहारोमे सर्वोत्तम है ।

७९—अभ्यासानुरूप कार्य—सेवनीयोमें सबसे उत्तम है ।

८०—समयका भोजन—आरोग्य-कर्त्ताओमे परम उत्तम है ।

८१-मल-मूत्रादि वेगोका रोकना—व्याधि करनेवालोमे सबसे बढ़कर है ।

८२-मद्य यानी शराब—प्रफुल्ल करनेवालोमे सर्वश्रेष्ठ है ।

८३-मद्य-विकार—धृति, स्मृति और बुद्धि-नाशकोंमे सर्वोपरि है ।

८४-भारी पदार्थ—बडी कठिनतासे पचनेवालोमे सर्वोपरि है ।

८५-एक समयका भोजन—उत्तम प्रकारसे पचनेवालोमे सर्वोपरि है ।

८६-स्त्री-सङ्ग—राजयक्ष्मा करनेवालोमे सर्वोपरि है ।

८७-शुक्रवेगको रोकना—नपुंसकता करनेवालोमे सर्वोपरि है ।

८८-बासी अन्न—अन्नमे अरुचि करनेवालोमे सर्वोपरि है ।

८९-उपवास—आयु कम करनेवालोमे सर्वोपरि है ।

९०-भूख जाती रहे तब खाना—दुर्बलता करनेमे सर्वोपरि है ।

९१-अजीर्णमे खाना—ग्रहणी-दोषकारकोमें सर्वोपरि है ।

९२-विषम भोजन—अग्नि विषम करनेवालोमे सर्वोपरि है ।*

९३-दूध मांस आदि विरुद्ध पदार्थोंको एक समय खाना—कोढ़ आदि निन्दित व्याधि करनेवालोमे सर्वोपरि है ।

९४-शान्ति—हितकारियोमे सर्वश्रेष्ठ है ।

९५-शक्तिसे अधिक परिश्रम—सब तरहके अपथ्योमे राजा है ।

९६-आहार-विहारादिका मिथ्या योग—व्याधिकारकोमे सबसे बढ़कर है ।

९७-रजस्वला-गमन—अलक्ष्मी-कारकोमें सर्वोपरि है ।

९८-ब्रह्मचर्य—आयुवर्द्धकोमे सर्वश्रेष्ठ है ।

९९-संकल्प-साधन—वृष्यादिकोमे सर्वोपरि है ।

१००-मनकी अस्फूर्त्ति—अवृष्योमे सर्वोपरि है ।

१०१-बलसे अधिक काम करना—प्राणनाशकोंमे सर्वोपरि है ।

---

* भोजनके असमयपर खाने, अधिक खाने या कम खानेको "विषम-भोजन" कहते हैं ।

१०२–विषाद—रोग बढ़ानेवालोंमे सर्वोपरि है।

१०३–स्नान—परिश्रम हरण करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०४–हर्ष—प्रीति करनेवालोमे सर्वोपरि है।

१०५–बहुत साग खाना—शरीर सुखानेवालोंमे सर्वोपरि है।

१०६–सन्तोषसे रहना—पुष्टि करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०७–पुष्टि—निद्राकारकोमें परमोत्तम है।

१०८–निद्रा—तन्द्रा करनेवालोमें परमोत्तम है।

१०९–सर्व रसाभ्यास—बल करनेवालोमें सर्वोत्तम है।

११०–एक रस खाना—दुर्बल करनेवालोमे सर्वोपरि है।

१११–गर्भशल्य—अनाकर्षणीयोमें सर्वोपरि है।

११२–अजीर्ण—कय कराने योग्योमे सर्वोपरि है।

११३–बालक—मृदु औषधि द्वारा चिकित्सा करने योग्योमे प्रधान है।

११४–बूढ़ेका रोग—याप्य रोगोमे सबसे बढ़कर है।

११५–गर्भवती स्त्री—तेज़ औषधि, कसरत, मिहनत और पुरुष-संसर्गसे बचनेवालोमे सर्वोपरि है।

११६–मनकी प्रसन्नता—गर्भ-धारकोमे सबसे उत्तम है।

११७–सन्निपात—दुश्चिकित्स्योमे सबसे बढ़कर है।

११८–आम चिकित्सा—विरुद्ध चिकित्सामे सबसे बढ़कर है।*

११९–ज्वर—रोगोमे सबसे अधिक बली है।

१२०–कोढ़—बहुत समय तक रहनेवाले रोगोमे राजा है।

१२१–राजयक्ष्मा—सब रोगोमे असाध्य है।

१२२–प्रमेह—न छोड़नेवाले रोगोमे सबसे बढ़कर है।

१२३–जोंख—उपशस्त्रोंमे सबसे अच्छी है।

---

* आमदोष—जब लाल आदि लक्षणोंसे युक्त होता है, तब उसे "विष" कहते हैं। जब आम-दोष विषके समान हो, तब उसकी शीत चिकित्सा करनी चाहिये; किन्तु इस मौक़ेपर गरम इलाज लाभदायक होता है, इसीसे आमकी चिकित्साका विरोध है।

१२४-वस्ति—पञ्चकर्मोंमे सर्व-श्रेष्ठ है।

१२५-हिमालय—औषधि-भूमिमे सर्व-श्रेष्ठ है।

१२६-मरुभूमि—आरोग्य देशोमे सबसे उत्तम है।

१२७-सोमलता—औषधियोमे सर्वोत्तम है।

१२८-अनूपदेश—अहितकर्त्ता देशोमे सबसे बढ़कर है।

१२९-वैद्यकी आज्ञा पालन करना—रोगीके गुणोमे सर्वोत्तम है।

१३०-चिकित्साके चतुष्पादोंमे प्रधान है।

१३१-नास्तिक—वर्जनीयोमे सबसे अधिक वर्जनीय है।

१३२-क्षोभ—क्लेशकारकोमे सबसे बढ़कर है।

१३३-रोगीकी अबाध्यता—मृत्यु-लक्षणोमे प्रधान लक्षण है।

१३४-अस्थिरता—डरपोक मनके लक्षणोमे प्रधान है।

१३५-देशकाल आदिके विचार-पूर्वक औषधि देना—वैद्यके गुणोमे प्रधान गुण है।

१३६-वैद्यसमूह—निःसंशय-कारकोमे प्रधान है।

१३७-शास्त्रज्ञान—औषधोमे प्रधान है।

१३८-शास्त्रानुमोदित युक्ति—ज्ञानोपादेयोमे प्रधान है।

१३९-उत्तम ज्ञान—कालज्ञान-योजनाओमे उत्तम है।

१४०-अनुत्याग—व्यवसाय-नाशक और काल-नाशक हेतुओमे सर्वोत्तम है।

१४१-चिकित्सककी बहुदर्शिता—निस्सन्देह करनेवाले उपायोमे प्रधान है।

१४२-असमर्थता—भय पैदा करनेवालोमे सर्वोपरि है।

१४३-अपने सहपाठीसे शास्त्रार्थ करना—बुद्धिवर्द्धक उपायोमे प्रधान है।

१४४-आचार्य्य—शास्त्राधिकार हेतुओमें प्रधान है।

१४५-आयुर्वेद—अमृतोमे प्रधान है।

१४६-सद्वचन—अनुष्ठान करने योग्योमे प्रधान है।

१४७–बिना विचारे बोल उठना—सब तरहके अहित करनेवालोमे प्रधान है।

१४८–सर्वत्याग—सुख करनेवालोमे सर्वोत्तम है।

१४९–दूध–जीवनीयोमे प्रधान है।

१५०–मास—बृहड़ियों या ताकत लानेवालोमे प्रधान है।

१५१–गवेधुक धान्य—कृशताकारकोमे प्रधान है।

१५२–उद्दालक अन्न—रुक्षता करनेवालो यानी रूखापन करनेवालोमे प्रधान है।

उपरोक्त १५२ उत्तम बाते चरकके सूत्र-स्थानमें कही है। इनमेकी प्रत्येक बात वैद्यक करनेवालो और वैद्यक न करनेवालो दोनोके लिये परम लाभप्रद है। "चरक"मे लिखा है:—

एतन्निशम्य निपुणश्चिकित्सां सम्प्रयोजयेत्।
एवं कुर्वन् सदा वैद्यो धर्मकामौसमुश्नते॥

निपुण वैद्य इन सभी विषयोको, यानी इन १५२ बातोको, याद करके चिकित्सा करे। यदि वैद्य इस प्रकार करे, तो धर्म और कामकी प्राप्ति करे।

औषधि-सम्बन्धी नियम ।

(१) जो औषधि उत्तम देशमें पैदा हुई हो, श्रेष्ठ दिनमें उखाड़ी गई हो, थोड़ी-सी देनेसे भी बहुत गुण करनेवाली हो, जियादा देनेसे नुकसान न करती हो, ऐसी औषधि विचार-पूर्वक समयपर दी जाय, तो गुण करती है।

(२) विन्ध्याचलके आसपास पैदा होनेवाली दवाएँ तासीरमें गर्म और हिमालयमें होनेवाली शीतल-स्वभाव होती हैं, यानी उनमें गरमीका अंश अधिक होता है और इनमें शीतलता अधिक होती है। अपने रहनेके स्थानसे उत्तर दिशाकी दवाएँ लेनी चाहिएँ। हिमालय हम लोगोंसे उत्तरमें है, इसलिये जहाँ तक हो, हिमालयकी दवाएँ संग्रह करनी चाहिएँ।

(३) जो औषधि सर्पकी बाँबी, घूरे या मैले स्थान, श्मशान, अनूप-देश, ऊसर धरती, रास्तेमें पैदा हुई हो अथवा जिसमें कीड़े लग रहे हों अथवा जो गरमी या सर्दीसे व्याप्त हो—ऐसी औषधि न लेनी चाहिये, क्योंकि वैसी औषधिसे कोई लाभ नहीं होता।

(४) शरद्-ऋतुमें औषधियोंमें रस होता है, इसलिये सब कामोंके लिये ऐसी ऋतुमें औषधियाँ लेनी चाहिएँ, परन्तु वमन विरेचनकी दवाएँ वसन्त-ऋतुके मध्यमें लेनी चाहिएँ।

(५) जिन वृक्षोंकी जड़ें बहुत मोटी हों, उनकी छाल मात्र लेनी चाहिएँ, जिनकी जड़ें छोटी और पतली हों, उनका सर्वाङ्ग लेना

चाहिये । जैसे, बड़, नीम आदिकी छाल, विजयसार आदिका सार; तालीसपत्र आदिके पत्ते, त्रिफला आदिके फल लेने चाहिएँ ।

(६) किसीकी जड़, किसीका कन्द, किसीके पत्ते, किसीके फल, किसीके फूल, किसीका सर्वाङ्ग (सारे भाग), किसीका सार, किसीकी छाल ली जाती है । याद रक्खो, चीतेकी जड़, जमीकन्द या सूरनका कन्द, नीम और अडूसेके पत्ते, त्रिफलेके फल, धायके फूल, कटेरीका सर्व्वाङ्ग (जड़, छाल, पत्ते सब), खैरका साराश और दूधवाले वृक्षोंकी छाल ली जाती है । किसी समय अगर नीमके पत्ते नहीं मिलते, तो उसकी छाल ही ले ली जाती है, बेलका कच्चा फल और अमलताशका पका फल लिया जाता है ।

(७) शास्त्रमे कोई योग या नुसखा आप ऐसा लिखा देखे, जिसमे किसी औषधिका अङ्ग स्पष्ट न लिखा हो, यानी अमुक औषधिकी छाल, पत्ते, फल, फूल, सार प्रभृति क्या लिया जाय । जहाँ औषधिका अङ्ग न लिखा हो, वहाँ आप उसकी जड़ लीजिये, जहाँ औषधिका वजन न लिखा हो कि, अमुक औषधि तोलमे इतनी लेनी चाहिये, वहाँ आप सब औषधियोंको बराबर-बराबर ले लो । जहाँ पात्र या वर्तन न लिखा हो, वहाँ आप मिट्टीका वर्तन लीजिये, जहाँ यह न लिखा हो कि, औषधि किस समय ली जाय, वहाँ आप प्रातःकाल यानी सवेरा समझिये । जहाँ द्रव्य न लिखा हो, वहाँ जल लीजिये ।

(८) सभी कामोंमे नये पदार्थ लेने चाहिएँ, किन्तु वायविड़ङ्ग, पीपल, गुड़*, चाँवल, घी, शहद, पान और काँजी—ये सब पुराने ही

---

* सुश्रुतमें पुराने गुडके सम्बन्धमे लिखा है:—

पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातघ्नोऽसृकप्रसादन. ।
स पुराणोऽधिक गुणो गुडः पथ्यतमः स्मृतः ॥

गुड ज्यों ज्यों पुराना होता है, अधिक गुणवाला और अति पथ्य होता जाता है, पुराना गुड रक्तको प्रसन्न करनेवाला, वायुनाशक, पित्त शान्त-कर्त्ता, मधुर और शुद्ध होता है ।

अधिक गुणकारी होते हैं। इनको एक साल बाद पुराना समझना चाहिये।

(९) सभी नुसखोंमे सूखे और नये पदार्थ लेना अच्छा है। अगर कोई चीज अभाव-वश गीली लेनी पड़े, तो जितनी लेनी हो उससे दूनी लेनी चाहिये। मगर कुछ दवाएँ ऐसी भी है, जो सदा गीली ही ली जाती है, मगर दूनी नही ली जाती, क्योंकि इनके गीली ही लेनेकी आज्ञा है। जिनके सूखी लेनेकी आज्ञा है, वही अगर गीली ली जायँ, तो दूनी ली जाती हैं।

गिलोय, कूडा (कुरैया), अड़ूसा, पेठा, शतावर, असगन्ध, पियावाँसा, सौंफ और प्रसारिणी—ये नौ दवाएँ हमेशा गीली ही ली जाती हैं।

अडूसा, नीम, परवल, केतकी (केवड़ा), खिरेंटी, शतावर, सोंठ, कुडा, कन्द, गन्धप्रसारिणी, गिलोय, इन्द्रवारुणी, नागवला, कटसरैया, गूगुल और सौंफ इन्हे गीली ले सकते हो, पर दूनी लेनेकी ज़रूरत नहीं।

(१०) घी, तेल, जल, क्वाथ, काढ़ा या जुशाँदा, व्यञ्जन आदि आगपर तैयार करके शीतल हो जानेपर, यदि फिर आगपर गर्म किये जायँ, तो विषके समान हो जाते हैं, इसलिए इन्हे आगपर रखकर फिर दुबारा आगपर न रक्खो।

(११) अगर पुराने घीकी जरूरत हो, तो आगपर पके हुए पुराने घीको मत लो, बिना पका पुराना घी उत्तम होता है, पका हुआ पुराना घी हीनवीर्य यानी निकम्मा होता है। हाँ, तेल कच्चा हो या पका, पुराना अच्छा होता है।

(१२) अगर किसी नुसखेमे कोई दवा दो बार लिखी हो या दो नामोसे एक ही दवा दो जगह लिखी हो, वहाँ लेखककी भूल न समझिये, आप उसे दूनी लीजिये।

(१३) जहाँ लवण लिखा हो, मगर यह न लिखा हो कि सैंधा,

काला या कौनसा नमक, वहाँ आप सैंधा-नमक लीजिये। जहाँ खाली चन्दन लिखा हो, वहाँ लाल-चन्दन लीजिये ।

चन्दनके चूर्ण, अवलेह, आसव और तेलके नुसखेमे यदि चन्दन लिखा हो, कौनसा चन्दन लाल या सफेद न लिखा हो, तो आप इनमे सफेद चन्दन लीजिये, किन्तु काढ़े और लेपमें लाल-चन्दन लीजिये* ।

शरीरके भीतरी भागकी शुद्धिके लिये नुसखेमे जहाँ अजमोद लिखा हो, अजवायन लीजिये, वाहरी भागकी शुद्धिके नुसखेमे जहाँ अजमोद लिखा हो, अजमोद ही लीजिये ।

जहाँ दूध और घी लिखा हो, इनकी तफसील न हो, वहाँ गायका दूध और घी लीजिये ।

जहाँ विष्ठा और मूत्र आदिका खुलासा न हो, वहाँ गोमूत्र और गोबर लीजिये ।

(१४) वनसे लाई हुई ओषधियाँ एक वर्ष वाद गुणहीन हो जाती है । तालीस आदि चूर्ण दो मास वाद कमजोर होने लगते है, पर एकदम निकम्मे नहीं हो जाते । विजयादि गुटिका, खण्डकादि अवलेह वहुत समय वाद खराव होते है, परन्तु पुराने होते-होते गुण-रहित हो जाते हैं। कहा है, वर्षाकाल सिरपर होकर निकल जानेसे घृत तैल आदि हीनवीर्य हो जाते हैं। जौ, गेहूँ, चना आदि एक साल वाद गुणहीन होने लगते है ।

गुण, आसव (कुमार्यासव आदि), सुवर्ण, चाँदी, राँगा, शीशा आदि धातुओंकी भस्म, चन्द्रोदय आदि रस जितने पुराने होते है, उतने ही अधिक गुणवाले होते है, मतलव यह कि, ये जितने पुराने हो, उतने ही अच्छे ।

* कहीं-कहीं इस नियमके विपरीत भी होता है । "एलादि चूर्ण"में लाल चन्दन लिया जाता है और किसी-किसी काढे और लेपमें सफेद चन्दन भी लिया जाता है । लवगादि चूर्ण, चन्दनादि चूर्ण, लाक्षादि तैल, कुमार्यासव और च्यवन-प्राशावलेहमे प्रायः सफेद चन्दन ही लिया जाता है ।

(१५) यदि आपको किसी रोगके नुसखेमे ऐसी औषधि दीखे, जो रोगीके रोगको बढ़ावे, तो आप उसे नुसखेमेसे निकाल सकते है, यदि आपको किसी नुसखेमे कोई हितकारी औषधि मिलानी हो, तो आप मिला सकते है। इसमे कोई हर्ज नही, मगर यह काम आप तभी कीजिये, जब कि आप औषधितत्त्वज्ञ हो।

(१६) यदि आपको नुसखेमे लिखी कोई दवा न मिले, तो आप उसका बदल या प्रतिनिधि ले लीजिये, मगर प्रधान औषधिका "प्रतिनिधि" न लीजिये। नुसखेकी अन्य औषधियोके न मिलनेपर प्रतिनिधि ले सकते है। जैसे, काकोली न मिले, असगन्ध ले लीजिये। चन्दनादि चूर्णमे सफेद-चन्दन मुख्य दवा है। उसके बदलेमे कपूरसे काम न चलाइये। हमने अनेक आयुर्वेदीय और जियादा काममे आनेवाली कुछ यूनानी दवाओके प्रतिनिधि साफ तौरपर इसी पुस्तकमे आगे लिखे है। जरूरत होनेसे, आप वहाँ प्रतिनिधि खोज लिया करे।

जो दवा आप नुसखेके लिये ले, उसे देख लिया करे कि वह ठीक है या नहीं, क्योकि आजकल नकली या जाली चीजे बहुत चल गई है। हमने काममे आनेवाली और जिनमे जालकी सम्भावना होती है, ऐसी चन्द औषधियोके परीक्षा करने या पहचाननेकी विधि इसी पुस्तकमे आगे लिखी है। जरूरत होनेसे, जब तक कण्ठस्थ न हो जायँ, देखकर दवाकी जाँच कर लिया करे। अगर दवा निकम्मी होगी, तो रोगीको लाभ न होगा, आपकी बदनामी होगी और आपकी रोजी न चमकेगी।

औषधियाँ और उनके प्रतिनिधि ।

अगर कोई द्रव्य न मिले, तो उसके बदलेमे उसका बदल या प्रतिनिधि ले लो। इससे ठीक काम चल जायगा। हिकमतमे एक दवाके बदलेमे दूसरीके लेनेको "बदल" कहते है और संस्कृतमे "प्रतिनिधि" कहते है। प्रतिनिधि लेनेके लिये शास्त्रकी आज्ञा है। चीता न मिले, दन्ती ले लीजिये, दन्ती न मिले, चीता ले लीजिये। मगर इस बातका ध्यान रहे कि, नुसखेकी मुख्य दवाके बदलेमे प्रतिनिधि या बदल न लिया जाय।

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
चीता	दन्ती या चिरचिरेका खार
धमासा	जवासा
तगर	कूट
मूर्वा	जिंगिनीकी छाल
अहिंस्रा	मानकन्द
लक्ष्मणा	मोरशिखा
मौलसरी	लाल या नील कमल
नील कमल	कमोदिनी
चमेलीके फूल	लौंग

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
आकका दूध	आकके पत्तोका रस
पोहकरमूल	कूट
कलिहारी	कूट
थुनेर	कूट
चव	पीपलामूल
बावची	पँवारके बीज
दारुहल्दी	हल्दी
रसौत	दारुहल्दी
सोरठकी मिट्टी	फिटकरी, सेलखड़ी या खड़िया

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
तालीसपत्र	स्वर्णतालीस
भारङ्गी	कटेरीकी जड़
काला नोन	पाशु नोन, संचर नोन
मुलहटी	धायके फूल
अम्लवेल	चूका
नीबू	चूका
दाख	कुम्भेरका फल
कुम्भेरका फल	वधुकका फूल
नख	लौंगका फूल
कस्तूरी	कंकोल
कंकोल	चमेलीके फूल
कपूर	सुगन्धमोथा, गठौना, गठिवन
केशर	कुसूमके नये फूल
सफेद चन्दन	कपूर, लालचन्दन
कपूर	लाल चन्दन
लाल चन्दन	नवीन खस
अतीस	मोथा
हरड़	आमला
नागकेशर	कमलकी केशर
मेदा, महामेदा,	शतावरी
जीवक	विदारीकन्द
काकोली	असगन्ध
ऋद्धि	वाराहीकन्द

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
भिलावा	चीता
ईख	नरसल
सुवर्ण	सोनामक्खी
चाँदी	रूपामक्खी
सोनामक्खी	पीली मिट्टी
रूपामक्खी	पीली मिट्टी
सुवर्ण-भस्म	कान्तलोह-भस्म
चाँदी-भस्म	,,
कान्त लोह	तीक्ष्ण लोह
मोती	मोतीकी सीप
शहद	पुराना गुड़
मिश्री	सफेद खाँड़
बूरा	खाँड़
आकाश-बेल	निशोथ, पित्तपापड़ा, लाजवर्द
वज्र (हीरा)	मूँगा
अखरोट	चिरौंजी, चिलगोजा
अगर	दालचीनी, लौंग या केशर
अंगूर (दाख)	मुनक्केके बीज
अञ्जीर	मुनका, चिलगोजा
अजमोद	खुरासानी अजवायन
अजवायन	कलौंजी, कालाजीरा

असल द्रव्य	प्रतिनिधि	असल द्रव्य	प्रतिनिधि
अदरख	कालीमिर्च	भैंसका दूध	गायका दूध
अनन्नास	सेब	भेड़का दूध	स्त्रीका दूध
मीठा अनार	खट्टा अनार	स्त्रीका दूध	गधीका दूध
ईसवगोल	बिहीदाना	गायका दूध	बकरीका दूध
अफीम	खुरासानी अज-वायन	घोड़ीका दूध	ऊँटनीका दूध
		नकछिकनी	मैनफल कालीमिर्च
अरहर	मसूर		
असगन्ध	कूट	नख	चिरायता
आमाहल्दी	बावची	खोपरा	चिलगोजा, पिस्ता, बादाम
सत्यानासी	कूट		
कटेरी	कूट	नीलाथोथा	सुहागा
दूध	मूँग या मसूरका जूस	पन्ना	मूँगा
		प्याजके बीज	शलगमके बीज
घी	ताजा दूध	पालकके बीज	कुलफेके बीज
चाँदी	फीरोजा	पित्तपापड़ा	सनाय
चिरायता	चन्दन, केशर	पिस्ता	बादाम
चोपचीनी	उशबा	पीपरामूल	मीठा बालछड़
माठा	दही	पोस्त	अफीम
जमालगोटा	रेंडी	फीरोजा	पन्ना
तज	दालचीनी	बथुआ	पालक
तालमखाना	सालम मिश्री	बनफशा	नीलोफर
तिल	अलसीके बीज	बिजौरा	नीबू या नारंगीका स्वरस
दही	दहीका पानी		
बकरीका दूध	गायका दूध	मूली	शलगम
ऊँटनीका दूध	गायका दूध	स्याह मूसली	सफेद मूसली

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
मेंहदी	मुण्डी
रोगन बादाम	पोस्ताका तेल
रेंडीका तेल	जैतूनका तेल
लोबान	मस्तगी
सरफोका	मुण्डी
सेमरका मूसरा	शतावर
जुही	चमेली
मोर	खरगोश, हंस, चूहा
कंकोल	जायफल
भिलावा	लालचन्दन
दुपहरिया	नागकेशर
पोहकरमूल	कूट
तम्बरुका तेल	भिलावे
अनार	विषाबिल, तित्तिडीक
आँवला	काबुली हरड
आलू	अरवी
आलूबुखारा	इमली
इन्द्रजौ	तोदरी, जायफल, बहमन-सुर्ख
इन्द्रायनका फल	नीलका बीज
छोटी इलायची	कबाबचीनी, बड़ी इलायची, लौंग

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
बड़ी इलायची	छोटी इलायची
हिंगुलू	मुरदासंग
उटंगनके बीज	गन्दनाके बीज
उन्नाब	लिहसोडे, मुनक्का
उशबा	चोपचीनी
मुलहटीका सत्त	सोसन
एलुआ	विरेचनमें निशोथ, शोथ में रसौत
ककड़ीके बीज	खीरेके बीज
कचूर	अञ्जीर, अदरख
कतीरा	बबूलका गोंद
सफेद कत्था	गेरू
लौकी-घिया	पालक, कुलफा
कपूर	सफेद-चन्दन, वंसलोचन
कमीला	वायविड़ङ्ग
कलौंजी	अनीसू
कौंचके बीज	उटंगनके बीज
कसेरू	कमलगट्टा
कालीजीरी	जीरा, अनीसू, सौंफ
कालादाना	इन्द्रायनकी जड़
काहूके बीज	पोस्तके बीज
कुलींजन	दालचीनी, शीतलचीनी

असल द्रव्य	प्रतिनिधि	असल द्रव्य	प्रतिनिधि
केला	मिश्री, गुड़	गुलाबका अर्क	सौंफका अर्क
केशर	जावित्री, तज	गुलाबके फूल	बनफशा
कमलगट्टा	ऑवले के बीज	कुलथी	अलसी
गिलोय	सत्त गिलोय	गोखरू	खीरा-ककडीके बीज

औषधि-परीक्षा।

आजकल जाली औषधियाँ बहुत होती हैं, इसलिए परीक्षा करके औषधियाँ लेनी चाहिये। नीचे, हम चन्द औषधियोंके पहचाननेकी विधि और उनके उत्तम होनेकी पहचान लिखते हैं:—

हरड़—छोटी गुठली और अधिक गूदेवाली अच्छी होती है। नई, चिकनी, भारी, गोल, जलमे डूब जानेवाली हरड़ उत्तम होती है। इन गुणोके सिवा, यदि हरड़ तोलमे दो तोलेकी हो, तो वह सर्व्व-श्रेष्ठ है।

भिलावा—जो पानीमे डालनेसे डूब जाय, वह उत्तम होता है।

वाराहीकन्द—जो सूअरके माथेके समान हो, वह उत्तम है।

संचर-नोन—जो काँचके समान हो, वह उत्तम है।

सोनामक्खी—सोनेके समान कान्तिवाली अच्छी होती है।

मैनसिल—इन्द्रपुष्पके समान उत्तम होता है।

शिलाजीत—जमीनपर गिरनेसे फैले नहीं, जलभरे काँसीके वर्तनमे डालनेसे सूतके समान बढ़े, वही अच्छा होता है।

कपूर—कसैला और चिकना अच्छा होता है।

इलायची—जिसके दाने सूक्ष्म हों, वह अच्छी होती है।

सफेद चन्दन—भारी और खुशबूदार अच्छा होता है।

लाल चन्दन—अधिक लाल हो, वह अच्छा होता है।

अगर—कव्वेकी चोंचके समान चिकनी और भारी अच्छी होती है।

देवदारु—खुशबूदार, हलकी और रूखी अच्छी होती है।

सरल—बहुत चिकनी और सुगन्धित अच्छी होती है।

दारुहल्दी—अत्यन्त पीली अच्छी होती है।

जायफल—भारी, चिकना, गोल और भीतरसे सफेद हो, वह अच्छा होता है।

दाख—गायके स्तनोंके जैसी अच्छी, किन्तु करौंदके जैसी मध्यम होती है।

खाँड—निर्मल और चन्द्रकान्तिमणिके सदृश सफेद अच्छी होती है।

मधु—वही उत्तम होता है, जो गायके घीके समान रुचिकारक और सुगन्धित हो। असल शहदको कुत्ता नहीं खाता। असल शहदको बत्ती लगाकर जलाओ, बत्ती जल उठेगी। असल शहदको कागजपर रख दो, कागज नहीं गलेगा। आजकल असल शहद बडी कठिनाईसे हाथ आता है। लोग विलायती चीनीकी चाशनीमे छत्तेके दो-चार टुकड़े वगैरः डालकर बेचनेको ले आते—और लोगोंको ठगते है। इसीलिये जब शहद खरीदना हो, .खूब परीक्षा करके लेना उचित है।

कस्तूरी—कस्तूरी मृग या हिरनकी नाभिकी अच्छी होती है। आजकल बदमाश लोग खाली हिरनके नाफे या चमड़ेकी थैलीमे, जो नाफेके समान ही होती है, कोयले या कोई दूसरी चीज भरकर या उसके मुखपर, जहाँसे खोलते है, जरासी असल कस्तूरी रख देते है। असल कस्तूरीके मारे नाफा महकने लगता है। भोले-भाले लोग ठगा-जाते है। वैसा नाफा १) का भी नहीं होता, पर ठग उसके दस-दस, बीस-बीस और पचास-पचास तक ले जाते है।

अगर आप नाफा मोल ले, तो पहले परीक्षा कर लें—लहसनके एक टुकड़े या दो-तीन टुकड़ोंको पत्थरपर जलके साथ महीन पीस ले। पीछे सूईमे डोरा (धागा) पिरोकर, उस डोरेको उस लहसनके

रसमे तर कर ले। पीछे नाफेमे सूई घुसेड़ कर, उस डोरेको पार कर ले। अगर उसके अन्दर कस्तूरी असल होगी, तो डोरेमे जो लहसनकी दुर्गन्ध होगी, वह नाश हो जायगी और असल कस्तूरीकी सुगन्धसे डोरा महकने लगेगा। अगर कस्तूरी असल न होगी, कोरा जाल होगा, तो डोरेमेंसे लहसनकी बदबू हरगिज न जायगी। यह नाफेकी सर्वोत्तम परीक्षा है।

अगर बिना नाफेकी खुली कस्तूरी लेनी हो, तो उसमेंसे दो चार दाने लेकर, एक जलते हुए लाल कोयलेपर डाल दो, अगर कस्तूरी उत्तम होगी, तो आदिसे अन्त तक, जब तक दाने जल न जायँगे, खुश-बूदार धूआँ निकलेगा। अगर कोयलेके चूरेपर या और किसी चीज-पर कस्तूरी चढाई हुई होगी, तो पहले तो जरा कस्तूरीकी सुगन्ध आवेगी, किन्तु शेषमे जो चीज उसके अन्दर होगी, उसकी गन्ध आवेगी, कस्तूरी होनेसे धूआँ अन्त तक निकलेगा, कस्तूरी न होनेसे धूआँ न उठेगा। कोयलेका चूरा आगपर डालनेसे जैसे बिना धूएँके जलता है, उसी तरह वह भी जल जायगा।

केसर—आजकल केसर भी नकली आती है। असल केसर काश्मीरकी होती है। वहाँ इसके लाखों वृक्ष होते हैं। असल केसरका रङ्ग पीला जरा सुर्खीमाइल होता है। यह तोलमे हलकी होती है, इस-लिये बहुत चढती है, स्वादमें यह खारी या कुछ कडवी-सी होती है। अगर आप लेना चाहे, तो पहले जर्दी मिले लाल रंग और हलकेपन तथा जायकेको देखिये, इसके बाद जरा-सी केसर लेकर जीभपर रख लीजिये। कोई १५।२० मिनिट तक रखिये, अगर आपका सिर गरमीसे भन्नाने लगे या कुछ भी गरमी जान पड़े, तो समझ ले कि केसर असल है। अगर केसर तोलमे थोडी चढे, स्वाद और ही तरहका हो, मुँहमे रखनेसे सिरमे गरमी न मालूम हो, तो नकली समझिये। नकली कस्तूरी और केसर कौडी कामकी नहीं होती।

चन्दनका तेल—यह भी आजकल जाली आता है। आजकल ऐसी चीज ही कौन-सी है, जिसमे जाल न हो। सभीकी नकल तैयार है। चन्दनके तेलको आप एक कागजपर लगाकर आग दिखाइये। कागज खूब साफ-सफेद हो। आग चमकती हुई हो। अगर असल तेल होगा, तो कागजसे तेल उड़ जायगा, कोरा कागज रह जायगा। अगर असली चन्दन का तेल न होगा, तो कागज आग दिखानेपर भी चिकना बना रहेगा।

चन्द औषधियाँ और उनके मार।

प्रत्येक चीज या दवाका कायदा है कि, यदि उसमे गुण होते है, तो अवगुण भा होते है। यदि कोई चीज पुष्टिकारक होती है, तो वह भारी और कब्ज करनेवाली होती है। इसी तरह प्रत्येक द्रव्यमें अवगुण भी होते हैं। नीचे हम चन्द द्रव्योके अवगुण नाश करनेवाले द्रव्य उनके सामने लिखते है। इनसे वैद्य और गृहस्थ दोनोका बड़ा काम निकलेगा। मान लो, किसीको गॉझा पीनेसे तकलीफ हो, तो आप उसे गायका घी और खटाई खिलावे, लाभ होगा।

नाम द्रव्य	मार या दर्पनाशक द्रव्य
हीरा-कसीस (उपविष)	माठा
हीरा (घातक विष)	ताजा घी, दूध और वमन कराना
हींग (उपविष)	बनफशा, कतीरा, दोनो अनार
हलदिया (घातक विष)	घी और वमन कराना
छोटी हरड़	शहद और घी
हल्दी	नीबू, बिजौरेका स्वरस
सिघाड़ा	नमक और गरम चीज
सॉपकी कॉचली	धनिया और घी
शिलारस (उपविष)	मस्तगी
शिलाजीत	घी
शतावर	शहद
मंडूर	कतीरा, शहद

नाम द्रव्य	मार या दर्पनाशक द्रव्य
रसकपूर ...	... गायका दूध
मुर्दासंग (घातक विष)	... वमन कराना, घी और रोगन बादाम
भिलावा ...	... ताजा नारियल, सफेद तिल, जौ
भिंडी ...	... गरम मसाला
बेर ...	... सिकंजबीन, गुलकन्द
बैंगन ...	... घी
बूट ...	... नमक
बादाम ...	.. खाँड़
बाजरा ...	... घी, दूध और खाँड
बथुआ ..	... गरम मसाला
बच्छनाग (घातक विष)	... निर्विसी
पारा ...	... दूध और चिकने जूस
प्याज ...	.. सिरका, नमक, शहद
पपीता	... खाँड़
नासपाती ...	मायुलअसल
खोपरा ...	.. खाँड़, मिश्री, खट्टे फल
नारंगी ...	... नमक या गुड़
गायका दूध ..	... शहद या खाँड़
बकरीका दूध ...	.. शहद या सौंफ
थूहर (विष) ...	. ताजा दूध
दही ...	.. नमक, सोंठ, पोदीना, जीरा
शहतूत ..	. शहद
तिल ..	.. शहद, आगसे भूनना
तरबूज ..	... शहद, गुड
तम्बाकू ..	. ताजा दूध

नाम द्रव्य		मार या दर्पनाशक द्रव्य
ढेंढस	...	...गरम मसाला
जौ	...	...घी
जायफल	...	.. धनिया, शहद, बनफशा
जामुन	...	...नमक
जमालगोटा	...	.. दूध-चीनी
ज्वार	...	...गुलकन्द
चौलाईका साग	...	...गरम पदार्थ
चूना	...	...घी, बादामका तेल
चिलगोजा	...	. खट्टे फल, सिकजबीन
चिरौंजी	...	...शहद, सिकजबीन
चॉवल	...	...घी, बूरा, दूध
चरस	...	...गायका दूध
चना	..	...पोस्त, सिकंजबीन, गुलकन्द
घुंघची	...	...सूखा धनिया, ताजा दूध
चकोतरा	...	.. खॉड़
घी	...	.. नमक और शहद
गुलाब जामुन	...	...सेब
गॉभा	...	गायका घी, खटाई
खिरनी	...	.. गुलकन्द, माठा
खरबूजा	...	...शहद, सिकंजबीन
कुचला (घातक विष)	...	...वमन कराना, घी और मिश्री
कालादाना	...	...हरड़, बादामके तेलमे भूनना
कसेरू	...	...खॉड़ और कसेरूका छिलका
करौंदा	...	...नमक और खटाई

नाम द्रव्य		मार या दर्पनाशक द्रव्य
करमकल्ला	···	·· घी, नमक
कपूर	···	·· केसर, कस्तूरी
कनेर (उपविप)	···	···शहद, घी
इमली	···	···उन्नाव, बनफशा
आलू	···	···गरम मसाला
आम	···	··जामुन, सिकंजबीन, शीतल जल
अमरूद	···	···सोंठका मुरब्बा, सौंफ
अफीम	···	·· केसर, दालचीनी
खट्टा अनार	···	· मीठा अनार
अनन्नास	···	···खाँड़ और सौंफका मुरब्बा
अंगूर	···	· सौंफ और गुलकन्द
अखरोट	···	···अनारका स्वरस

विरेचन-विषय ।

(जुलाब)
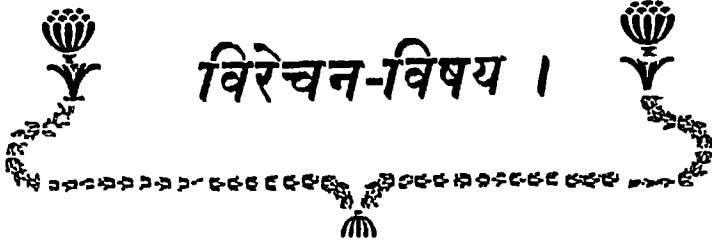
दोषोके निकालनेमे जुलाब सबसे उत्तम समझा जाता है। वैद्यक, डाक्टरी और हिकमत—सभीमे जुलाब देनेकी चाल है, पर जुलाब देनेकी रीति तीनोकी जुदी जुदी है। वैद्यकमे जुलाबकी जैसी उत्तम विधि है, वैसी किसी भी चिकित्सामें नही है। हमारे यहॉ एकदमसे जुलाब देनेकी विधि नहीं है। पहले रोगीको स्नेह-पान कराते हैं—कोई चिकनी चीज घृत प्रभृति पिलाते है, फिर पसीना दिलाते हैं, इसके बाद वमन यानी कय कराते है, इसके बाद जुलाब देते है और जुलाबके बाद वस्ति-कर्म करते है यानी पिचकारी द्वारा दोषोको निकालते है। इन्ही पॉचोको "पञ्च कर्म" कहते है। पहले जो वैद्य इन पॉचो कामोको न जानता था, दो कौड़ीका समझा जाता था, राजासे सजा पाता था, किन्तु आजकल बहुत थोड़े वैद्य इनको जानते और इनसे काम लेते है। यही कारण है कि, आजकलके मनुष्य जल्दी-जल्दी रोगोंके पञ्जोमे फॅसते और यमराजके पाहुने होते है।

आजकलके रोगी भी इतने झंझटोको पसन्द नही करते; वे तो चट रोटी पट दाल चाहते है। चाहते है कि वैद्यराज दवा भी न दे, कोई मन्त्र ही पढ़ दे और हम आरोग्य हो जायॅ, इसीसे स्नेह, स्वेद और वस्ति-कर्म उड़ गये, केवल जुलाब रह गया। वह भी ऐसा कि, पॉच सात दस्त हो जायॅ और झगड़ा पाक हो, पूर्ण लाभ हो चाहे न हो। लोगोकी ऐसी रुचि देखकर वैद्यक सीखनेवाले मामूली वैद्योने "पञ्च कर्म" का अभ्यास करना छोड़ दिया, उन्होने भी उसे व्यर्थका झंझट समझा।

हकीम लोग इतना झंझट तो नही करते, पर वे लोग दोषोंको मुलायम करने और पकाकर फुलानेके लिये पहले मुंजिस जरूर देते है। इस क्रियासे मल पतले हो जाते है, फूल जाते है और ऑतोंसे अलग हो जाते है। जब यह काम हो जाता है, तब वे लोग जुलाब देकर, आसानीसे दोषोंको निकालकर, शरीरको शुद्ध कर लेते है। हकीमोंकी यह चाल इस देशवालोंको पसन्द आई। बस, होते-होते वैद्यकके पञ्च-कर्मोंमेंसे चारोंने पेंशन पाई, खाली जुलाब राम रह गये।

हकीम जुलाबके पहले जो मुञ्जिस देते है, वह उत्तम काम है। उससे हमारे स्नेहन और स्वेदन—चिकनाई पिलाकर और पसीने दिलाकर अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको मुलायम करने और शरीरके सब हिस्सोंसे या किसी खास हिस्सेसे जहॉ दोष हो, निचोड़कर एक जगह आमाशयमे खींच लानेका पूरा नहीं तो भी बहुत कुछ काम हो जाता है, पर अधिकाश वैद्य तो सिवा जुलाब देनेके और कुछ भी नहीं करते। उन्होंने तो बिल्कुल डाक्टरोंकी चाल पकड़ ली है। डाक्टर लोग यों तो जुलाब बहुत देते है, मगर वे न हमारी तरह स्नेहन और स्वेदन करते है और न हकीमोंकी तरह मुञ्जिस ही देते है। जहॉ काम पड़ा, चट काष्टर ऑइल (रेंडीका तेल) या जैलप बतला देते है। हमारी समझमे उनकी इस ऊटपटांग रीतिसे चन्दरोजा आराम तो हो ही जाता है, पर रोगी सदा रोगी बना रहता है, एक रोग मिटता है, दूसरा होता है, और कुछ भी नहीं तो मन्दाग्नि, विषमाग्नि या बदहजमीकी शिकायत तो प्रायः नव्वे फी सदी लोगोंको बनी ही रहती है। जब भारतीय वैद्य विधि-पूर्वक स्नेह, स्वेद और वमन कराकर रोगीके दोषोंको जड़से निकाल देते थे, तब ऐसा न होता था, लोग निरोग, हृष्टपुष्ट और वीर्यवान बने रहते थे। उन्हे रात-दिन डाक्टरोंकी फीस और उनके बिल न चुकाने पडते थे। इसलिये आरोग्यता चाहनेवाले पुरुषों और यश-कामी वैद्योंको अपनी पुरानी चालपर फिर आ जाना चाहिये। देखिये, हमारे यहॉ जुलाबकी कैसी अच्छी विधि ऋषि-मुनियोंने बताई है:—

वमनके पश्चात् विरेचन ।

चतुर वैद्य मनुष्यको पहले स्नेहपान करावे, यानी "स्नेह-विचार" शीर्षक निबन्धमे लिखी रीतिसे घी पिलावे (इसे हम किसी अगले भागमे लिखेंगे)। जब घी पिलानेसे मैल फूल जायँ, तब स्नेह-कर्म यानी पसीनोकी क्रिया करके सब दोषोको रोम-मार्गोसे निकाले। इसके बाद "वमन-विचार"मे लिखी विधिसे (इसे भी हम किसी अगले भागमे लिखेंगे) वमन यानी कय करावे। कय करानेके बाद जुलाब करावे।

वमनके बाद—विरेचन—जुलाब करानेका यह मतलब नही है, कि जैसे ही रोगी वमनसे निपटे, वैसे ही, उसी दिन, विरेचन करा दिया जाय। मतलब यह है, कि वैद्य पहले वमन करा ले, तब दस्तोकी दवा दे। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट प्रभृति सभी आचार्य्योका यह अभिप्राय है कि वमन कराये छै दिन हो जायँ, तब तीन दिन घी प्रभृति पिलाकर स्नेह-कर्म करे, इसके बाद तीन दिन पसीनोकी क्रिया—स्वेद-कर्म करे, इसके बाद तीन दिन तक लघु पथ्य—हलके भोजन खिचड़ी प्रभृति खानेको दो। इस तरह पन्द्रह दिन हो जायँ, तब सोलहवे दिन जुलाब दे।

विरेचनके पहले वमन क्यों ?

अगर वैद्य पहले वमन कराये बिना विरेचन—जुलाब दे दे, तो नीचेके भागमे गया हुआ कफ ग्रहणी—(छठी पित्तधारा कला, अग्नि-धरा कला) को ढक लेता है, जिससे मन्दाग्नि, शरीरमे भारीपन, तथा प्रवाहिका—अतिसार ये रोग हो जाते है।*

---

* वङ्गसेन महोदय लिखते हैं,—अन्यथा योजित कुर्य्यान्मन्दाग्निं गौरवा-रुचि। और शार्ङ्गधर आचार्य्य लिखते हैं—"मन्दाग्नि गौरवं कुर्य्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम्" अर्थात् वङ्गसेन मन्दाग्नि, भारीपन और अरुचिका होना लिखते हैं, किन्तु शार्ङ्गधर तथा अन्यान्य आचार्य्य वही मन्दाग्नि, भारीपन और प्रवाहिकाका होना लिखते हैं।

वमन-विरेचनके पहले स्नेह और स्वेद क्यों ?

"सुश्रुत"मे लिखा है,—स्नेह और स्वेद यानी घृतादि पीने और पसीने लेनेसे जब दोष खिंचकर चिकने कोठेमें जमा हो जाते है, तब विरेचन औषधिके बलसे वह आसानीसे बाहर निकल जाते हैं। जिस तरह चिकने बर्तनमे जल न तो ठहरता और न लगता है, उसी तरह दोष भी चिकने कोठेमे न ठहरते है और न लगते है। कहा हैः—

स्नेहस्वेदावनभ्यस्य, यस्तु सशोधन पिवेत् ।
दारुशुष्कमिवानामे, देहस्तस्य विशीर्यते ॥

जो स्नेह और स्वेद-कर्म किये बिना संशोधन-औषधि-वमन-विरेचनकी दवा पीते है, उनका शरीर इस तरह टूट जाता है, जिस तरह सूखी लकड़ी नवाने या मोडनेसे टूट जाती है। बङ्गसेन महोदय कहते है—स्नेह और स्वेदसे प्रचलित तथा स्निग्ध—चिकनी चीजोसे उदीरित दोष विरेचन दवा द्वारा सुखपूर्व्वक कोठेमेसे निकल जाते हैं।

विरेचनसे लाभ क्या ?

जुलाब लेनेसे इन्द्रियॉ बलवान होती है, बुद्धि प्रसन्न और जठराग्नि प्रदीप्त होती है, धातु और अवस्थामे स्थिरता होती है, यानी बुढ़ापा जल्दी नही घेरता।

वातादिक दोष लंघन और पाचनसे शान्त होकर शायद फिर भी कुपित हो जायॅ, परन्तु वमन-विरेचन द्वारा शुद्ध होकर फिर सिर नही उठाते, यानी कोप नही करते।

जिस तरह जलके न रहनेसे जलके स्थावर जंगमोका नाश हो जाता है, उसी तरह विरेचन द्वारा पित्तके नाश हो जानेसे, पित्तजनित रोगोका नाश हो जाता है।

वमन-विरेचनमें फ़र्क़।

सर, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, उष्ण और विकाशी होनेकी वजहसे विरेचन दोषोको नीचे गिराता है, किन्तु वमन अन्यथा-प्रकृत्यागत होनेकी

वजहसे दोषोंको ऊपर ले जाकर निकालता है। सीधे शब्दोंमे, विरेचनका काम पके हुए दोषोंको लेकर नीचे निकालना है, वमनका काम पके हुए यानी कच्चे दोषोंको लेकर ऊपर निकालना है।

बिना वमनके विरेचनकी आज्ञा ।

शार्ङ्गधरमे लिखा है:—

स्निग्धस्यस्नेहनैः कार्यं स्वेदः स्विन्नस्यरेचनम् ।

जिसका कोठा घी दूध आदि चिकने पदार्थोंसे चिकना हो गया हो, जिसने मिट्टीके गोले अथवा ईंट प्रभृतिसे पसीने ले लिये हों उसको दस्त करा देने चाहियें। यह बिना वमनके विरेचन देनेकी दूसरी विधि है।

कब वमन और कब विरेचन ?

कफकी अधिकतामे और कफकी अधिकतावाले अन्य दोषोमे भी वमन करानी चाहिये।

पित्ताधिक्य तथा पित्तकी अधिकतावाले अन्य दोषोंमे विरेचन-औषधि देनी चाहिये।

जुलावका मौसम ।

शार्ङ्गधर, भावप्रकाश, वङ्गसेन प्रभृति सभी ग्रन्थोंमे लिखा है:—

शरद्तौ वसन्ते च देहशुद्धौ विरेचयेत् ।
अन्यदात्ययथिके काले, शोधन शीलयेद् बुधः ॥

शरद्-ऋतु—क्वार, कातिक और वसन्त यानी चैत वैशाखमे शरीरकी शुद्धिके लिए जुलाब देना चाहिये। अगर रोग हो, तो इन मौसमोंके सिवा दूसरे समयमें भी वैद्य जुलाब दे सकता है।

जुलाब कराने लायक रोगी।

वमन-विरेचन करानेमें बहुत कुछ सोच-विचारकी आवश्यकता है। इसमे मनमानी-घरजानी करनेसे महासङ्कट उपस्थित हो जाता है।

जरासी भूलेसे, मनुष्य इस दुर्लभ चोलेको त्यागकर परलोककी राह लेता है। यह काम पूर्ण विद्वान् और अनुभवी वैद्यका है। "चरक" के सूत्र-स्थानके चिकित्सा प्रभृतीयः नामक सोलहवे अध्यायमे लिखा है:—

चिकित्साप्राभृतो विद्वान् शास्त्रवान् कर्मतत्परः।
नरं विरेचयति य सयोगात् सुखमश्नुते॥
यो वैद्यमानीत्वबुधो विरेचयति मानवम्।
सोऽति योगादयोगाच्चमानवो दुःखमश्नुते॥

चिकित्सा-कुशल, विद्वान् शास्त्रोंके जाननेवाला, काममें लगा हुआ यानी चिकित्सा-कार्य्य करता हुआ वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह रोगसे छुटकारा पाकर सुखका भागी होता है, किन्तु वैद्यत्वका अभिमान करनेवाला अनजान वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह मनुष्य जुलाबके अतियोग और अयोग यानी बहुत लग जाने या न लगनेसे दुःखका भागी होता है।

जिन रोगियोंके लिए शास्त्रकारोने जुलाब देनेकी आज्ञा दी है, उनके सिवाय अन्य रोगियोंको जुलाब न देना चाहिये। शार्ङ्गधरमे लिखा है:—

जीर्णज्वरी गरव्यासो, वातरक्ती भगन्दरी।
अर्शः पाण्डूदरग्रन्थि, हृद्रोगारुचिपीड़िताः॥
योनिरोग प्रमेहार्त्ता गुल्मप्लीह व्रणार्दिताः।
कर्णनासा शिरोवक्र गुदमेढ्रामयान्विताः॥
यकृच्छोथाक्षिरोगार्त्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः।
शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः॥

जीर्णज्वर, सींगिया विष प्रभृति, कृत्रिम विष, वातरक्त, भगन्दर, ववासीर, पीलिया, उदररोग—जलोदर प्रभृति, गाँठ, हृदय-रोग, अरुचि, योनिरोग, प्रमेह, गोला, सीहा—तिल्ली, व्रण-फोड़ा-विद्रधि, वमन, विस्फोटक, विशूचिका, कोढ़, कानके रोग, नाकके रोग, मस्तक-रोग,

गुदा-रोग, लिंगेन्द्रियके रोग—उपदंश प्रभृति, यकृत, सूजन, नेत्र-रोग, कृमि-रोग, क्षारजन्य विकार, वायु-रोग, शूल-रोग और मूत्राघात, इन रोगोंमेसे किसीसे यदि मनुष्य अत्यन्त दुःखी हो, तो उसे दस्तकी दवा देनी चाहिये । अथवा यों समझिये कि, इन रोगवालोंको वैद्य जुलाब दे सकता है ।

"सुश्रुत" मे इतने रोगोंके सिवा मृगी, विसर्प, अर्बुद—रसौली, आनाह—अफारा, शस्त्रका घाव, अग्निदग्ध—अग्निसे जला, तिमिर—अँधेरी, अभिष्यन्द—आँखोंका ढलका, उर्द्ध्वगत-रक्तपित्त तथा पित्तके रोगमे पीड़ित रोगियों तथा जिनके पित्तके स्थानसे उत्पन्न हुए कोई अन्य विकार हों, उनको भी जुलाब देनेकी आज्ञा दी है ।

वाग्भट्ट महोदयने उपरोक्त रोगोंके अलावा व्यंगरोग, कामला, हलीमक, पक्वाशयकी पीड़ा, आशय रोग, कोष्ठगत रोग, उर्ध्वगत वातरक्त, रक्तदोष, ख़ून विकार, श्लीपद—हाथीपाँव, उन्माद, खाँसी, श्वास, दूध-दोष प्रभृति रोगोंमे भी जुलाब देना अच्छा कहा है । ऊपरके रक्तपित्तमे उन्होंने भी जुलाब देनेकी आज्ञा दी है, किन्तु अधोगत रक्तपित्तमे और नवीन ज्वरमे मनाही की है ।

विशेषकर विरेचन योग्य ।

पित्तविकार, आमवात, उदर-रोग और बद्धकोष्ठ—मलका अवरोध—इनमे विशेषतासे जुलाब देना चाहिये ।

जुलाबके अयोग्य रोगी ।

शार्ङ्गधरमे लिखा है:—

बालवृद्धावतिस्निग्ध क्षतक्षीणो भयान्वितः ।
श्रान्तस्तृषार्तःस्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥
नवप्रसूतानारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ।
शल्यार्दितश्च रुक्षश्च,न विरेच्या विजानता ॥

बालक, बूढा, अति स्निग्ध, क्षत-क्षीण, भय-पीड़ित, थका हुआ, प्यासा, मोटा, गर्भवती, नवीनज्वरी, नवप्रसूता स्त्री, मन्दाग्नि-रोगी, मदात्ययी, शल्य-पीड़ित और रूखा—इनको जुलाब न देना चाहिये, यानी ये जुलाबके अयोग्य है ।

वाग्भट्टने अधोगत रक्तपित्त-रोगी, अतिसार-रोगी, क्रूरकोष्ठी—कड़े कोठेवाला और शोष-रोगी—इनको भी जुलाबके अयोग्य कहा है ।

बङ्गसेनने क्षीण, क्षयी, शोक-सन्तापित, अजीर्णमे भोजन करनेवाला, नवीन प्रतिश्याय-रोगी यानी नये जुकामवाला और स्नेह-कर्म रहित—इनको भी जुलाबके अयोग्य कहा है ।

क्या उपरोक्त रोगियोंको पित्तके कोप करनेपर भी जुलाब नहीं दे सकते ?

अगर उपरोक्त, जुलाबके अयोग्य रोगियोका पित्त अधिक हो गया हो, ऐसा कुपित हो गया हो कि, बिना जुलाब दिये रोगके आराम होनेकी सम्भावना न हो, तो ऐसी दशामे वैद्य उनको भी मृदु-विरेचन यानी बहुत हल्का जुलाब देकर काम निकाल सकता है । यह मतलब नही है कि, उपरोक्त रोगियोका पित्त कुपित हो जाय, बिना जुलाब आराम होनेकी आशा न हो, तो भी लकीरके फकीर होकर चुपचाप बैठे रहना चाहिये । "सुश्रुत"मे कहा है:—

अत्यर्थ पित्ताभिपरीत देहान, विरेचयेतानापि मन्दवीर्य्यैः ।
विरेचनैर्यान्ति नरा विनाशमज्ञप्रयुक्तैरविरेचनीया ॥

जिन रोगियोको विरेचन यानी जुलाबकी मनाही है, उनको भी पित्तके अधिक यानी कुपित होनेपर मन्दवीर्य मधुर औषधियो द्वारा जुलाब कराना चाहिये। जिन लोगोंके लिये जुलाबकी मनाही है, अथवा जो विरेचन—जुलाबके योग्य नही है, वे लोग मूर्ख वैद्योके जुलाब देनेसे इस दुर्लभ देहसे हाथ धो बैठते है । मूर्ख वैद्य ऐसे-लोगोको भी जुलाबकी कोई तेज दवा देकर मार डालते है। आप ही सोचिये, अगर

गर्भवती स्त्री, हाल ही मे बच्चा जनकर उठी स्त्री अथवा बालक और बूढ़े प्रभृतिको जमालगोटेका तेज जुलाब कोई मूर्ख दे दे, तो वे बचे या मरेंगे? शास्त्रकारोंने इनकी अवस्था नाजुक देखकर, इनके प्राण कोमल समझकर, अव्वल तो जुलाब देनेकी मनाही कर दी है, पीछे, बहुत ही सख्त जरूरत होनेसे, दो चार दस्त करानेवाली दवाओंकी आज्ञा भी दे दी है। तर्क-वितर्क और बुद्धिमानीकी यो तो हर मुकामपर जरूरत है, किन्तु चिकित्सा-कार्य्यमें तो इसकी पद-पदपर जरूरत है।

स्नेह-विरेचनके अयोग्य।

जो अत्यन्त स्निग्ध है, जिसका शरीर अत्यन्त चिकना है या जिसने बहुत जियादा स्नेह यानी घृत प्रभृति चिकने पदार्थ पिये हैं, उसे वैद्य चिकना विरेचन न देवे, क्योंकि ऐसे आदमीके दोष चिकनाईके मारे, स्थानसे चलकर भी, राहमे ही लय हो जाते है, यानी चलकर भी रास्तेमें ही ल्हिस जाते है।

"सुश्रुत" मे लिखा हैः—

विषाभिघात पिडका शोफ पाण्डु विसर्पिणः।
नातिस्निग्धा विशोध्याः स्युस्तथा कुष्ठिप्रमेहिणः॥
विरुक्ष्य स्नेहसात्म्य तु भूयः संस्नेह्य शोधयेत्।
तेन दोषां हृतास्तस्य भवन्तिवलवर्द्धताः॥

विषसे पीड़ितको, चोट लगे हुएको, पिड़कावालेको, सूजनवालेको, पीलियावालेको, विसर्प-रोगवालेको तथा कोढ़ और प्रमेहवालेको, अति स्निग्धको (जिसका शरीर चिकना हो या जिसने जरूरतसे जियादा घी वगैरः पिये हो) जुलाब न देना चाहिये।*

* मतलब यह है कि जो लोग बहुत घी-दूध खाते हैं, उनका कोठा चिकना रहनेसे उनको दस्तोंकी ज़रूरत नहीं रहती, वैसे ही सफ़ाई रहती है। अथवा जिन्हें घी-दूध वगैरः नहीं पचते उन्हें आप ही दस्त लग जाते हैं। इसलिये दोनों दशाओंमें अति स्निग्धको जुलाबकी ज़रूरत नहीं। अगर देना ही जरूरी हो, तो चिकनापन दूर करके जुलाब देना चाहिये।

जो स्वभावसे स्निग्ध है, जो नित्य घी वगैरः चिकने पदार्थ खाया करते हैं, जिन्हें चिकने पदार्थोंसे सुख होता है, ऐसे लोगोंको यदि जुलाब देना ही हो, तो पहले उन्हें रूखा करना चाहिये, अर्थात् उनकी चिकनाई दूर करनी चाहिये। जब उनकी चिकनाई दूर हो जाय, रूखापन आ जाय, तब उन्हें फिर यथोचित चिकना करके, घृत प्रभृति पिलाकर जुलाब देना चाहिये; जिससे दोष दूर होकर बल बढ़े।

"चरक"के कल्पस्थानमे भी ऐसा ही ऐसा उपदेश दिया गया हेः—

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात् स्नेह विरेचनम् ।
स्नेहोत्क्लिष्ट शरीराय रुक्षदद्यात् विरेचनम् ॥
एव ज्ञात्वा विधिंधीरो देशकाल प्रमाणवित् ।
विरेचन विरेच्येभ्यः प्रयच्छन्नापराध्यति ।
विभ्रंशो विपवद्यस्य सम्यग्योगो यथामृतम् ॥

जो अति स्निग्ध है, जिसका शरीर पहलेसे ही खूब चिकना है, उसे स्नेह-विरेचन न देना चाहिये। जो पहलेसे ही चिकने शरीरवाले हैं, उनको रूखा विरेचन देना चाहिये। बुद्धिमान वैद्य देश-काल और परिणामका विचार करके यदि जुलाब देने योग्योंको जुलाब देता है, तो अपयश नही मिलता। जो दवा वेकायदे दी जाती है, वह जहरके समान काम करती है और जो अच्छी तरहसे—कायदेसे दी जाती है, वह अमृतका काम करती है।

और किनको जुलाब न देना चाहिये ?

"चरक"मे लिखा हैः—जिसे उत्तम प्रकारसे स्नेहपान कराया गया हो, यानी जो अच्छी तरहसे घी प्रभृति पी चुका हो, ऐसे क्रूर कोठेवालेको जुलाब न देना चाहिये, किन्तु लङ्घन कराने चाहिये। लंघनोसे, चिकनाई द्वारा प्रकट हुए कफ और मलकी रुकावट दूर हो जाती है।

रूखे शरीरवाले, बहुत बादीवाले, कड़े कोठेवाले, कसरत करनेवाले और दीप्त अग्निवालेको जुलाबकी दवा बिना दस्त हुए ही पच जाती है।

इसलिए ऐसे मौकेपर पहले वैद्यको वस्ति-कर्म करना चाहिये। जब वस्ति करनेसे दोष निकलने लगेंगे, तब जुलाबकी दवा उन्हें शीघ्र ही बाहर निकाल देगी।

और भी एक बात है—रूखे पदार्थ खानेवाले, मिहनत करनेवाले और तेज अग्निवाले प्राणियोंके दोष मिहनत करने, धूप और हवामें डोलने और अग्निके पास रहनेसे क्षीण हो जाते हैं। ऐसे कसरती और तेज जठराग्निवालोंको विरुद्ध भोजन करने और भोजन-पर-भोजन करने प्रभृतिसे जो तकलीफ होती है, वह इनकी मिहनत और अग्निके जोरसे अपने-आप ही नाश हो जाती है। ऐसे लोगोंको विशेष रोग नहीं होते। इन लोगोंको तो खाली वादीसे बचाना चाहिये। इसके लिए इन्हें घृतादि पिलाना, यानी स्नेहन क्रिया करानी चाहिये। रूखे, परिश्रमी और दीप्ताग्निवालोंको जुलाब कभी न देना चाहिये।

जुलाब देनेकी विधि।

"सुश्रुत" में लिखा है:—स्नेह, स्वेद और वमन—इन तीनोंके हो जानेके बाद, जिस दिन जुलाब देना हो, उसके पहलेकी रातको नरम भोजन और खट्टे फलोंकी खटाई रोगीको खिलाकर, ऊपरसे पानी पिला देना चाहिये। जब दूसरे दिन देखे कि कफ नष्ट हो गया है, यानी कोठेमें आ गया है या फूल गया है, तब रोगीका जैसा कोठा हो, वैसी ही विरेचनकी दवा देनी चाहिए। किसी-किसीका कहना है कि, जुलाबके तीन दिन पहलेसे घी, खिचड़ी प्रभृति गरम भोजन मल फुलानेके लिये देने चाहिये।

कोष्ठ या कोठे।

कोठे तीन तरहके होते हैं:—

(१) मृदु, (२) मध्यम और (३) क्रूर।

जिसके कोठेमें पित्तकी अधिकता होती है, उसे "मृदु-कोष्ठी" या

मुलायम कोठेवाला कहते है। जिसका कोठा नरम होता है, उसे दूध और दाख प्रभृतिसे ही दस्त हो जाते है।

जिसके कोठेमे कफकी अधिकता होती है, उसे "मध्यम-कोष्ठी" या साधारण कोठेवाला कहते है। ऐसे कोठेवालेको बीचकी दवा देनी चाहिये।

जिसके कोठेमे बादीकी बहुत हो अधिकता होती है, उसे "क्रूर कोष्ठी" या कड़े कोठेवाला कहते है। ऐसे कोठेवालेको निशोथ प्रभृतिसे भी बहुत ही मुश्किलसे दस्त होते है।*

नरम कोठेवालेको मृदु यानी हलकी मात्रा देनी चाहिये। नरम कोठेवालेको दाख, दूध और अरण्डीके तेल प्रभृतिसे दस्त हो सकते है।

मध्यम या बीचके कोठेवालेको मध्यम मात्रा देनी चाहिये। ऐसे कोठेवालेको निशोथ, कुटकी और अमलताशके गूदे प्रभृतिसे दस्त हो सकते है। (निशोथकी मात्रा ६ माशेसे २ तोले तक है।)

कडे कोठेवालेको तीच्ण औषधिकी तीच्ण मात्रा देनी चाहिये। ऐसे कोठेवालेको थूहरका दूध, जमालगोटेके बीज या दन्ती (जमालगोटेकी जड़), हेमक्षीरी अथवा इन्द्रायणकी जडसे दस्त हो सकते है।

---

* सुश्रुतमें लिखा है—जिसमें वायु-कफकी अधिकता हो, वह क्रूर कोठा है। क्रूर कोठा दुर्विरेच्य है। जिसमें समान दोष हों, वह मध्यम या साधारण कोठा है। यहाँ मत-भेद है। "भावप्रकाश" में लिखा है—

बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः सकथ्यते।
बहुपित्तो मृदु' प्रोक्तो, बहुश्लेष्माच मध्यमः॥

वाग्भट्टने लिखा है.—

बहुपित्तो मृदु. कोष्ठः क्षीरेणापि विरेच्यते।
प्रभूतः मारुतः क्रूरः कृच्छ्रायामादिकैरपि॥

शार्ङ्गधरने भी यही बात लिखी है, उन्हीकी बात हमने ऊपर लिखी है; क्योंकि उनकी राय बहुतोंसे मिलती है।

मात्रा।

"भावप्रकाश"में लिखा है:—कषायकी मात्रा आठ तोलेकी उत्तम है, चार तोलेकी मध्यम है और दो तोलेकी कनिष्ठ है। कल्क, मोदक (लड्डू), और चूर्णको एक तोले घी या एक तोले शहदमें मिलाकर दो तोलेकी मात्रासे दे सकते हैं। अथवा अवस्था और रोगका विचार करके, चार तोलेकी मात्रा भी वैद्य दे सकता है। वङ्गसेनने लिखा है—नरम कोठेवालेको एक तोला, मध्यम कोठेवालेको २ तोला, कड़े कोठे-वालेको ४ तोला दवाकी मात्रा है। इसी तरह गरम जल भी क्रमसे ४, ८ और १२ तोला अनुपानमें दे सकते हैं। मात्राकी बात पुस्तकमें ठीक नहीं लिखी जा सकती। मात्राका कम-अधिक करना वैद्यकी बुद्धि-पर निर्भर है।

यदि वैद्यको कोठेका हाल मालूम न हो ?

अगर वैद्यको ऐसा रोगी मिल जाय, जिसके कोठेका हाल मालूम न हो और रोगीने भी पहले कभी दस्तकी दवा न ली हो, इस वजहसे उसे भी अपने कोठेका हाल मालूम न हो, तो ऐसी दशामें वैद्य पहले मृदु यानी हलकी दवा दे। जब कोठेका हाल मालूम हो जाय, तब जैसी जरूरत हो वैसी दवा दे। किन्तु 'चरक'में लिखा है—जो कमजोर हो, जिसके दोष कम हों, जिसका कोठा न मालूम हो, उसको हलकी दवा दो या बार-बार थोड़ी-थोड़ी दवा दो, जिससे हानि न हो। एक-दम बिना जाने तेज़ दवा मत दे दो, जिससे प्राण-नाश हो जायँ। अगर दुर्बल रोगी घोर दोषोंसे व्याकुल हो, तो दिनमें कई बार थोड़ी-थोड़ी दवा दो। ऐसा न हो कि, दवाके हलकेपनसे दोष न निकलें और रोगी मर जाय।

राजाओं और अमीरोंको कैसी दवा देनी चाहिये ?

राजाओं तथा अमीरोंको ऐसी दवा देनी चाहिये, जो आजमाई

हुई हो, जिसकी थोड़ी-सी मात्रा ही ज़ियादा काम करती हो, जो रोगीको शीघ्र आराम करती हो और जिसके खाने-पीनेमे तकलीफ न हो; यानी जिससे दिल न बिगड़े और उबकियाँ न आवे।

जुलाबकी दवा लेनेके बाद रोगी क्या करे ?

जुलाबकी दवा लेनेके बाद रोगी क्या करे, इसके सम्बन्धमे धन्वन्तरिजी कहते हैः—

विरेचन पीतवास्तु न वेगान्धारयेद् बुधः।
निवातशायी शीताम्बु न स्पृशेन्न प्रवाहयेत्॥

जुलाबकी दवा पीनेवाला हाजत होनेपर दस्तकी हाजतको न रोके। हवा न आती हो, ऐसी जगहमे सिरहानेकी ओर ऊँचा तकिया लगाकर लेटे। शीतल जल (अथवा कोई भी शीतल पदार्थ) को न छुए और जोर लगाकर मलको न निकाले।

जुलाब लेनेवालेको हवासे बहुत बचना चाहिये। इसी वजहसे "सुश्रुत"में यहाँ तक लिखा हैः—

पीतौषधश्च तन्मनाः शय्याभ्यासे विरिच्यते।

जुलाब लेकर उसी तरफ मन लगाये रहे और चारपाईके पास ही पाखाने जाय।

शार्ङ्गधरने कहा हैः—

प्रवातसेवांशीताम्बु स्नेहाभ्यगंमजीर्णताम्।
व्यायामं मैथुन चैव न सेवेत विरेचितः॥

जुलाब लेनेवालेको अत्यन्त हवा, शीतल जल, तेलकी मालिश, कसरत या मिहनत, मैथुन और अजीर्णसे बचना चाहिये, अर्थात् जिस दिन जुलाब ले, उस दिन इतना न खाय कि अजीर्ण हो जाय, स्त्री-प्रसंग न करे, बाहरकी तेज हवा न खाय, तेल न लगावे, शीतल जल

न पीवें और मिहनत न करे । आजकल इतनी बातें कौन वैद्य रोगीको बताता है और कौन रोगी इन बातोंसे बचता है ?

जुलाबके दस्तोंमें क्या निकलता है ?

जिस तरह वमन यानी कयमें लार, दवा, कफ, पित्त और वायु ये क्रमसे निकलते हैं, उसी तरह विरेचनमें मल, पित्त, दवा और शेषमे कफ ये क्रमसे निकलते हैं । किसी-किसीने मलके पहले मूत्रका निकलना लिखा है ।

अच्छा जुलाब होनेकी पहचान ।

तीस दस्त हों और अन्तमे कफ यानी आम गिरे, तो उत्तम जुलाब हुआ समझो । अगर बीस दस्त हों और कफ गिरने लगे, तो मध्यम जुलाब हुआ समझो । अगर दस दस्तके बाद ही कफ आ जाय, तो हीन मात्राका जुलाब समझो । "वाग्भट्ट" मे लिखा है,—जिसमे कफ निकलने लगे, वह जुलाब श्रेष्ठ है ।

वैद्यविनोद-कर्त्ताने लिखा है, यदि एक सेर मल निकले तो हीन, दो सेर मल निकले तो मध्यम, और तीन सेर मल निकले तो उत्तम जुलाब समझो । वाग्भट्ट कहते हैं—हीनमे ६४ तोले, मध्यममे १२८ तोले और उत्तममे २५६ तोले मल निकलता है ।

उत्तम दस्त होनेपर यानी जुलाबके अच्छी तरह होनेपर—कफके साथ सम्पूर्ण दोषोंके निकल जानेपर नाभिके चारों ओर हलकापन, मनमे प्रसन्नता, अधोवायुका अच्छी तरह खुलना ये लक्षण होते हैं ।

जब दस्त ठीक तरहसे हो जाते हैं, तब हृदय और कोखमे अशुद्धि, शरीरमें दाह, खुजली और मलमूत्रकी रुकावट ये लक्षण नहीं होते ।

अधिक जुलाब लगनेसे मूर्च्छा—बेहोशी, गुदाकी काँच निकलना, अत्यन्त कफका गिरना और शूल ये उपद्रव होते हैं ।

उत्तम दस्त न होनेके उपद्रव ।

दस्तोके अच्छे प्रकार न होनेसे नाभिमे स्तब्धता, पसलियोंमें शूल, मल और अधोवायुका न निकलना, शरीरमे खुजली और चकत्ते तथा अङ्गमे भारीपन, दाह, अरुचि, पेट फूलना, भ्रम एवं वमन—ये उपद्रव होते है।

उत्तम जुलाब न होनेपर उपचार ।

जिसे उत्तम दस्त न हुए हो, उसे वैद्य "आरग्वधादि क्वाथ"का पाचन देकर आमको पचावे। इसके बाद स्नेह या घृतादि पिलावे। जब कोठेको चिकना हुआ समझे, फिर जुलाब दे। इस तरह करनेसे सारे उपद्रव दूर होकर, जठराग्निकी दीप्ति और शरीरका हलकापन होता है।

अत्यन्त दस्त होनेके उपद्रव ।

अत्यधिक दस्त होनेसे मूर्च्छा, गुदामे दर्द, शूल, कफका अत्यन्त गिरना, मांसके धोवन या मेदके समान रुधिरका गुदासे निकलना—ये उपद्रव होते है। वाग्भट्टमें काँच निकलना, प्यास, भ्रम और आँखोका भीतर घुसना प्रभृति लक्षण और है।

अत्यन्त दस्त होनेके उपद्रवोंका उपचार ।

बहुत दस्त हों, तो मनुष्यकी देहपर जल छिड़के, चाँवलोंके शीतल धोवनमे शहद मिलाकर पिलावे अथवा हलकी वमन करावे।

अथवा

आमकी छालको गायके दहीमे पीसकर लुगदी-सी बना ले, पीछे उसे नाभिके ऊपर लेप कर दे, तो होते-होते दस्त बन्द हो जायँगे।

नोट—आमकी छालको काँजीमे पीसकर, नाभिपर लेप करनेसे भी दस्त बन्द हो जाते हैं।

अथवा

बकरीका दूध पीने, हिरनके मांसका रस पीने, थोड़ासा सोंठी चाँवलोका भात खाने, मसूर पकाकर खाने, विलायती अनार आदि शीतल और काबिज़ (ग्राही) चीजोंके खानेसे भी दस्त बन्द हो जाते हैं।

अथवा

पद्माख, खस, नागकेशर और चन्दन—इनको पीसकर लेप करने, सींचने और पीनेसे भी दस्त बन्द हो जाते है।

अथवा

सेमलकी जड़को जलमे पीसकर लुगदोसी कर ले। पीछे उसे दहीके तोड़ यानी दहीके पानीमें पीसकर पीवे, तो गङ्गाके प्रवाहके समान वेगवाला भी अतिसार तत्काल आराम हो जाय।

अथवा

खीलोंके चूर्णको मन्थके साथ सेवन करनेसे विरेचनका अत्यन्त विकार भी नष्ट हो जाता है।

अथवा

दही, काँजी, आमले और सत्तू—इन चारोंको एक जगह पीस-कर लेप करनेसे सन्ताप, अरुचि, तृषा, अत्यन्त वमन और विरेचन ये विकार नष्ट हो जाते है।

अथवा

वटेर, लवा, तीतर, चकोर आदि विष्कर पक्षियो अथवा लाल हिरनके मांसका रस पीनेसे दस्त बन्द हो जाते है।

सूचना।

अगर ऐसी ही ज़रूरत हो, किसी दवासे दस्त बन्द न हों तो "गङ्गाधर" "वृहत् गङ्गाधर चूर्ण" प्रभृति अतिसार-प्रकरणमे लिखी दवाओंसे काम निकालना चाहिये। ये दवाएँ तीसरे भागमें लिखी हैं।

जुलाबवालेको अपथ्य ।

जिसने शिरावेधन कराया हो अर्थात् फस्द खुलवाकर खून निकलवाया हो, जिसने जुलाब लिया हो, उसे एक मास तक या जब तक पहलीसी ताकत न आ जाय तब तक, नीचेकी बातोंसे परहेज़ करना चाहिये। क्योंकि जुलाबवाले और फस्दवालेको ये अपथ्य है—क्रोध, परिश्रम, दिनमे सोना, जोरसे बोलना, हाथी-घोड़ेपर चढ़ना, शीतल जल, पवन, धूप, विरुद्ध भोजन, अधिक भोजन और असात्म्य यानी शरीरको दुःख देनेवाला भोजन।

जुलाबमें सहायता ।

दस्तोकी दवा देकर, वैद्य यदि आँखोमे शीतल जलके छींटे दे, अतर वगैरः सुँघावें और पान खिलावे तो उत्तम दस्त हो।

अगर पहले दिन दस्त कम हों, तब क्या करना चाहिये ?

वाग्भट्टने लिखा है:—अगर पहले दिन दस्त न हो, तो वैद्य रोगीको गरम जल पिलावे, हाथोकी गरमीसे पेटको स्वेदित करे। यदि उस दिन दस्त कम हो, तो अन्नका भोजन कराकर, दूसरे दिन फिर जुलाब दे।

बङ्गसेनने लिखा है—हीन रेचन हुआ हो, तो स्निग्ध करके, आस्थापन वस्ति देकर तेज जुलाब दो।

"चरक"मे लिखा है,—वमन-विरेचनके देनेपर दोष थोड़े-थोड़े और देरसे निकले, तो गरम जल पिलाओ, जिससे अफारा, तृषा (प्यास) और मलकी रुकावट दूर हो।

जुलाबके दिन पथ्य ।

बङ्गसेनने लिखा है—मन्दाग्नि हो, अजीर्णता हो, अच्छी तरह दस्त

न हुए हो, तो यवागू मत दो, किन्तु, अगर कमजोरी हो, अच्छी तरह दस्त हो गये हो, तो मन्दोष्ण (सुहाती-सुहाती) हलकी यवागू पिलाओ।

शार्ङ्गधरने लिखा है, दस्तोके बाद साँठी चाँवल, मूँग आदिकी यवागू, जंगली जानवर हिरन अथवा मुर्गा आदिके मांस-रसके साथ भात खिलाओ।

जुलाब पच जाय और उपद्रव हो तब ?

अगर शोधन दवा पच जाय और प्यास, मूर्च्छा, भ्रम आदि उपद्रव हो, तो स्वादु, शीतल और पित्तनाशक उपाय करो।

जुलाब-सम्बन्धी ज़रूरी बातें।

(१) अगर दोषोसे मार्ग ढक जायँ और शोधन दवा (वमन-विरेचनकी दवा) न ऊपर जाय न नीचे निकले, डकारे आवे; अङ्गोमे दर्द हो, तो ऐसी अवस्थामे "स्वेदन कर्म" करो।

(२) जुलाबसे दस्त तो अच्छी तरह हो जायँ, मगर जुलाबकी दवा पेट (आमाशय) मे ठहरी रहे, उसकी डकारे आवे, तो ऐसी दशामे, उस आमाशयमे ठहरी हुई दवाको वमन कराकर निकाल दो। अगर ऐसा न करोगे, तो रोगीको और भी दस्त होगे। बहुत दस्तोके बन्द करनेका उपाय शीतल क्रिया है।

(३) कभी-कभी कफसे राह रुक जानेके कारण दवा छातीमे रुकी रहती है, सन्ध्या समय या रातको जब कफका समय नही होता, कफ क्षीण हो जाता है, तब आप ही दस्तोंके द्वारा निकलती है। अगर दवाके कफसे ढक जानेसे लार बहना, हुल्लास, विष्टम्भ तथा लोमहर्ष आदि हो, तो तीक्ष्ण, गरम और चरपरी कफनाशक दवा दो।

(४) अगर रूखेपन और अनाहारके कारण दवा पच जाय या पचे नही, किन्तु ऊपरको चली आवे, तो इसी दवाको नमक और चिकनाईके साथ दो।

जिसे जुलाव दो, उसके मिजाजका पता लगाकर जुलाव दो। अगर गरम मिजाजवालेको गरम जुलाब दोगे, तो दस्त न होगे या कम होगे; इसलिए जिसका मिजाज गर्म हो, उसे शीतल जुलाव दो और जिसका मिजाज सर्द हो उसे गरम जुलाब दो, इस तरह करनेसे अवश्य दस्त होगे।

(६) अगर मल सूख गया हो, इस कारणसे जुलाव पच जाय, तो फिर स्नेहपान कराकर या हकीमी मुञ्जिस देकर अथवा "आरग्वधादि क्वाथ"* देकर, मलको ढीला करके, फिर जुलावकी दवा दो।

वमन और विरेचनके लिए उत्तम ऋतुएँ।

यो तो जरूरत हो तभी वमन-विरेचनकी दवा दे सकते है, पर कारण न होनेसे, शरद् और वसन्तमे जुलाव देना और कय कराना अच्छा है। शरद्मे संचित पित्तके निकालनेके लिये जुलाव देना चाहिए और वसन्तमे सचित कफके निकालनेके लिए कय कराना और जुलाव देना जरूरी है।

अलग-अलग ऋतुओंके अलग-अलग जुलाब।

जुलाव किसको देना चाहिए, किसको न देना चाहिए, किस तरह देना चाहिए प्रभृति बातोका विचार हम पहले कर ही आये हैं। यहाँ प्रसङ्गवश हम छहो ऋतुओमे देने-योग्य जुलावके निरुपद्रवकारी नुसखे लिखते हैः—

वर्षा-ऋतुमें जुलाव।

यदि जरूरत हो, तो वर्षाकालमे निशोथकी जड़, इन्द्रजौ, पीपल

*इस क्वाथमें अमलताशका गूदा, पीपरामूल, नागरमोथा, कुटकी और जगी हरड़ ये पाँच चीजें होती हैं। इनको छै-छै माशे लेकर, मिट्टीकी हाँडीमें, डेढ पाव जलमें औटा लो। चौथाई जल रहनेपर पिला दो। कड़े कोठेवालोंको मात्रा बढ़ा दो और बालकोंको घटा दो।

और सोंठ, इन सबको समान भाग लेकर कूट-छान लो, पीछे दाखोंका रस* और शहद मिलाकर बलाबल देखकर दे दो।

शरद्-ऋतुमें जुलाब।

निशोथ, धमासा, नागरमोथा, सफेद चन्दन और मुलहटी—इन सब दवाओंको बराबर-बराबर लेकर, चूर्ण करके, चार या छै माशे चूर्ण, (दस्त न होनेसे अधिक भी) दाखोंके रसमें मिलाकर दे दो। यह दवा शीतल है।

हेमन्तमें जुलाब।

निशोथ, चीता, पाढ़, जीरा, देवदारु, बच और चोक—इन सात दवाओंको समान भाग लेकर चूर्ण कर लो, पीछे ४।६ या ८ माशे चूर्ण बलाबल अनुसार †, गरम जलमें मिलाकर दोगे, तो दस्त हो जायँगे।

शिशिर और वसन्तमें जुलाब।

पीपल, सोंठ, सेंधानोन और काली निशोथ,—इन चारोंको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण कर लो। पीछे बलाबल अनुसार ४।६ या ८ माशे चूर्णको शहदमें‡ मिलाकर चटा दो, दस्त हो जायँगे।

---

* चार-पाँच तोले मुनक्कोंको मिट्टीकी हाँडीमें औटाकर, काढ़ा करके छान लो। यही दाखोंका रस है। शीतल होनेपर ४।६ माशे शहद मिलाना हो मिलाओ, न मिलाना हो मत मिलाओ।

† बिना रोगीकी उम्र देखे या बलाबल देखे मात्रा नियत नहीं की जा सकती। आजकल ऐसे लोग भी मिलते हैं, जिन्हें मात्राका आठवाँ भाग देनेसे ही दस्त-पर-दस्त होने लगते हैं और वे घबरा जाते हैं, इसलिये जो दवा दे या ले विचारकर मात्रा नियत करे। इन चूर्णोंकी मात्रा एक तोले तक है, पर चार या छै माशेसे आरम्भ करना भला है। किसी-किसीको दो तोलेसे भी दस्त नहीं होते, ऐसे लोग हमें मिले, पर कम मिले। हमने नर्म कोठेवालों और नाजुक-मिज़ाजोंके लिए ४।६ माशेकी मात्रा लिखी है। इन मात्राओंसे दो-चार दस्त खुलासा हो सकते हैं।

‡ शहद जब लेना चूर्णकी मात्रासे दूना लेना, गरम पानी या और पतली चीज़ चूर्णसे चौगुनी लेना—ये नियम है।

ग्रीष्ममें जुलाब।

निशोथको कूट-पीस और छानकर चूर्ण कर लो। पीछे ४।६ या ८ माशे चूर्णको मिश्री मिलाकर दीजिये, दस्त हो जायँगे।

नोट—याद रक्खो, निशोथके जुलाबमें पथ्य—परहेज़का ज़ियादा रगड़ा नहीं है।

हर मौसमका जुलाब।

चार पाँच तोले अरण्डीका तेल या साफ़ कैस्टर ऑइल, पाव डेढ़ पाव गर्म दूध मिलाकर पिला दीजिये, ४।५ दस्त हो जायँगे। यह जुलाब बालक, स्त्री, बूढ़े और दुर्बल सबको मुफ़ीद है। जिसका बहुत ही कड़ा कोठा हो, रेंडीके तेलसे दस्त न होते हों, तो आप दस बूँद तारपीनका तेल भी रेंडीके तेलमें मिला दें। चार पाँच तोले तेलकी मात्रा पूरे जवानको है। बालकको ४।६ माशे और स्त्रीको २।३ तोला देना। दस्त होंगे ही होंगे।

अभयामोदक।

काबुली हरड़, काली-मिर्च, वैतरा-सौंठ, वायबिडङ्ग, आमला (बीज निकाल कर), शुद्ध छोटी पीपर, पीपरामूल, दालचीनी, तेजपात और मोथा,—ये सब एक-एक तोले, जमालगोटेकी जड़की छाल दो तोले और निशोथ आठ तोले तथा मिश्री छः तोले,—इन सबको लाकर साफ़ कर लो, पीछे "मिश्री"को छोड़कर, बारह दवाओंको कूट-छानकर रख लो। शेषमें "मिश्री" पीसकर मिला दो। इसके बाद सब दवाओंके चूर्णको "शहद"में सानकर, चार-चार माशेकी गोलियाँ बना लो। यह मात्रा जवानकी है। बलाबल देखकर मात्रा घटा-बढ़ा लो।

सवेरे एक गोली खाकर ऊपरसे "शीतल जल" पीना चाहिये। बीच-बीचमें थोड़ा-थोड़ा शीतल जल पीना चाहिए, क्योंकि शीतल जल इन गोलियोंकी लाग है। शीतल जल पीनेसे दस्त होते रहेंगे। जब दस्त बन्द करने हों, गरम जल पी लो, गरम जल पीते ही दस्त बन्द हो जायँगे।

इस जुलावके लेनेसे विषम-ज्वर, मन्दाग्नि, पीलिया, भगन्दर, खाँसी, १८ प्रकारके कोढ़, वायुगोला, ववासीर, गलगण्ड, फोड़ा-फुन्सी, उदर-रोग, दाह-रोग, तिल्ली, राजयक्ष्मा, प्रमेह, नेत्ररोग, वातरोग, पेट फूलना, सोजाक और पथरी—ये सब आराम होते हैं। इसकी शास्त्रोंमे बड़ी तारीफ लिखी है, पर हम इतना कह सकते है कि, यह जुलावका उत्तम नुसखा है, अनेक वारका परीक्षित है।

कालेदानेका जुलाब।

कालादाना ६ माशे और सोंठ ६ रत्ती ले लो। कालेदानेको घीमे भूँजकर पीस लो, पीछे पीसकर सोंठ मिला दो। यह एक मात्रा है, मगर यह मात्रा जवान आदमीकी है, कमजोरको कम देना चाहिए। इसे फाँककर ऊपरसे थोडा-सा गर्म जल पी लो, ५।६ दस्त हो जायँगे। यह जुलाव जैलप या जमालगोटेसे कम नहीं है और खूबी यह है कि, उनकेसे दोष इसमें नहीं हैं।

जिसे कम दस्तोंकी जरूरत हो या कोठा नर्म हो, उसे ६ माशे कालादाना घीमे भूँजकर फाँक जाना चाहिए और ऊपरसे गरम जल पी लेना चाहिए।

निशोथ और त्रिफलेका जुलाब।

निशोथ और त्रिफला तीन-तीन तोले और वायविडङ्ग, पीपर, जवाखार एक-एक तोले लेकर, सबको कूट-पीसकर चूर्ण कर लो, पीछे इस चूर्णमें गुड़ मिलाकर नौ-नौ माशेकी गोलियाँ वना लो। (मात्राकी बात पहले लिख आये है)। गोली खाकर गर्म जल पी जाओ। इस जुलावमें पथ्य—परहेजका रगडा नहीं है।

अथवा

उपरोक्त दवाओंके छै माशे चूर्णको एक तोले शहद और आधे तोले घीमे मिलाकर चाट जाइये। इस तरह करनेसे भी दस्त होगे।

हकीमी मुञ्जिस ।

(सब मिज़ाज़वालोंके लिए)

गुलेबनफशा	३	माशे
बर्गगावजबाँ	३	"
गुलेगावजबाँ	३	"
तुख्मखतमी	५	"
तुख्म कासनी	५	"
बेख बादियान	५	"
बेख़ कासनी	५	"
मकोय	५	"
बादियान	५	"
असलुस्सूल	५	"
उन्नाव	६	दाना
खुब्बाज़ी	३	माशे
बर्गे अशंना	३	"
मुनक्का	६	दाना
मिश्री	२	तोला

रातको, इन सब चीजोंको (मिश्री छोड़कर) एक कोरी हाँडीमे, आधा सेर जल डालकर, भिगो दो। सवेरे उसे आगपर पकाओ। जब पाव या सवा पाव पानी रह जाय, तब मल-छान और मिश्री मिलाकर पी जाओ।

यह एक ख़ूराक या एक मात्रा है। इस तरहकी पाँच ख़ूराक-पाँच रोज तक लेनी चाहिएँ। इससे मल पक और फूल जायगा। यह मुञ्जिस आजमूदा है।

हकीमी जुलाब।

(सब मिज़ाजवालोंके लिये)

गुले सुर्ख*	५	माशे
गुले बनफ़शा	५	,,
तुरबत सफ़ेद	५	,,
बादियान†	५	,,
पोस्त हलीले ज़र्द‡	६	,,
मकोय	५	,,
गाज़ीफून§	६	,,
वर्ग सना‖	६	,,
बेख़ हञ्जल =	६	,,
तुख़्म हञ्जल ÷	६	,,
असबन्द +	३	,,
जूफ़ा	५	,,
गिलोय सब्ज ×	५	,,
अञ्जीर	८	दाना
मुनक्का	१२	,,

गुलकन्द गुलाब आफतावी २ तोला

इन सबको, मुञ्जिसकी तरह, रातको, कोरी हाँड़ीमें, आधा सेर जल डालकर, भिगो दो। सवेरे आगपर पकाओ। जब तिहाई या तीन

* गुलाबके फूल। †सौंफ। ‡पीली काबुली हरडका बक्कल। §यह एक दवा है जो अंजीरके दरख़्तसे पैदा होती और अत्तारोंके यहाँ मिलती है। ‖सनायके पत्ते। = इन्द्रायनकी जड़। — इन्द्रायनका बीज। + एक फलका बीज है। इसका रंग स्याह, किसी क़दर कड़वा, सख़्त और गन्धयुक्त होता है। × हरी ताज़ा गिलोय।

नोट—हिकमतमें पत्तेको "बर्ग", बीजको "तुख़्म" और जड़को "बेख़" कहते हैं।

छटाँकके करीब पानी रह जाय, मलकर छान लो। पीछे गुलकन्द गुलाब मिलाकर पी जाओ। इसके पीनेके १ घण्टे बाद; अर्क सौंफ आधा पाव या गर्म पानी पीना चाहिये। इस दवाके पीनेके २।३ घन्टे बाद ५।६ दस्त साफ हो जायँगे।

जुलावपर हकीमी हिदायतें।

हिकमतके ग्रन्थोमे लिखा है कि, मुसिलके पहले मुञ्जिस देनी चाहिये, क्योकि मुञ्जिस दोषोको पकाती और मुसिल या विरेचन-दवा दोषोको रगो और जोड़ोसे निकाल लाती है। इसलिए हकीम लोग जुलावके पहले मुञ्जिस देते है। ४।५ दिन बाद मलोके फूल जाने और पक जानेपर जुलाब देते है।

हिकमतकी पुस्तकोंमे लिखा है:—

(१) एक दिनमें दो जुलाब न लेने देने चाहिएँ।

(२) जुलाबकी दवा पीते समय नाकको बन्द कर लेना चाहिए, जिससे कि दवाकी बदबू वगैरः से तबियत न बिगड़े और कय न हो जाय। दोनों बाजुओको जोरसे बाँध देना चाहिये। जुलाब लेने-वालेको इत्र प्रभृति सुगन्धित पदार्थ सुँघाने चाहिएँ अथवा इलायची या पोदीनेको लौगके साथ चबवाना चाहिए। इन उपायोंसे कय नही होती।

(३) जब तक जुलाबका असर न हो, दस्त न होने लगे, कुछ भी न खाना चाहिए।

(४) जुलाब लेकर सोना अच्छा नही।

(५) जुलाबकी दवाको बहुत मीठा करना मुनासिब नही है।

(६) आब-दस्तके लिये पानी ऐसा लेना चाहिए जो न गरम हो न ठण्डा।

(७) अगर तेज़ जुलावकी दवा दी जाय, पर उससे कोई लाभ न हो, बल्कि उन्माद या बेहोशी होती दीखे, तो उस दशामें शीघ्र ही वमन करा देनी चाहिए।

(८) अगर रोगी बलवान हो, तो बराबर दो तीन दिन तक जुलावकी दवा दी जा सकती है। अगर रोगी कमज़ोर हो, तो एक-एक या दो-दो दिनके अन्तरसे जुलाव देना चाहिए। हमेशा इस बातका ख़याल रखना चाहिए कि, रोगीका बुरा हाल न हो।

(९) खुश्क स्वभाववाले, बूढ़े और बालकको तेज़ जुलाव न देना चाहिये।

(१०) जुलाव लेनेवालेको सर्दीसे बहुत बचाना चाहिए।

(११) जुलावके ऊपर अर्क सौंफ या गुनगुना अथवा गर्म जल पीना अच्छा है, इससे दस्तोंको मदद मिलती है।

(१२) जुलावसे निपटनेके बाद, गरम मिज़ाजवालेको ईसब-गोल और सर्द मिज़ाजवालेको नाजबोके बीज या मजलके बीज पिलाना अच्छा है।

(१३) बहुतसे आदमी हर छठे या बारहवें महीने जुलाव लेते रहते हैं, मगर आदत डालना हरगिज अच्छा नहीं। रोगकी शान्तिके लिये जरूरत पड़नेसे जुलाव लेना चाहिये।

(१४) अगर ख़ाली पित्त होता है, तो मुञ्जिससे तीन दिनमे पक जाता है। यदि पित्तके साथ और भी कोई दोष होता है, तो ५ दिनमे पकता है।

हमने इस विरेचन-विषयको अपनी भरसक, खूब समझाकर विस्तार-पूर्वक लिखा है। आशा है, चिकित्सक और साधारण लोग इससे लाभ उठायेंगे। नुसख़े हमने कम लिखे हैं, ज़ियादा हम अगले भागोंमें लिखेंगे, क्योंकि उनके पहले और बहुतसी बातें बतानी हैं, जिनके जाने बिना वे तैयार ही नहीं हो सकते। ज़रूरतके समय इतने नुसख़ोंसे खूब काम चलेगा। प्राय सभी नुसख़े परीक्षित हैं।

शरीरके तेरह वेग ।

अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जँभाई, आँसू, छींक, डकार, वमन, शुक्र, भूख, प्यास, श्वास और नीद—ये तेरह वेग है। इन तेरहोके रोकनेसे तेरह प्रकारके उदावर्त्त रोग होते है। इन शारीरिक वेगोके रोकनेसे हानि होती है, किन्तु क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, द्वेष प्रभृति मानसिक वेगोके रोकनेसे बड़ा भारी लाभ होता है। उदावर्त्त रोग बडे भयानक रोग है। कितने ही तो मनुष्योको घोर दुःख भुगाते हैं और कितने ही प्राण तक हरण कर लेते है, इसलिये आप भूलकर भी वेगोको न रोका कीजिये। सुनिये, इनसे कैसे-कैसे रोग होते है,—

पेशाब

के रोकनेसे पेडू और लिंगेन्द्रियमे दर्द होता है, पेशाब रुक-रुककर थोड़ा-थोड़ा और कष्टसे होता है, सिरमे पीड़ा होती है, शरीर सीधा नही होता और पेटमे अफारा तथा जाँघो और पेड़ूके जोड़ोमें शूलसे चलते है।

ऐसी दशा होनेपर, मूत्राघातमे, पसीने निकालना, पानीमे घुसकर नहाना, मालिश कराना, भोजनके पहले और पीछे घृत सेवन करना और तीन प्रकारके वस्ति-कर्म करना—ये उपाय, चरकमें, इसकी शान्तिके लिखे है।

पाखाने

या मलके वेगको रोकनेसे पेटमे गुड़गुड़ाहट और दर्द होता है, गुदामे कतरनेकी-सी पीड़ा होती है, टट्टी साफ नही होती, डकारे आती है अथवा मुँहसे मल निकलता है। ये लक्षण माधवाचार्यने लिखे है।

—"चरक" मे लिखा है, पक्वाशय और मस्तकमें पीड़ा होती है, अधो-वायु और मल दोनों रुक जाते है; नाभि मलसे ल्हिस जाती और पेट फूल जाता है।

"चरक" मे लिखा है, मलके रुकनेपर स्वेदन, अभ्यङ्ग, अवगाहन, तीन प्रकारकी वत्ती, वस्ति-कर्म तथा वायुको अनुलोमन करनेवाले खान-पान इन सबसे काम लेना चाहिये।

शुक्र

यानी वीर्य्यके रोकनेसे मूत्राशयमे सूजन, गुदा और फोतोमें पीड़ा, पेशावका कष्टसे होना, शुक्रकी पथरी और वीर्य्यका रिसना,—माधवाचार्य्यने लिखा है, ऐसे-ऐसे अनेक रोग होते है। "चरक" मे लिखा है, मैथुन करते समय छूटते हुए वीर्य्यके रोकनेसे लिङ्ग और फोतोमे दर्द, शरीर टूटना, अँगड़ाई आना, हृदयमे पीड़ा और पेशावका रुक-रुककर होना—ये उपद्रव होते हैं।

ऐसी हालत होनेपर मालिश, अवगाहन यानी गोते लगाकर जलमे नहाना, शराब पीना, मुर्गेका मास खाना, शाली चॉवल खाना, दूध पीना, निरूह वस्ति और मैथुन करना—ये उपाय उत्तम है।

अधोवायु

यानी गुदा द्वारा निकलनेवाली हवाको शर्म या लज्जावश रोकनेसे आधोवायु, मल और मूत्र ये रुक जाते हैं, पेट फूल जाता है, अनायास थकानसी मालूम होती है, पेटमे वादीसे दर्द होता है तथा और भी वायुके उपद्रव होते है।

ऐसा होनेपर स्नेह, स्वेद और वस्तिकर्म करना तथा वायुको अनुलोम करनेवाले भोजन और पान देना उत्तम उपाय है।

वमन

के वेगको रोकने यानी आती हुई क़यको रोकनेसे खुजली, चकत्ते,

अरुचि, मुँह पर झाँई, सूजन, पीलिया, सूखी ओकारी और विसर्प—ये उपद्रव होते हैं। "चरक" में कोढ़ अधिक लिखा है।

इन रोगोके दूर करनेके लिये भोजनके बाद वमन करानी चाहिये, उसके बाद धूम-पान और लंघन कराने चाहियें तथा फस्द खोलनी चाहिये। इनके सिवा रूखे पदार्थोंका सेवन, कसरत और जुलाब, ये सब भी उत्तम है।

छींक

के वेगको रोकनेसे गर्दनके पीछेकी मन्या नामक नस जकड़ जाती है, सिरमें शूल चलते है, आधा मुँह टेढ़ा हो जाता है, इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती है और अर्द्धाङ्गमें वात-रोग हो जाता है। "चरक" मे लिखा है— गर्दनका जकड़ना, मस्तक-शूल, लकवा, आधा-शीशी और इन्द्रियोंकी दुर्बलता होती है।

ऐसी हालतमे हँसलीके ऊपरी भागमे मालिश करना, स्वेदन, धूम-पान और नस्यका प्रयोग करना, वात-नाशक क्रिया करना और भोजनके पहले और पीछे घी पीना—ये उत्तम उपाय है।

डकार

के वेगके रोकनेसे बादीके इतने रोग होते है—कण्ठ और मुखका भारीसा मालूम होना, एकदमसे नोचनेकासा दर्द होना, समझमें न आवे ऐसी बात कहना। "चरक"मे लिखा है—हिचकी, खाँसी, अरुचि, कम्प और हृदय तथा छातीका बँधासा मालूम होना—ये रोग होते हैं।

ऐसा होनेपर हिचकी-रोगमे जो इलाज किया जाता है, वही इसमें भी करना चाहिए। हिचकी और श्वासका कारण कफयुक्त वायु है और दोनोका स्थान भी आमाशय है। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे छेदोमे चिपटा हुआ कफ पिघल जाय और श्वास-वायु अपनी राहमे ठीक आने-जाने लगे। रोगीको स्वेद करा-कर चिकना भोजन देना चाहिए, जिससे कफ बढ़े। पीछे पीपल, सेंधे-

नोन और शहदसे या और किसी दवासे जो वायुकी विरोधी न हो, वमन करा देनी चाहिए। वमन होनेसे कफ निकल जायगा, छेदोंके शुद्ध होनेसे वायु स्वच्छन्दता-पूर्वक विचरने लगेगा, रोगीको आराम मालूम होगा। फिर भी यदि कुछ दोष रह जाय, तो धूम्र-पान द्वारा निकाल देना चाहिए। जौकी बत्तीको चिलममे रखकर पिलाना, मोम, राल और घी—इन तीनोंको इकट्ठा पीसकर, मल्वक सम्पुटमे रखकर, धूम्र-पान कराना अथवा हिचकी-नाशक नस्य सुँघाना, इस कामके लिए उत्तम उपाय है। हम हिचकी-नाशक चन्द परीक्षित उपाय लिखते हैं—

(१) नाकमे हींगकी धूनी दो।

(२) जरासा सेंधानोन जलमे पीसकर सुँघाओ।

(३) मक्खीके गूको दूधमे पीसकर सुँघाओ।

(४) सोठको गुड़मे मिलाकर सुँघाओ।

(५) मुलेठीको शहदमे मिलाकर सुँघाओ।

(६) शहद और काला नमक मिलाकर बिजौरेका रस पिलाने या केवल शहद चटानेसे असाध्य हिचकी भी आराम होती है।

(७) सोठ, पीपल और धायके फूल, इनके चूर्णको शहदमे मिलाकर चटाओ।

(८) डराने, आश्चर्य्यजनक बात कहने, प्राणायाम करने, अद्भुत बात कहने और मनमे चोट लगनेवाली बात कहने आदिसे भी हिचकी आराम हो जाती है।

जँभाई

के वेगको रोकनेसे गर्दनके पीछेकी नस और गलेका जकड़ जाना, मस्तकमे वादीके विकार होना, नेत्र रोग, नासा-रोग, मुख-रोग और कर्ण-रोगका जोरसे होना—ये सब उपद्रव होते है। "चरक"में लिखा है—अगोंका नव जाना,—आक्षेपक वायु, सङ्कोच, शरीरके अङ्गोका सो जाना और कॉपना ये उपद्रव होते है।

इससे हुए रोगोमे वातनाशक औषधि देना हितकारी है।

भूक

के वेगको रोकनेसे तन्द्रा, शरीर टूटना, अरुचि, थकाई और नज़र कम होना,—ये रोग होते है। "चरक" मे लिखा है—देहमे दुर्बलता, कृशता, विवर्णता, अङ्ग टूटना और भ्रम,—ये लक्षण होते है।

इसमें चिकने, गर्म और हल्के भोजन देना हितकारी है।

प्यास

के वेगको रोकनेसे कण्ठ और मुँह सूखते है, कानोसे कम सुनाई देता है और हृदय में पीड़ा होती है। "चरक"मे--श्रम और श्वासका होना अधिक लिखा है।

इससे हुए रोगोमें शीतल क्रिया और तर्पण करना हितकारी है।

हम चन्द उपाय लिखते है —

(१) शहदका गण्डूष धारण करो।

(२) बड़के अंकुर, शहद, कूट, कमल और खील—इनको एक जगह पीसकर गोलियाँ बना लो। पीछे इन गोलियोको मुखमें रक्खो।

(३) अनार, बेर, लोध और बिजौरे नीबूको एक जगह पीसकर माथेपर लेप करो।

(४) गीले कपड़ेको शरीरपर लपेट लो।

(५) चाँवलोके जलमे शहद मिलाकर पीओ।

(६) छटाँक-भर मिश्रीको शीतल जलमे घोलकर शर्बत बना लो; पीछे उसमे ४।५ छोटी इलायची, चाँवल-भर कपूर, २।३ लौग, १०।१५ कालीमिर्च—इन सबको पीसकर मिला दो। शेषमे बारीक कपड़ेसे छानकर पिला दो। इसे "शर्करोदक" कहते है। यह बहुत ही उत्तम चीज़ है। यह वीर्य पैदा करनेवाला, पेटकी जलन नाश करनेवाला, दस्त साफ लानेवाला, स्वादमे मजेदार, बात, पित्त और ख़ून-विकारका

नाश करनेवाला, बेहोशी, जी मिचलाना और प्यास आदिको शान्त करनेमें परमोत्तम है।

(७) खसका इत्र सुँघाओ, खसके पंखेसे हवा करो, सरसब्ज बागकी सैर कराओ। इन सब उपायोसे अथवा इनमेसे दो-तीन उपायोंसे बेशक बहुत लाभ होगा।

आँसुओं

के वेगको रोकनेसे मस्तकका भारीपन, नेत्ररोग और पीनस,—ये रोग जोरसे होते है। "चरक"मे लिखा है—जुकाम, आँखोका रोग, हृदय-रोग, अरुचि और भ्रम—ये रोग होते है।

इस हालतमे नींद-भर सोना, हलकीसी बढ़िया शराब पीना, चित्त प्रसन्न करनेवाली प्यारी-प्यारी बातोका कहना, मीठा-मीठा बाजा बजाना प्रभृति हितकारी है।

नींद

के वेगको धारण करनेसे जँभाई, अङ्ग टूटना, नेत्र और मस्तकका जड़ हो जाना और तन्द्रा—ये रोग होते है।

इस हालतमे शान्तिपूर्वक सोना और किसी दूसरे शख्सका पैरके तलवे और हाथोकी हथेलियोका सुहराना हितकारी है।

साँस

के वेगको रोकनेसे हृदयरोग, मोह और वायुगोला,—ये रोग होते है। बाज़-बाज शख्स थक जानेपर साँस रोका करते है।

इस दशामे रोगीको आराम देना चाहिये और वात-हरणकारी यानी बादीको नाश करनेवाली क्रियाएँ करनी चाहिएँ।

चरक भगवान्‌के उपदेश।

चरक भगवान् कहते है—शरीर-सम्बन्धी इन तेरह वेगोको कभी मत रोको, जिससे ऐसे भयानक रोग हो।

यदि इस लोक और परलोकमे मंगल चाहो, तो अनुचित साहसके वेगको, मनके वेगको, वाणीके वेगको, देहके वेगको, कर्मके वेगको

तथा लोभ, शोक, भय, क्रोध और अभिमानके वेगके रोको। निर्लज्जताके वेगको, ईर्ष्याके वेगको, अनुरागके वेगको और पराई सम्पत्ति देखकर कुढनेके वेगको रोको। कठोर बोलनेके वेगको, अत्यन्त ग्लानि-सूचक बातके वेगको, मिथ्या बोलनेके वेगको और अकालयुक्त वाक्यके वेगको रोको। दूसरेको कष्ट देनेके वेगको रोको, स्त्री-संगके वेगको, चोरीके वेगको और हिंसा प्रभृतिके वेगको रोको, चाहे जो मनसे मत निकाल बैठो, लोभ, शोक, भय, क्रोध और घमण्डको भी मत आने दो, शर्मको मत छोड़ो, चटपट किसीपर मोहित न हो जाओ, पराई दौलत या पराया वैभव देखकर कुढ़ो मत, कठोर बात मत बोलो, झूठ मत बोलो, दूसरेको जिससे कष्ट हो ऐसी बात चित्तमे भी न लाओ, रण्डीबाजीसे बचो, चोरीका ध्यान भी न करो और किसी भी प्राणीकी हत्या मत करो इत्यादि ।

यदि आप शारीरिक वेगोंको न रोकेंगे, मन-वच-कर्मसे निष्पाप रहेंगे, तो आप "पुण्यश्लोक" हो जायँगे। आप सदा सुखी रहेंगे, आपका धन-धर्म बढ़ेगा, कामकी प्राप्ति होगी और लक्ष्मी आपकी चेरी रहेगी।

कसरत अच्छी है। सामर्थ्यानुसार कसरत करनेसे शरीर हलका और मजबूत होता है, काम करने और क्लेश सहनेकी सामर्थ्य होती है, तीनो दोषोकी शान्ति होती है, भूख बढ़ती है, मगर इसके भी अधिक करनेसे थकान, ग्लानि, क्षयरोग, प्यास, रक्तपित्त, प्रतमक-श्वास, खाँसी, ज्वर और वमन—ये उपद्रव होते है ।

इसीलिये बुद्धिमानको जरूरत होनेसे भी अत्यन्त कसरत, बहुत हँसना, बहुत बोलना, बहुत रास्ता चलना, बहुत स्त्री-संसर्ग करना और बहुत जागना—इनसे बचना चाहिये ।

प्रत्येक धर्म, प्रत्येक जाति और हर उम्रके नर-नारियो और वालकोंके पढ़ने-योग्य परमोपयोगी पुस्तकें—

मनुष्य मात्रके पास रहने-योग्य
ग्रन्थ रत्न।

स्वास्थ्य-रक्षा

उर्फ

तन्दुरुस्ती का बीमा।

(नवाँ संस्करण)

हिन्दुस्तानमें ऐसा कौन पढ़ा-लिखा है, जिसने इस मशहूर किताबका नाम न सुना हो? आज यह मनुष्य मात्रकी प्यारी पुस्तक भारतके राजा-महाराजा और अमीर-उमरावोसे लेकर किसानो तकमे जा पहुँची है, तभी तो इसकी तीस-तीस हजार प्रतियाँ बिक गईं और नौ-नौ संस्करण हो गये। इस पुस्तकको हिन्दू, मुसलमान, जैन, ईसाई, बौद्ध, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, जज, वैरिस्टर,

वकील, मुख्तार, सेठ-साहूकार, मुनीम-गुमाश्ते, राजा-महाराजा, मन्त्री, बाल, वृद्ध और युवक दिलोजानसे पसन्द करते है। इसने हज़ारो बिगड़ती हुई गृहस्थियाँ बचाई। हजारो-लाखोको कुराहसे सुराहपर लगाया और अनेकोकी जीवन-रक्षा की, इसीसे इसका इतना आदर है। अगर आप जीवनका बेड़ा सुखसे पार करना चाहते है, शरीरको सदा सुखी और तन्दुरुस्त रखना चाहते है, अनेको रोगोका इलाज खुद ही करके अपना धन-धर्म बचाना चाहते है, अपने मित्र, पड़ौसियोंको मुजर्रब और आजमूदा चुटकले बता-बताकर उनकी जिन्दगी सुखी करना चाहते है, काम-शास्त्र और कोकशास्त्रकी जरूरी बातें जानना चाहते है, शरीरको पुष्ट करके स्त्रियोको वशमे करना और उत्तम बलवान् सन्तान पैदा करना चाहते हैं, तो इसकी एक प्रति जरूर ख़रीदिये। इसे पास रखकर, अनेक वैद्य सैकड़ो रुपये माहवारी पैदा कर रहे है। क्योकि इस एक पुस्तकमे प्राय सभी रोगोकी आजमूदा दवाएँ लिखी है। गृहस्थ लोग इसे पास रखकर सैकडो रुपये साल बचाते है, क्योंकि उन्हे डाक्टर-वैद्योको कभी किसी भारी रोगमे ही बुलाना पडता है। अनेक लोग इसमेकी दवाएँ बना-बनाकर कम्पनियाँ खोल बैठे है और हजारो रुपये पैदा कर रहे है। कागज मलाईके समान चिकना और छपाई मनमोहिनी, तिसपर भी ४५८ सफोकी अजिल्द पुस्तकका दाम ३) और सजिल्दका ३॥)